हरियाणा प्रदेश की लोक चित्रकला–सिंहावलोकन

निर्देशक
डा० रामकंवर
अध्यक्ष-चित्रकला विभाग
डी. ए. वी. कालेज
कानपुर विश्वविद्यालय
कानपुर

शोधार्थी
विजय लक्ष्मी माथुर

कानपुर विश्वविद्यालय की पी. एच. डी. (चित्रकला)
की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध
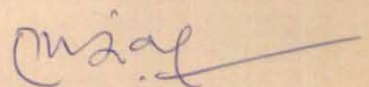
१९८५

डा० रामकँवर,
अध्यक्ष , चित्रकला विभाग,
डी०ए० वी० कालेज (कानपुर विश्वविद्यालय)
कानपुर ।

दिनांक: 29/10/96

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती विजय लक्ष्मी माथुर ने मेरे निर्देशन में कानपुर विश्वविद्यालय , कानपुर के अन्तर्गत पी०एच०डी० (चित्रकला) की उपाधि हेतु '' हरियाणा प्रदेश की लोक चित्रकला - सिंहावलोकन '' विषय पर कार्य किया है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पूर्णतया प्रमाणित एवं मौलिक है । आपने विश्वविद्यालय के नियमानुकूल उपस्थिति आदि नियमों का पूर्णतया पालन किया है ।

(डा० राम कँवर)
निर्देशक

प्रस्तावना ज्ञापन

लोक कला मानव सभ्यता के साथ साथ उसका ही एक अंग बन कर कब से जुड़ी है - कहा नहीं जा सकता। परम्परायें रीति रिवाज, धर्म, मान्यताएँ, मेले, मनोरंजन आदि ग्रामीण जीवन की ऐसी आवश्यकता बन गये हैं कि यदि उनसे अलग हटकर देखा जाये तो जीवन निष्प्राण, शुष्क व नीरस बन जाता है। मनुष्य अपनी हृदय की भावनाओं को रेखा, रंगों द्वारा साकार करता रहा है जिससे कला को महत्वपूर्ण स्थान मिला। मानव श्रद्धा भक्ति व प्रेम में विभोर होकर कला के स्वरूप में जो कुछ भी प्रगट करता है वह लोक जीवन को समझने के लिये दर्पण का कार्य करता है तथा बाद में वह कार्य जीवन की एक अमूल्य निधि बन जाता है।

भारतीय संस्कृति का आधार लोक कला पर इस प्रकार बन गया है कि प्राचीन काल से लेकर अब तक इसको बिना किसी शिक्षा दीक्षा के स्वतः ही यहाँ की माताएँ, बहिनें, खेतिहर, किसान, शिल्पकार, पुजारी इसमें अपने आपको जोड़ता चला आया है। इसमें भक्ति भाव, श्रद्धा-विश्वास तो होता ही है। साथ ही अपने को विपत्ति से बचाने, पारिवारिक सुख समृद्धि, अपशकुन आदि से बचने की भावना भी जुड़ी रहती है। यहाँ की लोक कला प्रत्येक व्यक्ति में विश्वास, भक्ति, सौन्दर्य व मांगल्य का स्वरूप तो जगाती ही है। साथ ही कलाकार का व्यक्तित्व, कौशल व कलात्मक अभिरुचि का भी प्रदर्शन हो जाता है। दूसरे शब्दों में सृजनात्मक प्रवृत्ति जीवन के इन उपक्रमों से बल पाती है। लोक कला का माध्यम व इसे बनाने का तरीका इतना सरल होता है कि लोक जीवन बड़े सहज में ही अपनी देवी - देवता या श्रृंगार साधन व अपनी निष्ट व अनिष्ट का प्रतीक मानकर जीवन में उतार लेते हैं। हरियाणा के लोग टोना - टोटका,

लोला गोदना, महावर, मेंहदी, चौक पूरत आभूषण व विभिन्न पोशाकें साफे, झड़ियाँ - टोकरियां ,खेल खिलौने व अन्य प्रकार पूजा हेतु सामग्री व उसके रूप प्रस्तुत करके सारे उत्तरी भारत में अपनी भिन्नता बनाकर एक अमिट सी छाप छोड़ते हैं ।

हरियाणवी संस्कृति प्राचीन काल से काफी दूर तक फैली रही है । इस खुशहाल प्रदेश -प्राचीन भारतीय इतिहास की घटनास्थली, संस्कृति व विश्वासों की संगम भूमि प्राचीन मन्दिरों व गीता की जन्मस्थली के हर भाग में पर्यटन करके मन में इस धरती के प्रति अपार मोह व आस्था उत्पन्न हो गई है । अतः मेरा प्रयास है कि यहाँ के जन - जीवन का अध्ययन करके सर्वत्र बिखरी लोक कलाओं जिसमें चित्रकला का विशिष्ट स्थान है, को जमा करूँ अतः '' हरियाणा प्रदेश की लोक चित्र कला - सिंहावलोकन पर शोध कार्य करने का दृढ़ निश्चय किया । जो अपने पूर्ण प्रयास व सामर्थ्य से प्रस्तुत कर रही हूँ । मेरा विश्वास है कि मेरा यह तुच्छ प्रयास सर्वथा पसन्द आएगा ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में सर्व प्रथम मैं परम पिता परमात्मा के चरण कमलों में नतमस्तक हूँ जिनके आशीर्वाद के प्रताप से ही मुझमें इतना कार्य करने का साहस गति व लगन रही कि मैं यह कार्य पूर्ण कर सकी ।

मैं यह शोध ग्रन्थ अपने स्वर्गीय परम पूज्य पिताजी की स्मृति में उन्हीं के चरण कमलों में समर्पित करती हूँ जिनके स्नेह भरा आशीष से ही शायद मुझे सतत कार्य करते रहने का मनोबल मिला ।

सर्वेक्षण के समय शोध प्रबन्ध के चित्रों व स्थान की जानकारी प्राप्त करने के लिये जिन महानुभावों, विद्वानों, ग्रामीण व शहर की

सभी वर्ग की महिलाओं और सज्जनों से सहायता व सहयोग मिला (इसमें मैं स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह के प्रति विशेष) आभार प्रगट करती हूँ जिन्होंने अपने गाँव में मेरी हर प्रकार से सहायता की । भगवान उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे ।

मैं उन सभी संग्रहालयों, पुस्तकालयों एवं कला वीथियों के निर्देशकों और व्यवस्थापकों, विशेषकर प्रताप पब्लिक लायब्रेरी करनाल, युनिवर्सिटी लाइब्रेरी, कुरुक्षेत्र लाइब्रेरी, डी०ए०वी० कालेज करनाल, लायब्रेरी डी०ए०वी० कालेज आफ एजूकेशन करनाल, लायब्रेरी डी०ए०वी० कालेज, कानपुर, युनिवर्सिटी लायब्रेरी, कानपुर, के प्रति भी अपना आभार प्रदर्शित करती हूँ जिन्होंने पुस्तकें, ग्रन्थ व पत्रिकायें आदि देकर मेरी सहायता की है । सभी कला विन्द जो मेरे कार्य के सम्बन्ध में मेरे सम्पर्क में आये तथा मेरी हर कठिनाई में सहायता की, उन सभी के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ । डी०ए०वी० कालेज, कानपुर में चित्रकला विभाग में डा० एम० एच० अन्सारी तथा डा० एस० एन० सक्सेना एवं श्री अभय द्विवेदी जी को धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझूँगी जो मेरे कार्य में सहायक रहे और इस विभाग के सभी लोगों को तथा जाने अन्जाने सभी व्यक्ति जिनसे यहाँ मेरी भेंट हुई मैं आभारी हूँ यहाँ मुझे जो स्नेह व सहायता का वातावरण मिला, जितनी प्रशंसा करूँ कम होगी ।

मैं डा० कुमारी रेनू धवन की भी धन्यवादी हूँ जिनके यहाँ विभाग में कुछ समय के सहयोग में ही मैंने कार्य करने की प्रेरणा व साहस जुटाया ।

मैं डा० स्वामि प्यारी आनन्द प्राध्यापिका ए०एन०डी० की विशेष कर सदा ही आभारी रहूँगी जिनकी बहुमूल्य सलाह ने प्रत्येक पग व कठिनाई

में मेरा मार्ग प्रदर्शित किया । श्री एम बी० द्विवेदी जी के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ, अपना अमूल्य समय व सहयोग देकर टंकण कार्य पूरा किया ।

मैं श्री मोहन लाल जी कलाकार एस०सी०ई०आर०टी० की धन्यवादी हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मुझे नये नये सुझाव दिये । श्री गुप्ता जी असिस्टेन्ट डायरेक्टर हरियाणा रूरल डेवलपमेन्ट बोर्ड के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने मुख्य ग्राम सेविकाओं के द्वारा विभिन्न जिलों के गाँवों के सर्वेक्षण में मुझे हर प्रकार की सहायता व सुविधा प्रदान की । मैं डा० अश्विनी शर्मा व स्वर्गीय चीमा की कृतज्ञ हूँ जिन्होंने फोटोग्राफी में मेरी हर सम्भव सहायता की ।

मैं श्री स्थाणु दत्त शर्मा, रिटायर्ड हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र युनिवर्सिटी की आभारी हूँ जिन्होंने हरियाणा के प्राचीन रीति रिवाजों, रहन सहन के विषय में मुझे भरपूर जानकारी दी जिससे मैं हरियाणा के लोक जीवन में व्याप्त कलात्मकता के प्रति और आकर्षित हुई ।

मैं श्रीमती राज के गौवर प्रधानाचार्य - डी०ए०वी० कालेज आफ एजुकेशन करनाल के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रगट करती हूँ जिनकी शुभ - कामनाओं, प्रोत्साहन व सहयोग ने ही मुझे मेरे काम में गति प्रदान की ।

मैं अपनी परम सहयोगिनी श्रीमती विमला श्रीवास्तव की आभारणी हूँ जिन्होंने मुझे ये कार्य पूर्ण करने में अपना पूरा सहयोग दिया । श्री नौनिहाल साहब व अन्य मेरे सभी सहयोगियों की भी धन्यवादी हूँ जो मेरे काम में रुचि लेकर समय समय पर मुझे प्रोत्साहित व अपनी शुभकामनाएँ देते रहे ।

पूज्य गुरुजी माननीय परम श्रद्धेय निर्देशक - डा० राम कँवर,

अध्यक्ष - चित्रकला विभाग, डी०ए०वी० कालेज, कानपुर सदैव मेरे प्रेरणा स्रोत रहे हैं । आपकी अध्यक्षता, निर्देशन, मार्ग दर्शन, शुभ आशीर्वाद व प्रोत्साहन से ही मैं इस सफलता की भागी हो सकी हूं । मैं अन्तस्थ हृदय से आपकी आभारिणी हूँ तथा ईश्वर से आपके यश व कीर्ति के लिए प्रार्थना करती हूं ।

मैं डा० प्रदीप कुमार माथुर व उनके सब परिवार का धन्यवाद किन शब्दों में व्यक्त करूँ जिनके सहयोग, स्नेह, प्यार से ही मैं इस शोध - कार्य को प्रारम्भ व पूर्ण रूप देने में सफल हो सकी । मैं भगवान से उनकी सम्पन्नता, मान प्रतिष्ठा व दीर्घायु के लिये प्रार्थना करती हूं ।

प्रत्येक सोपान पर मेरे मनोबल को बढ़ाने वाले तथा सम्पूर्ण कार्य में मार्ग प्रशस्त कर अतुलित योगदान के लिये अपने पति व अपने परिवार के सब सदस्यों के प्रति कृतज्ञता प्रगट करना मैं उचित नहीं समझती क्योंकि ये अपनों के लिए केवल औपचारिकता होगी ।

अतः मेरा यह शोध प्रबन्ध सभी के सहयोग एवं शुभ कामनाओं का स्वरूप है ।

विजय लक्ष्मी माथुर

विजय लक्ष्मी माथुर

दिनांक - 20.10-86

अनुक्रमणिका

चित्र - सूची

45 (ब) -2	होई	48
45 (3)	होई	49
45 (स) -1	"	50
45 (स) -2	"	51
46	दीवाली	52
47	"	53
48	"	54
49	"	55
50	थायस	56
51	"	57
52	"	58
53	"	59
53 (11)	"	59 (11)
54	नाग पंचमी	60
54 (2)	"	60 (2)
55	"	61
56	साँझी	62
57	"	63
58	"	64
59	"	65
60	"	66
61	"	67
62	"	68
63	"	69
64	"	70

"

अध्याय प्रथम

लोक कला, अर्थ, परिभाषा, उत्पत्ति एवं विकास

अध्याय - प्रथम

लोककला - अर्थ, परिभाषा, व्युत्पत्ति एवं विकास

कला मानव की आन्तरिक अनुभूति का साकार चित्रित रूप है । सृष्टि के साथ ही कला का भी जन्म माना जाता है । प्रत्येक देश की सांस्कृतिक उन्नति कला के विकास पर ही आधारित होती है । अतः किसी भी सभ्यता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये कला की सहायता की आवश्यकता होती है या दूसरे शब्दों में कला सभ्यता का दर्पण है। समस्त कलाएँ मनुष्य की सौन्दर्य वृत्ति का परिणाम है । अपने चारों ओर के वातावरण से प्रेरित होकर मनुष्य में जो सौन्दर्य धारणा उत्पन्न होती है, वही कलाओं में प्रतिफलित होती है[1]

1- डा० स्वामि प्यारी आनन्द - अवध की लोक चित्रकला (अप्रकाशित शोध ग्रन्थ) पृ० - 57

लोक शब्द का अर्थ जनपद अथवा ग्राम नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली समस्त जनता है जो व्यावहारिक ज्ञान पुस्तकों से प्राप्त नहीं करते । श्री शैलेन्द्र सामन्त के अनुसार लोककला जनसामान्य, विशेषतया ग्रामीण जन समुदाय की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है ।[1]

कुछ विद्वानों के अनुसार लोक शब्द संस्कृत के लोक दर्शन धातु में 'घञ' प्रत्यय लगाने से बना है । इस धातु का अर्थ है देखना । लट लकार अन्य पुरुष एक वचन में इसका रूप होता है 'लोकते' अतः लोक का अर्थ हुआ 'देखने वाला' वह समस्त जनसमुदाय जो इस क्रिया को करता है, लोक के अन्तर्गत समाविष्ट है । लोक की व्यापक भाव सत्ता को ग्राम या नगर के संकुचित क्षेत्र में नहीं बाँधा सकते ।

लोक का अर्थ सरल स्वाभाविक मानव समाज है, जिसकी भावनाओं विचारों तथा मान्यताओं में वास्तविक कल्याण के तत्व विद्यमान रहते हैं । इसको लोक संस्कृति भी कहते हैं ।[2] श्री शैलेन्द्र नाथ सामन्त के अनुसार, लोक कला जनसामान्य की विशेषताओं व ग्रामीण जनसमुदाय की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है । लोक की व्यापक भाव सत्ता को ग्राम या नगर की संकुचित सीमा में बद्ध नहीं किया जा सकता । हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है। बल्कि नगरों और गाँवों में फैली समस्त जनता है । जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं।[3] अक्षरशः सत्य प्रतीत होते हैं । लोक शब्द का अर्थ है जनता इसमें नगरीय व ग्रामीण का बोध नहीं होता । जनसाधारण ने अपनी रुचि के अनुसार लोक कला को जिन रूपों में अपनाया, वे परम्परा के रूप में आगे भी अपनाये जा रहे हैं । परम्परा में प्रत्येक मानव इतना अधिक बँधा हुआ है कि उसने आज तक किसी भी प्रकार का परिवर्तन लाने का साहस नहीं किया ।

1- डा० विद्या चौहान - लोकचित्रों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पृ 41

2- डा० स्वामि प्यारी आनन्द - अवध की लोक चित्रकला पृ 68

3- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - जनपद वर्ष अंक पृ० 65

फोक शब्द की उत्पत्ति एंग्लोसेक्शन शब्द फोर से हुई है । जर्मनी में यह 'वोक' के रूप में जाना जाता है।फोक के संकुचित व व्यापक दोनों रूप हैं।संकुचित में इसका अर्थ असंस्कृत व मूढ़ समाज होता है तथा व्यापक अर्थ में सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोगों के लिए होता है।फोक का हिन्दी में अर्थ 'लोक' 'जन और 'ग्राम' तीनों से है । किन्तु लोक शब्द को उपयुक्त महत्व प्राप्त है।ऋग्वेद में लोक भावना के उद्गम,शब्द व भाव की उपलब्धि होती है । इसमें लोक शब्द का प्रयोग 'स्थान' और 'भुवन' के अर्थ में प्राप्त होता है।[1]

लोककला हमारे प्रतिदिन के जीवन में विभिन्न रूपों में गुंथी है । यह कला शास्त्रीय बन्धनों से मुक्त होती है । अतः इसकी ऐतिहासिक परंपरा का अपना अलग ही स्वरूप है।लोककला धार्मिक भावनाओं और आध्यात्मिक अनुभवों पर विशेष आधारित है।[2] इसमें कलाकारों के नाम को महत्ता नहीं दी जाती ।बल्कि परिवार व क्षेत्र के कल्याण की भावना अधिक निहित होती है।इसमें चातुरी प्रदर्शन व प्राविधिक प्रयोग का कोई स्थान नहीं है । इसमें मूल सांस्कृतिक विशेषताओं एवं मौलिक परंपराओं का परित्याग नहीं किया जाता बल्कि कला के प्रति,नवचेतना का वास इसके अन्तस में यथावत रहता है।लोकमानस सृजन परंपरा एवं संस्कृति की मूल भावनाओं से सदा ओतप्रोत रहा है

प्रत्येक त्योहार का लोक कला के रूप में किसी न किसी प्रकार संबंध रहता है । त्योहार को कब और क्यों मनाते हैं, घर की बड़ी - बूढ़ी अपनी बहू - बेटियों को समझाती रहती हैं जो इसकी ऐतिहासिकता का प्रमाण है । प्रत्येक वर्ग की भारतीय नारी त्योहारों पर व्रत रखती है और अनेक कलाकृतियों का सृजन करती है । करवा चौथ, अहोई - अष्टमी दीवाली आदि अवसरों पर घर में परम्परागत लोक - कृतियों के दर्शन होते

1- ऋग्वेद - 10, 90, 14 पृ०

2- एजूकेशनल सिग्नीफिकेंस आफ इंडिजिनअस अफ्रीकन आर्ट, पृ० 27

है । इन लोक कला कृतियों के विभिन्न रूप चित्रकला - लोक साहित्य, लोक संगीत, लोक नृत्य तथा उपयोगी कलाओं मे देखने को मिलते हैं । लोक कला मे जहाँ समाज के अतीत के अनुभव रहते हैं, वहाँ वर्तमान का पुट भी दिखाई देता है,यह फिर भी युगयुगान्तरों से चली आ रही परम्पराओं के साथ रहती है । इसकी उत्पत्ति ऋतु परिवर्तन के साथ बदलते रहने वाले मनोभावों और उनके प्रति हमारी तीव्र प्रतिक्रियाओं की मूल चेतना से होती है । वर्षा का प्रत्येक ऋतु परिवर्तन स्त्रियों के भीतर छुपी कलात्मकता को उदित करता है । प्रतिदिन के कार्यों मे कम उल्लास तथा सब कार्यों मे नया आनन्द व उल्लास दिखाई देने लगता है ।

लोक कलाकार जिस वस्तु को जिस रूप में देखता है, जानता है, उस रूप मे तो अभिव्यक्ति देता ही है तथा साथ ही अपने नये अनुभव भी जोड़ता चला जाता है जिससे लोककला शशक्त बनती है तथा इन दोनों के मेल से ही इतिहास बनता है और परम्परा भी जीवित रहती है ।

कलकत्ता के प्रोफेसर एस० के० सरस्वती के अनुसार लोक कला जन - समुदाय के सामाजिक जीवन में व्यवहृत सहकारी कला है जिसकी जड़ें धरती में मजबूत हैं । यह लोक में प्रचलित रीति रिवाजों और विश्वासों से संबन्धित होती है । इसकी परम्परा रूढ़िगत होती है ।

श्री स्टोकेस के अनुसार इसका सम्बन्ध आदि युग के मानव के साथ गहरा होता है । सामाजिक, धार्मिक अभिव्यक्तियों से कला को जो रूप

1- डा० सी० एल० झा - कला के दार्शनिक तत्व, पृ० 138

मिलता है, इसका विकसित रूप ही हमारी आज की लोक कला है । यह कला कब से चली आ रही है तथा इसका रूप कितना बदला बिगड़ा है, यह बताना कठिन है ।

मुख्य रूप से लोक कला का उद्गम तथा मुख्य स्थल ग्राम्य जीवन है क्योंकि इसमें ग्राम्य - जीवन की सरल सहज तथा स्वाभाविक अभि - व्यक्ति होती है । इसी से एनीबेसेन्ट ने कहा था कि कला निर्धनों का खाद्य पदार्थ है । धनपतियों की विलास सामग्री नहीं है ।[1]

परिवर्तनशील मानव चिन्तन का प्रभाव ललित कलाओं पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है किन्तु लोक कला युगों युगों से ग्रामीणों के आंतरिक जीवन से सम्बद्ध होकर अबाध गति से प्रभावित होती जा रही है । इस पर फैशन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । इसमें केवल लोक जीवन की भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है । जिससे नितान्त रूप से परम्परा, सरलता, अकृत्रिमता और आह्लाद का स्वरूप ही मिलता है । जिसको जन - मानस भली प्रकार ग्रहीत किये रहता है । जन्म से मृत्यु तक कुछ ऐसे अंकन उपक्रम के साथ किये जाते हैं, जिन पर धर्म की छाया रहती है । भारतीय जीवन में कर्म का उच्च स्थान है । अतः इसमें भावना की ही प्रधानता रहती है । विशेष दक्षता की आवश्यकता नहीं है । प्राचीन काल में यह कला लोक समाज तक ही सीमित थी । अतः घरेलू कला के रूप में ही इसका अस्तित्व बना रहा । किसी विद्यालय में इसकी शिक्षा नहीं दी जाती बल्कि माँ घरेलू काम के रूप में ही इसकी शिक्षा अपनी पुत्री को

1- साप्ताहिक हिन्दुस्तान - लोक कला के मूल तत्व 26 जनवरी, 56, पृ23

देती है । बचपन से देखते देखते पुत्री भी इसमें दक्षता प्राप्त कर लेती है और पुत्री इसे और आगे ले जाती है । इस प्रकार एक के बाद दूसरी पीढ़ी भी इससे अवगत होती जाती है ।

गाँवों में नगरों की अपेक्षा परिवर्तन कम होता है । अतः लोक-कला भावों में एक धरोहर के रूप में लोक जीवन में रची पची पड़ी है । इसको देखते हुये कह सकते हैं कि लोक कला की विशेषता इसकी अपरिवर्तन शीलता है[1] । इसका कारण इसके बनाने में सरलता का होना ही है । यह घर में उपलब्ध सामान से आसानी से बन जाती है । टहनी में रूई ब्रश का काम देती है । चावल गेहूँ का आटा, खालस, हल्दी, फूल व पत्तियों के रंग, गोबर व मिट्टी, इन्हीं सरल सुलभ वस्तुओं से इसका निर्माण होता है[2] । यही कारण है कि आरम्भ से ही यह कला फलती गई । लोक में व्याप्त धार्मिक भावना ने इसे और सरल बनाया तथा समाज ने इसे मान सम्मान दिया । यही कारण है कि आज भी इसका और अधिक मनोहारी रूप त्योहारों, उत्सवों व विभिन्न संस्कारों पर घर की महिलाओं द्वारा धरती दीवार पट्टों, घर के द्वार पर उपयुक्त भावना से चित्रित होता है । यहाँ तक कि मनुष्य अपने शरीर पर भी इसे धार्मिक भावना के साथ अंकित करते हैं । जैसे मेंहदी, गोदने, महावर, बिन्दी आदि धार्मिक व सौन्दर्य दोनों ही भावनाओं के प्रतीक हैं ।

इस कला का उद्देश्य पृथक वातावरण में प्राचीन परम्पराओं को

1- पुष्पा देवी - मनोरमा 26 फरवरी 1956 पृ० 23

2- स्वयं सर्वेक्षण के आधार पर - 2-2-84

अमिट बनाये रखना है । इस वातावरण का प्रभाव आकृतियों शैली, उपकरणों, धार्मिक क्रियाओं, मनोरंजन के साधनों, जन्म, विवाह, मृत्यु संस्कारों तथा फसल के उत्सवों आदि पर विकसित होता दिखाई देता है ।[1] क्योंकि अपने चारों ओर के वातावरण का प्रभाव मनुष्य की सौन्दर्य तृप्ति का परिणाम है । जन - साधारण ने अपनी रुचि के अनुसार लोककला के जिन रूपों में अपनाया वे परम्परा के रूप में आगे भी अपनाये जा रहे हैं । परम्परा से मानव इतना बँधा है कि आज तक उसने किसीप्रकार का परिवर्तन लाने का साहस नहीं किया । यही कारण है कि प्रत्येक त्योहार जैसे करवा चौथ, अहोई, साँझी, अष्टमी, चकरी, दिवाली, गोवरधन आदि अवसरों पर घर घर में परम्परागत लोक कृतियों के दर्शन होते हैं तथा इन लोककृतियों के भिन्न भिन्न रूप लोककला, लोक कथा - लोक साहित्य, लोक नृत्य, संगीत आदि में मिलते हैं ।[2] असंख्य आकृतियाँ, रूपाकार भाव भंगिमायें तथा प्रतीक इन चित्रों के सजीव अंग होते है । यह अतीत की समृद्ध संस्कृति की स्मृति को उजागर करती है । इन चित्रों को देखने पर व्यापक मंगल तथा सौन्दर्य की भावात्मक प्रतीति का अहसास सहज मानव मन को परमानन्द की अनुभूति प्रदान करता है ।

लोकचित्र कला की परिभाषा :-

अनपढ़ कृषक तथा ग्रामीण लोगों में मौखिक रूप से चली आ रही कला जिसकी जड़ें किसी प्रकार की शास्त्रीय मान्यताओं को स्पर्श नहीं करती - लोक कला का नाम दिया गया । श्री शैलेन्द्र के अनुसार यह ग्रामीण

1- गिरिजा किशोर अग्रवाल - अशोक कला निबन्ध, पृ० 118

2- स्वयं सर्वेक्षण के आधार पर ।

जनों की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है । अन्य विद्वानों ने लोक-कला की परिभाषा के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं, उन सबका निष्कर्ष यही है कि पुस्तकीय ज्ञान से भिन्न व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित सामान्य जन समुदाय की अनुभूति की अभिव्यक्ति ही लोक कला है ।

परिवर्तनशील मानव चिन्तन का प्रभाव ललित कलाओं पर स्पष्ट रूप से लक्षित होता है । इसमें परम्परा, सरलता, अकृत्रिमता और स्पर्शो का स्वरूप ही मिलता है । जो जन मानस में अत्यधिक लोक प्रिय है ।[1]

वैदिक काल में बहुत से देवी देवताओं का उल्लेख मिलता है । जैसे इन्द्र, वरुण, वायु, गायत्री, ऊषा आदि तथा मन्त्रों में इनके रूपों की कल्पना की गई है जिससे उनकी प्रतिमायें बनाने में सहायता मिली । वैदिक विचार दर्शन का मुख्य उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति था । अतः प्रतिमा, उपासना तथा प्रतीक उपासना का आरम्भ हुआ । इसी धार्मिक आदर्श ने बाद में चलकर मूर्ति पूजा को जन्म दिया । जिसके फलस्वरूप देवी देवताओं की प्रतिमायें निर्मित की गईं ।[2]

धर्म का लौकिक तथा साकार रूप पाषाण, देव, नाग, वृक्षपूजा आदि की शक्ल में हमारे सामने हैं और निराकार तथा सूक्ष्म रूप वेद-उपनिषदों में है । परन्तु धर्म के इन दोनों रूपों का अद्भुत सामंजस्य समन्वय लोककला में हुआ है ।[3]

1- डा०स्वामीप्यारी आनंद-अवध की लोक चित्रकला पृ०-67(अप्र शो प्र)

2- पुष्पा देवी-लोककला का उद्गम-मनोरमा-दिसम्बर 1973 पृ०-39

3- चित्रकार दादा-साप्ताहिक हिन्दुस्तान-लोककला के मूलतत्व-26फरवरी, 1956, पृ०- 23

प्रागैतिहासिक काल से लेकर आर्यों के विचार दर्शन में इन प्रतीकात्मक आकारों के स्रोत मिलते हैं । जो सांस्कारिक सज्जाओं में भिन्न भिन्न रूपों व आकारों में विकसित हुये जिनका प्रयोग आज भी स्त्रियाँ करती हैं । तथा उन्हें लोक कला की संज्ञा भी मिली हुई है । बाद में प्राचीन काल से चले आ रहे विश्वास व संस्कार भारतीय लोक कला परम्परा में ऐसे घुल मिल गये जिनको आज यहाँ की नारी धार्मिक कर्तव्यों के रूप में संरक्षित किये हुये हैं ।[1]

लोक गीतों में प्रायः लोक विश्वास, रीतिरिवाज तथा परम्पराओं के बहुत स्पष्ट विवरण होते हैं । अतः इनके सहारे लोक कला पनपी । इनका लिखित रूप उपलब्ध नहीं होता । वे एक जिह्वा से दूसरी जिह्वा पर स्वतः थिरकते चले जाते हैं ।[2] अधिक अवसरों पर लोक गीत व कला - कृतियों का साथ साथ प्रयोग होता है । जैसे त्योहारों, विवाह तथा पुत्र जन्मोत्सव पर । ऐसी अवस्था में ये दोनों एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं । लोककला के ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलेंगे जिसके साथ किसी न किसी प्रकार की कथा व गीत न जुड़ा हो । लोक साहित्य व लोक गीतों में रहन - सहन, रीति रिवाज और लोक मानस की इच्छा, आकांक्षाएँ अनुरंजित होती हैं ।[3]

लोक कला परम्परा प्राप्त कला का एक ऐसा महत्वपूर्ण रूप है, जिसे गवांरू कला या ग्राम्य कला कह कर उपेक्षित नहीं किया जा सकता । जिस

1- स्वामि प्यारी आनंद कुमार की लोकचित्रकला का अध्ययन - पृ० 64 (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)

2- राजाराम शास्त्री - हरियाणा का लोक साहित्य पृ 3

3- वही पृष्ठ - ।

प्रकार एक मनोवैज्ञानिक परिच्छेदक बालवृत्ति की प्रेरणा को भी प्रौढ़ मानव के चेतना हीन भाग में सुरक्षित पाता है और उसके स्वभाव एवं प्रकृति की परीक्षा कर सकता है उसी प्रकार आदिम लोक कला जो कि प्रागैतिहासिक युग में उत्पन्न हुई उसकी अन्तस्तर गर्भिता की खोज करके भारतीय संस्कृति तथा कला के मूल का पता लगाया जा सकता है ।[1]

"Folk art is one of the important phases of tradition art which cannot be prejudicially ignored as crude village art. Just as the psycho-analysts find the urges of the child mind preserved in subconcious region of the grown up mind and can examine the trend of his character, so one can get to the bottom of our culture and art by investigating the inner significance of such primitive folk art, which originated from the pre-historic days."

लोक कला की सूक्ष्मता, पवित्रता मनुष्य को उस धरातल पर पहुँचा देती है, जिसमें मानव अपनी संस्कृति के दर्शन कर लेता है । अतः इसे धर्म, परम्परा, विश्वास तथा श्रद्धा भावनाओं का प्रतीक कहना ही उचित होगा । मानवता के विकास के साथ इसका स्वरूप इन सभी मान्यताओं को अपने में संजोये हुये है ।[2] आदि काल में जादू टोना और धार्मिक भावनायें ही इसे सांकेतिक रूप में प्रस्तुत करने के लिये मानव को प्रेरित करती रही हैं । कभी डर, हर्ष, आश्चर्य, भय उस पर आरूढ़ होता था

1- असित कुमार हालदर - आवर हेरीटेज इन आर्ट पृ० 5

2- स्वामि प्यारी आनन्द - कुमाऊँ की लोक चित्रकला - पृ० 67 (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)

तो वह उससे अपने को बचाने हेतु या सुरक्षा के लिए इसका उपक्रम करके विभिन्न स्वरुपों की रचना करके त्राण पाता था जिससे जीवन सुगम होता था।[1] फ्रेजर और टायलर नामक विद्वानों ने उपर्युक्त भावना को ही महत्व दिया है। इन दोनों विद्वानों के कारण लोक कला को आदिम कला के निकट माना जाने लगा। यहाँ तक कहा कि " आदिम कला ही अधिक विकसित समाजों में पहुँचकर लोक कला कहलाई।[2]

आज का सभ्य मानव उन्नति की ऊँची सीढ़ी चढ़ने के बाद भी इससे अछूता नहीं है। वह इससे शरीर और आत्मा वाला सम्बन्ध जोड़े है। सर जान रस्किन ने लोक कलाओं में समाज निर्माण के तत्वों का उद्घोष किया है। ऐ लोइस रिएल ने लोक कलाओं का निष्पक्ष अध्ययन किया। इन्होंने लोक कला को अन्ध विश्वासों से युक्त भावना की संज्ञा दी है। मनुष्य किसी भी प्रेरणा से जब इसकी रचना करता है तो वह अन्ध विश्वास नहीं बल्कि श्रद्धा और प्रेम से अपनी अभिव्यक्ति साकार करता है। यही विशुद्ध भावना इसके पीछे है न कि अन्ध विश्वास और अज्ञान। इस प्रकार इनका महत्व कम न होकर बल्कि और भी बढ़ जाता है।[4]

विदेशी विद्वान लोक कला को सत्य हृदय ग्राही और अलंकरण की वस्तु मानकर चले हैं। इसमें व्यक्तिगत रचनाकार का नाम तक नहीं होता जो उसके आत्मिक स्वरुप को प्रस्तुत करने में सहयोग देता है। इसमें स्वाभाविकता

1- वही

2- डा० गिर्राज किशोर अग्रवाल - अशोक कला निबन्ध पृ० 125

3- " " " पृ० 124

4- डा०स्वामि प्यारी आनंद अवध की लोक चित्रकला, पृ- 68 (अ शो प्र)

का गहन पुट होता है । श्री जी० एस० स्टीवेंसन ने तो उपर्युक्त विचारधारा प्रस्तुत करते समय यहाँ तक कहा है कि लोक कला इच्छा भावना पूर्ण अभिव्यक्ति है ।[1]

परन्तु भारतीय विद्वानों के विचार अलग हैं । उनके अनुसार ' कला जन समुदाय के सामाजिक जीवन में व्यवहृत सहकारी कला है । जिसकी जड़े धरती में गहरी हैं । यह लोक में प्रचलित रीति रिवाजों और विश्वासों से सम्बन्धित है ।[2] डा० झा व डा० सत्येन्द्र ने इसे परम्परागत व धर्म से सम्बन्धित कला कहा है । जिसमें लोक मानस की झांकी हमारे समक्ष रूपसी बनकर नृत्य कर उठती है ।

कुछ समीक्षकों ने लोककला को गाँव की कला कहा है । उन्होंने लोक शब्द से साधारण जनता के अर्थ में ग्रामीण जनता को लिया है । अतः लोक कला का क्षेत्र बहुत सीमित हो गया है । असित कुमार हल्दार लिखते हैं कि लोक कला को उसके ग्रामीण वातावरण में ही रहने देना चाहिए । यदि उसकी उन्नति के लिये उसे नागरिक क्षेत्र में लाया गया तो वह ललित कला में विघ्न डालेगी तथा अपने प्राकृत स्वाद रंग रस को भी त्याग देगी । जो दोनों के लिए अनुचित व हानिकारक होगा '' । वारता में प्रकाशित ' फोक आर्ट इन पोलैण्ड ' में लोक कला को अशिक्षा आधृत बताया है और ग्रामीण किसान वर्ग को इसके कलाकार के रूप में माना है तथा लोक-कला को वर्तमान शास्त्रीय और व्यवसायिक कला की पृष्ठ भूमि के रूप में

1- जी० एस० स्टीवेंसन - एजूकेशनल सिग्नीफिकेन्स आफ इंण्डियन्स, अमेरिकन आर्ट पृ० 24

2- डा० सी० एल० झा - कला के दार्शनिक तत्व पृ० 138

मान्यता भी दी गई है ।[1]

श्री हर्बर्ट रीड ने इसका आरम्भ नीग्रो और बुशमैन जातियों के अध्ययन के बाद की बताई है जो मानव के आरम्भ की कला न होकर बाद में विकसित हो पाई है ।[2] आरनोल्ड हाउसार ने लोक कलाओं को समाज में अशिक्षित वर्ग की कला माना है ।[3]

हमारी विचारधारा के अनुसार आरम्भिक कला को ही लोक कला की संज्ञा दी है क्योंकि सच्चे अर्थों में वह कला सामाजिक तथा वर्ग हित की भावना से ओत प्रोत थी ।'' आरम्भ में ही इसके दो वर्ग हो गये - 1- एक वर्ग विशेष की कला 2- ऐसी कला जिसके द्वारा कोई विशेष व्यक्तित्व ही स्वयं को व्यक्त कर सके । ये विचार काव्य कला के लिए भी उपयुक्त हुये । उसमें काव्य कला को व्यक्तिगत व अव्यक्तिगत माना है । ये सभी कलायें अद्वितीय और लाक्षणिक दोनों को व्यक्त करती है ।[5]

यह सामान्य सम्पत्ति जनसाधारण की है किसी वर्ग विशेष की नहीं । श्री सेलोह सरिएल ने तो इस कला का स्रोत वर्ग ही विभिन्न मान लिया है । इसके महत्व को उच्च वर्ग की कला के समक्ष रखकर तोला

1- असित कुमार हलदार - भारतीय चित्रकला पृ० 42
2- डा० सी० एल० झा - कला के दार्शनिक तत्व पृ० 138
3- - वही -
4- आर्नोल्ड हैरोसन - फिलोसफी आफ आर्ट हिस्ट्री पृ० 279-80
5- क्रोशे - दि फिलोसफी आफ आर्ट हिस्ट्री - पृ० 286

जाये । शिक्षित वर्ग की कला लोकानुभव से दूर रहती है परन्तु लोककला जन मानस की भावनाओं की प्रतीक ही है । यह परम्परागत प्राप्त कला का रूप है जो जन साधारण की सामान्य सम्पत्ति है, किसी वर्ग विशेष की नहीं ।[1]

ग्रामीण लोग नगर निवासियों की अपेक्षा अधिक सरल सीधे सादे होते हैं । अतः लोक कला की सरल स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अनुसार लोक कला को ग्राम में अधिक अनुकूल वातावरण मिलता है । ग्रामीणों का जीवन आडम्बरों से दूर तथा धार्मिक होता है । अतः वे कला की मान्यताओं को सदा रूढ़िगत रूप में मानते चले आये हैं । वे तार्किक शक्ति का प्रयोग नहीं करते पर यह भी नहीं हो सकता कि इसे शहरों से हटा कर घोर ग्रामों तक ही सीमित कर दिया जाय ।

यदि लोक कला की तुलना आदि वासियों की कला से की जाये तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 30 हजार वर्षों में भी लोककला की एक रूपता में कोई परिवर्तन नहीं आ पाया है ।

लोक कला में क्षेत्रीयता होती है । किसी क्षेत्र में रहने वाले लोगों की आदतें वहाँ के जलवायु के अनुसार होती है । इस प्रकार जलवायु से प्रभावित होने के कारण जो आदतें और विचार धारा बनती हैं उनका प्रभाव सामाजिक संगठन, रीति रिवाजों और धार्मिक विश्वासों पर पड़ता है । स्थानीय विशेषताओं के कारण कला में रूपात्मक, तकनीकी और

---

1. एलर्स रियल - दि फिलासफी आफ आर्ट हिस्ट्री पृ० 290
2. चित्रकार दादा - लोक कला के मूल तत्व - साप्ताहिक 26 ,56, पृ23

विषयगत विशेषतायें उत्पन्न होती है । लोक कला की दूसरी विशेषता जाति अथवा कबीलों से सम्बन्धित है । विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के निश्चित व्यवसाय होते हैं उनसे उनकी जातिगत भावनाओं का निर्माण होता है । किसी विशेष व्यवसाय में लगे हुये व्यक्तियों का प्रकृति के जिन उपकरणों से सम्बन्ध रहता है । उन्हीं से सम्बन्धित अनेक कलारूप होते हैं ।

लोककलाकार रुढ़िवादि होने के कारण नई परम्पराओं के सहज रूप में ग्रहण नहीं करता और प्राचीन परम्पराओं की अन्धी - अनुकृति करता चलता है । बिना कुछ सोच विचार के क्योंकि उसे डर होता है कि परंपरा छोड़ने अथवा तोड़ने से उसका गृहस्थ जीवन व्यवसाय तथा मानसिक सन्तुलन सब अस्त - व्यस्त हो जायेगा तथा यहाँ तक समझता है कि देवी - देवता का उस पर कोप होगा यही कारण है कि हमें लोक कलाओं में हजारों वर्षों से चले आ रहे एक ही अभिप्राय (motifs) मिलते हैं ।[1]

लोक कला की विशेषता ' अस्थिरता ' भी है - यह धीरे - धीरे विकसित होती है । परम्परा के रूप में बहुत अधिक समय तक रुढ़िग्रस्त रहने के कारण लोक कला शीघ्र नहीं बदलती - इसके साथ जुड़े विश्वास भी स्थिर रहते हैं ।

लोक कला का ग्रामीण तथा कृषक वर्ग से अधिक सम्बन्ध होने के कारण इसमें केवल उन्हीं लोगों से सम्बन्धित क्रिया कलाप, रीति-रिवाज, मान्यतायें तथा अन्धविश्वास का चित्रण मिलता है । लोक कला की एक

1- स्वयम् सर्वेक्षण के आधार पर दिनांक - 14 अप्रैल 1984

ही व्यक्ति चित्रित नहीं करता बल्कि दूसरे व्यक्ति भी कुछ न कुछ करते हैं क्योंकि ऐसा करना अच्छा शगुन माना जाता है।[1] अतः सामाजिक तथा सामूहिक भावना होने के कारण इसमें सहकारिता भी रहती है।

लोक कला धर्म तथा अलौकिक भावनाओं एवम् अन्धविश्वासों से बहुत प्रभावित है यही कारण है कि प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर पर कला-कृतियों का उपयोग अनिवार्य रूप से होता है। यही कारण है कि इन कलाओं का विकास निरन्तर होता चला आ रहा है। परन्तु एक दुष्परिणाम यह है कि आकृतियों में परिवर्तन करने में कलाकारों को डर लगता है और प्राचीन आकृतियों की अनुकृति करने से बौद्धिक हीनता की भावना उत्पन्न होती है जिससे कलाकृतियों के स्तर में गिरावट आती है।[2] भावनाओं का प्राबल्य होने से शैली की कमजोरियों की ओर ध्यान नहीं जाता और इस प्रकार कला धीरे धीरे पतित होती जाती है।

लोक कला का टेक्नीक बहुत सरल होता है। इसके लिए किसी विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती।[3] और त्रुटियाँ करना भी माफ होता है जो सामग्री आसानी से प्राप्त हो उसी से कलाकार अपने ढंग से एक ही कला का रूप देते हैं। यह सरल होने के साथ साथ महत्वपूर्ण भी है। इसका कारण है कि इसमें हृदय तत्व की प्रधानता रहती है जिससे इस कला में भावों की गहराई और विस्तार आते हैं। अतः यह आकर्षक हो जाती

1- सर्वेक्षण के आधार पर - दिनांक 10 दिसम्बर 1983

2- डा० स्वामि प्यारी आनन्द - अवध की लोक कला - पृ० 15

3- डा० सी० एल० झा - कला के दार्शनिक तत्व पृ० 139

है । लोक कला कार किसी व्यक्ति विशेष को प्रसन्न करने यश, उपदेश, प्रशंसा अथवा धन प्राप्त करने आदि के उद्देश्य से कला सृष्टि नहीं करता अतः अस्वाभाविक प्रभाव नहीं पड़ने पाता । उसकी अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से स्वतन्त्र तथा स्वाभाविक रहती है । यह तो जन जीवन से उत्पन्न जनता की भावना के साथ सुरक्षित, जनता की ही वस्तु है । अतः विकासशील है ।

लोक कलाओं का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जाता है पर दो अधिक महत्वपूर्ण है -

1- सामग्री के अनुसार

2- प्रयोगों के अनुसार

1- सामग्री के अनुसार :- लोक कला 8 प्रकार की मानी गई है ।

(क) पहनावा :- कपड़ों पर कढ़ाई तरह तरह की चीजें चिपकाना जैसे मोती - सितारे, सलमें आदि ।

(ख) आभूषण :- सोने चांदी में पत्थर, हाथी दांत, सीप, लाख आदि से काम । इसके अतिरिक्त विशेष अवसरों के लिये फूलों आदि से भी सुन्दर आभूषण बनाये जाते हैं ।

(ग) पात्र - मिट्टी, पत्थर, लकड़ी, बेंत, पीतल, ताँबा, लोहे आदि के बरतन बना कर उन पर सुन्दर चित्रकारी की जाती है । कहीं डिजाइन बने जाते हैं । उत्कीर्ण किये जाते हैं कहीं चित्रित किए जाते हैं ।

(घ) खेल खिलौने :- मिट्टी, पत्थर, लकड़ी आदि के सुन्दर

1- राजाराम शास्त्री - हरियाणा का लोक साहित्य पृ०

सुन्दर खिलौने बनाये जाते हैं । ये खिलौने विभिन्न अवसरों पर बनाये जाते हैं । त्योहारों, मेलों आदि पर इनकी छटा देखते ही बनती है । कपड़े, मिट्टी की गुड़ियाँ भी सुन्दर सुन्दरबनती हैं । खिलौनों की दृष्टि से लोक कला बहुत समृद्ध है । राजस्थान की कठपुतलियाँ विशेष कलात्मक होती हैं । इसके अतिरिक्त चेकोस्लोवेकिया, बेलजियम तथा जर्मनी की लोक कला विशेष रूप से विकसित है[1]।

ङ हथियार :- हथियार भी अलंकृत किये जाते हैं । इसमें पशु - मुखाकृतियों को विशेषकर बनाया जाता है तथा फूलपत्तों के ज्यामितीय आलेखन भी प्रचलित हैं । भाला, तलवार, फरसा आदि को इन अलंकारों से सजाया जाता है ।

छ वाद्य यन्त्र- वाद्य यन्त्रों में भी जानवरों जैसे मोर, बत्तख, देवी देवताओं की आकृतियाँ तथा पशुओं की आकृतियाँ बनाई जाती हैं ।

छ चित्रकारी :- लोक चित्रकारी के अनेक रूप हैं । कहीं दीवार या फर्श पर मिट्टी या गोबर से आकृतियाँ बनाई जाती हैं । कहीं हल्दी, चावल, गेरु, खड़िया आदि से आकृतियाँ दीवार या फर्श पर बनाई जाती हैं । भूमि पर गुलाल, रंगीन बुरादा, फूलों आदि से ज्यामितीय आकारों में शुभ अवसरों पर अलंकरण करने की भी प्रथा है ।

ज हाथ व पैरों पर मेंहदी से सुन्दर अलंकरण बनाये जाते हैं । मुख पर सुन्दर सुन्दर बिन्दियें लगाई जाती हैं । तरह तरह के डिजाइनों को शरीर पर लीला गुदवाई जाती है । भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुएँ जैसे - कौड़ी, मोती, गोटा किनारी, बल्ब आदि लगाकर बन्दनवारे बनाई जाती हैं । विभिन्न प्रकार के छापे विभिन्न अवसरों पर लगाये जाते हैं ।[2]

1- डा0पुष्पा गुप्ता- राजस्थान की लोककला(अप्र शोध प्रबन्ध) पृ-106

2- स्वयम् सर्वेक्षण के आधार दिनांक 19-9-84

2- प्रयोगों के अनुसार :-

1- धार्मिक :- किसी त्योहार, उत्सव व संस्कार आदि पर बनाई जाने वाली चित्रकारी । जैसे अहोई - दीवाली, करवा चौथ - देव उठनी ग्यारस, चकरी आदि पर स्वच्छता तथा पूर्ण श्रद्धा से दीवार फर्शों पर देवी - देवताओं की आकृतियाँ बनना तथा विभिन्न प्रकार के चौक लगाना
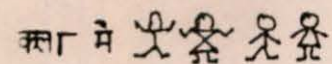
2- उपयोगितावादि :- दरवाजों, पलंग - पालना तथा बर्तनों आदि पर कलात्मक चित्रण किया जाता है ।

3- व्यक्तिवादि :- अपने शरीर के सुन्दर दिखाने के लिए किये गये आलेखन जैसे - बिन्दी, मेंहदी, गोदना, अलता आदि के सुन्दर डिजाइन बनाकर लगाना ।

4- मनोविनोदार्थक :- मनोविनोद के लिये गृह सज्जा, जैसे अल्पना बनाना तरह तरह की कपड़े, मोती आदि की बन्दनवारें बनाकर लगाना । अपने शरीर की सज्जा आदि करना । मेंहदी - बिन्दी, गोदना आदि करवा कर । शादी विवाह व त्योहारों पर यह सज्जायें विशेष रूप से की जाती हैं ।

यही कारण है कि लोक कला धीरे धीरे विकसित होती जा रही है ।

लोक कला को हृदय का धन कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । कलाकार इसमें सरल माध्यम से, सरल विधि से हृदय के भावों तथा देवी - देवताओं के प्रति श्रद्धा व्यक्त करता है । आकृतियाँ चाहे सुन्दर न हों, पर भाव गहन होते हैं । मोटी सीधी लकीरों में गहन दर्शन व रहस्य व्याप्त होता है । जैसे स्वास्तिक की साधारण से प्रतीक में गणपति अर्थात्

सकल ब्रह्माण्ड व्याप्त है[1]। आटे की साधारण रेखाओं से बना स्वास्तिक चौक चारों दिशाओं के देवताओं को आह्वान करने का प्रतीक है[2]। बीच बीच में जो रेखायें एक दूसरे को काटती हैं, सृजन का प्रतीक है। लोक चित्र कला में [illegible] आकृतियों का महत्वपूर्ण स्थान है[3]। ये सृजनशक्ति की प्रतीक हैं।

लोक चित्रकला प्राचीन संस्कृति को मिलाने की कड़ी है। यदि हम यह कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। लोक कला से सामाजिक भावनाओं का विकास एवम् पोषण होता है। परम्परागत रूप में जो विश्वास चले आ रहे हैं, उनकी रक्षा होती है। इस प्रकार लोक कलायें हमारी जातिगत रक्षा का साधन भी हैं। ये जीवन को सुन्दर व अलंकरण पूर्ण बनाती हैं तथा मनुष्य के भाव जगत एवम् प्रकृति के शाश्वत सम्बन्ध को निरन्तर नवीन प्रेरणा देती है। अतः लोक कलायें मानव के विकास और सभ्यता का वास्तविक इतिहास बनती हैं। लोक कलाओं ने वर्तमान कलाओं को भी प्रभावित किया है। अनेक कलाकार, लोक शैलियों से प्रेरणा लेकर अपनी अपनी कला शैली का विकास कर रहे हैं[4]। भारत में इसके सबसे बड़े प्रयोक्ता यामिनी राय हैं[5]। तथा अन्य कलाकार हैं - पेडीराजू, रघुरमैया, बद्री - नाथ, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि। सतीश गुजराल पर मैक्सिकन कला का

1- महादेव जोशी - हमारी संस्कृति के प्रतीक

2- ,, वही ,,

3- स्वामि प्यारी आनन्द - अवध की लोक चित्रकला पृ 68

4- सी०एल०रमन - फोक ट्रेडीसन एंड माडर्न आर्ट, दि इलस्ट्रेटेड वीकली - 16-10-60, पृ 24 - 26

5- गिरीराजकिशोर अग्रवाल- लोकजीवन के तपस्वी कलाकार- दैनिक हिन्दु० 8-6-62 पृ 12

प्रभाव पड़ा । अमृता शेरगिल पर हंगरी का प्रभाव था । लोक कला का महत्व देखते हुए भारत सरकार उसे अनेक प्रकार से संरक्षण दे रही है । लोक कलाकार प्रकृति की अनुकृति नहीं करता वरन् नवीन रूपों की उद्भावना के द्वारा सौन्दर्य के विविध पक्षों का उद्घाटन करता है ।[1] अतः संस्कृति में लोककला का महत्वपूर्ण स्थान है । परन्तु ध्यान रखना पड़ेगा कि आधुनिकता का रंग इस विधा को विज्ञान का अनुचर बनाकर इसके लोकत्व को नष्ट न कर दे । अन्यथा इसके मूलरूप को ढूंढना कठिन हो जायेगा ।[2]

1- एन के हलदार - आवर हैरीटेज इन आर्ट पृ० 58

2- राजाराम शास्त्री - हरियाणा का लोक साहित्य पृ० 14
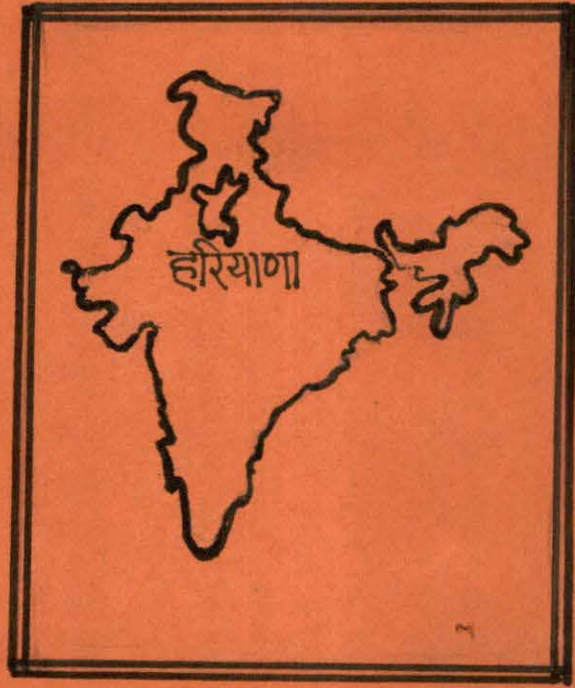
अध्याय द्वितीय

हरियाणा प्रदेश की लोककला का परिवेश तथा भौगोलिक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों में उसका विकास व सम्बन्ध

अध्याय - द्वितीय

हरियाणा प्रदेश की लोककला का परिवेश तथा भौगोलिक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों में उसका विकास व सम्बन्ध ।

हरियाणा का एक पृथक राज्य के रूप में उदय कुछ ही वर्ष पूर्व पहली नवम्बर, 1966 में हुआ । यह भारत का सत्रहवां राज्य है । इसमें 12 जिले हैं । इसके पूर्व में उत्तरप्रदेश, पश्चिम में पंजाब तथा दक्षिण में राजस्थान प्रदेश की सीमायें इसे छूती हैं । यहाँ प्रायः समतल भूमि व जलोढ मिट्टी मिलती है । प्रमुखतया उत्तर में शिवालिक पर्वत श्रेणी से आगरा, भरतपुर तक और गंगा के पश्चिमी तट से हो कर

घग्घर तक यह क्षेत्र फैला है । घग्घर और पश्चिमी यमुना क्षेत्र नदियों के कारण बँट गये हैं । मिथ्ताथल (भिवानी के पास) राखी गढ़ी (जींद के पास) तथा बाणावली (हिसार के पास) ऐसे स्थान हैं जो सिन्धु घाटी की भाँति अपना महत्व रखते हैं ।[1] दूसरी सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व यह भूमि धर्म भूमि कहलाई । इन्हीं के वंशज 'भरत' व कुरु हस्तिनापुर - इन्द्रप्रस्थ तथा असन्दीवत (असन्द) के विकास के कारण बने ।[2] राजनैतिक परिस्थितियों के बदलाव के साथ साथ हरियाणा की प्रशासनिक सीमाओं में भारी परिवर्तन आया परन्तु राज्य की भौगोलिक तथा प्राकृतिक सीमायें यथापूर्व ही बनी रहीं ।

हरियाणवी प्रदेश को सारे भू - भाग को हम आठ उपभागों में बांट सकते हैं -

1- बांगर
2- खादर
3- नर्दक
4- बागड़
5- अहीरवाटी
6- मेवात
7- पार
8- दिल्ली प्रदेश[3] चित्र नं- 1 फलक 1 (हरियाणा मानचित्र)

1- इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया पृ- 138
2- लोक सम्पर्क विभाग द्वारा प्रकाशित 'हरियाणा' पृ- 4
3- देवी शंकर प्रभाकर - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ 12

हरियाणा
हिमाचल प्रदेश
पंजाब
अम्बाला
(नर्दक)
कुरुक्षेत्र
(नर्दक)
सिरसा
करनाल
(नर्दक)
जींद
बांगर
हिसार
(बांगड़)
उत्तर प्रदेश
सोनीपत
रोहतक
(बांगर)
भिवानी
(बांगर)
दिल्ली
महेन्द्रगढ़ (अहीरवटी)
गुड़गाँव
(अहीरवटी)
फरीदाबाद
मेवात
राजस्थान

1- बांगर :-

यहाँ की धरती समतल, सुन्दर व उपजाऊ है । यहाँ की गाय-भैंसें ' हरियाणा नस्ल ' के नाम से सारे देश में प्रसिद्ध हैं । तथा यह प्रदेश सैनिक सेवाओं के लिये भी सारे भारत में प्रख्यात है । इसमें रोहतक, हिसार, हांसी, भिवानी - जींद नखाना कैथल आदि क्षेत्र आते हैं ।

2- नर्दक :- करनाल कुरुक्षेत्र तथा अम्बाला क्षेत्रों के भू - भाग को नर्दक कहा जाता है । इतिहास के बड़े बड़े युद्ध इसी क्षेत्र में लड़े गये । यहाँ के लोग वीर व उत्तम कोतिहर हैं ।

3- खादर :- यमुना के साथ वाले क्षेत्र खादर कहलाते हैं । यहाँ सघन खेती है तथा यहाँ के लोग परिश्रमी हैं ।

4- बागड़ :- हिसार के दक्षिणी क्षेत्र और पूरे महेन्द्रगढ़ जिले को बांगड़ कहते हैं । धरती रेतीली और छोटी छोटी पहाड़ियाँ हैं । एक रोचक किम्बदन्ती के अनुसार जब पवनपुत्र हनुमान लक्ष्मण के लिये संजीवनी समेत पूरा द्रोणगिरी लेकर उड़ते हुये इस प्रदेश से गुजरे तो कुछ शिलाएँ जहाँ तहाँ गिर पड़ीं । ये छोटी पहाड़ियाँ अरावली पर्वत श्रेणी का अंग हैं । यहाँ खनिज सम्पदा का अतुल भण्डार है । यहाँ की विसनोई जाति अपने अपूर्व सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध है ।

5- अहीरवटी :- इसमें गुड़गांव - महेन्द्रगढ़, रोहतक का कुछ भाग आता है । यहाँ की अहीर जाति के शौर्य का अपना इतिहास है । यहाँ की यदवंशी

1- देवीशंकर प्रभाकर - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ 13

जाति में सचमुच भगवान कृष्ण सा बल - शौर्य देखने को मिलता है ।

6- मेवात :- गुड़गाँव जिले की फीरोजपुर, फिरखा तहसील है । मेव जाति के कारण मेवात नाम पड़ा ।

7- पार :- यमुना के पूर्वी क्षेत्र को ' पार ' कहते हैं । भूमि उपजाऊ तथा लोग वीर हैं । इस क्षेत्र के पशु भी प्रसिद्ध हैं ।

8- दिल्ली प्रदेश :- दिल्ली का पश्चिमी इलाका बांगर और यमुना के साथ का इलाका खादर है ।

इतिहासकार श्री एन सी० दास और आर० के मुकर्जी का मत है कि आर्यों का मूल निवास हरियाणा नामक प्रदेश था जो सरस्वती के किनारे सबसे पहले आबाद हुये । प्रो० ए बी० बाशम का मत है जो लोग ईसा से 2000 वर्ष पूर्व आये उसमें एक ऐसा कबीला था जिसके पुरोहित काव्य कला में निपुण थे । उनकी रचनाओं का बाद में ' दि वन्डर दैट वाज इण्डिया ' में संकलन किया गया ।

एक पृथक राज्य के रुप में अस्तित्व में आने से पूर्व भी यह भू - भाग हरियाणा नाम से विख्यात रहा है । इस प्रदेश के नाम का सम्बन्ध कोई ' हरि ' अर्थात भगवान विष्णु तथा योगेश्वर कृष्ण से जोड़ते हैं तो कोई हर अथवा शंकर से । एक अन्य मत के अनुसार अभीरों का देश होने के कारण यह ' अभिरायण ' राज्य था जो कालान्तर में बिगड़ कर

1- श्री एन सी० दास तथा आर० के मुखर्जी ' हरियाणा ' द्वारा डी० सी० वर्मा से उद्धृत

2- प्रो० ए०बी० बाशम द्वारा हरियाणा का सांस्कृतिक अध्ययन (देवी शंकर प्रभाकर)

हरियाणा बन गया।[1] कुछ विद्वानों का यह मत है कि हरियाणा नाम हरि + अरण्य (हरि का वन) का अपभ्रंश रूप है।[2] एक मत के अनुसार हरियाली प्राप्त होने के कारण इसका नाम हरियाणा पड़ा है।[3] मध्य-युगीन लेखों में इसके अन्य नाम हरितानक व हरियानक सम्भवतः इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं। हरियाणा नाम की प्राचीनता दिल्ली के पास ' सारवान ' गाँव से मिले शिलालेख से भी स्पष्ट होती है। शिलालेख के तीसरे श्लोक में कहा गया है -

" देशोऽस्ति हरियाणाख्य पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः "[4]

अर्थात हरियाणा प्रदेश इस भू तल पर साक्षात स्वर्ग है।

सदियों पूर्व महाराजा कुरु ने कुरुक्षेत्र की पावन भूमि में सोने का हल चलाकर किसानों को कृषि की प्रेरणा दी थी। इसी परम्परा का अनुसरण करते हुये आज भी हरियाणा इस दिशा में देश का मार्ग दर्शन कर रहा है।

एक लेखक ने इस नाम का सम्बन्ध ऋग्वेद से ही दिखा दिया है। उनके कथनानुसार ' वसुराज ' जो इस प्रदेश का शासक था, हरियाणा शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में किया था और इसी कारण इसका यह नाम पड़ा।[5]

1- द वंडर दैट वाज इंडिया - पृ 30

2- डा० बुद्ध प्रकाश - हरियाणा का इतिहास एक सर्वेक्षण पृ 19

3- लोक सम्पर्क विभाग - हरियाणा - नवम्बर 1, 1982 पृ 3

4- ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रकाशित - इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया

5- मुहम्मद बिन तुगलक के समय का - शिलालेख - विक्रमी सं0 1384-85

स्वनामधन्य पं० राहुल सांकृत्यायन ने इस नाम को ' हरिधांक्य' का अप -भ्रंश बताया है ।[1] श्री एच एच गुप्ता के अनुसार प्रागैतिहासिक काल में हरियाणा ही आर्यों की आबादी का प्रमुख केन्द्र रहा होगा । अतः इसी कारण इसका नाम हरियाणा पड़ा होगा ।[2]

अरावली पर्वत श्रृंखलाओं के अतिरिक्त नदियाँ, नहरें भी यहाँ पर धरती को अधिक उपजाऊ बनाने में सहायक है । यमुना यहाँ के सबसे महत्व -पूर्ण नदी है । इसकी पश्चिमी नहरों से यहाँ सिंचाई की जाती है ।
सरस्वती :- प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों में सरस्वती को गंगा के बाद सबसे अधिक पवित्र नदी माना है । एक पौराणिक कथा के अनुसार इसके पानी से ' राजा वेण ' का कोढ़ दूर हो गया था । यह नदी झील व पोखरों वाली नदी भी कहलाती है । प्रत्येक पोखर के किनारे मन्दिरों की भरमार है । पेहवा में इसकी अधिक महानता है । केवल यहीं पर यह साक्षात रूप में बहती है । पौराणिक कथा के अनुसार क्षीरही के स्थान पर थके हारे पाण्डवों के लिए इसका जल क्षीर (दूध) में बदल गया था । तथा हस्तिपुर में उनकी अस्थियाँ एकत्र की गई थीं ।[3] यही कारण है कि यहाँ पर आज भी पिण्डदान तथा प्रेतयोनि में फंसी आत्माओं को मुक्ति दिलाने के उपायें किये जाते हैं । (चित्र 2 फलक 2) ऋग्वेद में इसे माताओं, नदियों व देवियों में श्रेष्ठ कहा गया है ।[4] चित्र - 3

1- जी० सी० अवस्थी - वेद भारावल पृ15
2- श्री एच एच गुप्ता - 'हरियाणा' द्वारा डी सी वर्मा से उद्धृत
3- अंबाला डिस्ट्रिक्ट गजटियर से उद्धृत पृ 7,8
4- ए सी दास - ऋग्वेद इंडिया पृ 6

(पेहवा)

पवित्र सरस्वती नदी का तट व प्रेतात्माओं का निवास स्थान प्राचीन पीपल का पेड़

चित्र संख्या 2

घग्घर :- यह अम्बाला में बहती हुई पटियाला जिले में जाती है। सरस्वती मारकण्डा आदि पहाड़ी नालों से मिलती है।
मारकंडा :- गंगा और सिन्धु के जल विभाजक का एक नाला है जो अंबाला और करनाल जिलों से होकर बहता है।

दो मेवाती पहाड़ियों के नाले साहिबी और इंदोरी यहाँ पर महत्वपूर्ण हैं। **हरियाणा की जलवायु** सर्दी में अत्यधिक शीत और गर्मी में अत्यधिक उष्ण रहती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से इस राज्य का अस्तित्व ऋग्वेद काल से रहा है। 1966 में हरियाणा स्वायत्त राज्य बना। राजनैतिक व प्रशासनिक इकाई के रूप में इसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता न होने के कारण इस क्षेत्र और यहाँ के निवासियों का कोई विस्तृत विवरण आज तक प्रस्तुत नहीं किया जा सका है। फिर भी पृथक राज्य बनते ही इस ऐतिहासिक भूमि में जहाँ वैदिक सभ्यता फली फूली थी, पुनः अपना गौरव प्राप्त कर लिया। ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रदेश भिन्न भिन्न राजनीतियों का मुख्य स्थान बना रहा क्योंकि इस भूमि पर सदियों तक युद्ध लड़े गये। जिन्होंने भारत के भाग्य का निर्माण किया।[1]

आर्य सभ्यता और संस्कृति के सरस्वती नदी के किनारे विकसित होने की चर्चा वैदिक साहित्य में की गई है। यदि हम यह स्वीकार करें कि हरियाणा सप्त सिन्धु घाटी का ही एक अंग था जो सिन्धु से लेकर सतलुज और सरस्वती तक फैला था तो यह भी स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र

1- डी सी वर्मा - हरियाणा पृ - 11

भी उनकी बस्तियों में से एक था।[1] जिसका वर्णन उनकी प्रार्थना में भी होता है।[2]

ओउम सरस्वत्यभि नो नेषि वस्योमापस्करी
पयसा मा न आधक।
जुषास्व नः सख्या वेश्या च
मा त्वत्क्षेत्रा ण्यरणानि गन्म

इस राज्य का कुल क्षेत्र फल 44,212 वर्ग किलोमीटर है और यहाँ की जनसंख्या सन 84 की जनगणना के अनुसार लगभग 1 करोड़ 29 लाख है।[3] अपनी स्थापना से ही इस राज्य ने अतीत की परम्पराओं के अनुरूप विकास के हर क्षेत्र में जन जन की आशाओं को मूर्त रूप दिया है और नित नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं।

हाल में ही हुई पुरातात्विक खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि इस राज्य की शिवालक गिरिमाला में ही कपि - मानव का अधिवास था। इस प्रकार यहाँ की पुण्य धरा कपि मानव से लेकर आज के प्रबुद्ध मानव तक के विकास की पूरी कथा का बखान करती है।[4]

हरियाणा की चप्पा चप्पा भूमि अपने में प्राचीन पुराकथायें,

1- डी सी वर्मा - हरियाणा पृ० 14
2- ऋग्वेद - वाल्यम 61, 14
3- निदेशक - लोक सम्पर्क 'हरियाणा' पृ० 4
4- वही - पृ० 5

आख्यान, पुरातात्विक अवशेष और वैदिक इतिहास संजोये हैं । इस धरती पर ज्योतिसर (कुरुक्षेत्र) के तट पर योगेश्वर श्री कृष्ण ने मोहग्रस्त अर्जुन को गीता का दिव्य संदेश दिया ।[1] ये तथ्य इस प्रदेश के सुनहले अतीत को दर्शाते हैं । प्राचीन गाथाओं के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा ने ' पृथूदक ' वर्तमान पेहोवा में सृष्टि की रचना और चारों वर्णों की व्यवस्था की और एक पुराख्यान के अनुसार यहाँ के ब्रह्मयोनि तीर्थ में ही ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । यहाँ की सरस्वती और दृषद्वती नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में ही वेदों की ऋचायें अवतरित हुईं । ऋग्वेद में यहाँ की भूमि के उर्वरा होने का उल्लेख है क्योंकि यमुना और सरस्वती यहाँ की भूमि को सिंचित करती थीं । यहाँ के ज्योतिसार में ही भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के रूप में कर्मयोग का दिव्य सन्देश दिया था । इसी संदेश ने पाण्डव अर्जुन को अपने ही चचेरे भाई कौरवों के विरुद्ध न्याय के लिये संघर्षरत किया था । श्रीमद्भागवतगीता भारतीय चिन्तन और दर्शन का सार है और इसमें मानव को अनासक्त भाव से और फल की इच्छा न रखते हुये कर्तव्यपालन के लिये उत्प्रेरित किया गया है । (चित्र नं० 4 फलक - 4)

हरियाणा की पावन भूमि में स्थान स्थान पर मन्दिर, सर, सरिता और सरोवर मौजूद हैं ।[2] यहाँ की परम्पराएँ बड़ी गौरवशाली हैं जो अतीत के गौरव का स्मरण करवाती हैं । यहाँ संत महात्माओं और

---55--

1- वही - 14 नवम्बर 1984 पृ० 5

2- स्वयं सर्वेक्षण के आधार पर - 12-4-84

(ज्योतिसर)

'अक्षय वट वृक्ष'
(भगवत गीता का साक्षी)
चित्र संख्या ५

सर्वेश्वर मन्दिर
"जहाँ महाभारत के युद्ध से पूर्व श्री कृष्ण
ने महादेव का पूजन किया था"
चित्र संख्या 5

कर सन 1857 में हरियाणा वासियों द्वारा आजादी की पहली लड़ाई में दिया महान बलिदान, स्वाधीनता संग्राम और हाल ही के वर्षों में सन 1947, 1962, 1971 के चार आक्रमणों में प्रदर्शित बेमिसाल बहादुरी, अदम्य साहस और अभूतपूर्व मर्दानगी - ये सब कर्म भूमि हरियाणा की वीर परम्पराओं के अनुरूप है। साहसी और निर्भीक हरियाणा वासी सदा आक्रान्ता और राष्ट्र विरोधी शक्तियों के विरुद्ध एक अभेद्य चट्टान की भाँति खड़े रहे हैं।

हरियाणा विभिन्न जातियों, संस्कृतियों और विश्वासों की मिलन भूमि और क्रीड़ास्थली रहा है। इनके सम्मिलन और समन्वय से वह स्वरूप निखरा और बना है जो वास्तव में भारतीय है। अनेक हिन्दू सन्तों और सिख गुरुओं ने भी हरियाणा की इस पवित्रधरा की यात्राएँ की तथा विश्व बन्धुत्व व विश्वप्रेम का शाश्वत संदेश दिया।

यहाँ जिला फरीदाबाद का सिही गाँव महाकवि सूरदास की जन्म-भूमि के नाते कृष्ण भक्ति का एक प्रमुख केन्द्र रहा है। जिनका यहाँ के जन जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है। यहाँ के लोगों का दुधारू पशुओं के प्रति लगाव और उनके आहार में प्रचुर मात्रा में दूध का प्रयोग इस प्रभाव का परिचायक है।

हरियाणा का अतीत बहुत ही महिमा मण्डित और जनजीवन गतिशील रहा है। आज भी इस राज्य की उपलब्धियाँ जीवन्त और गौरव-शाली हैं। इन्हीं के फलस्वरूप यह राज्य देश भर में ' कर्म भूमि - हरियाणा ', ' प्रगति का प्रदेश हरियाणा', 'प्रगति का प्रतीक हरियाणा' कीर्तिमानों की भूमि - हरियाणा या ' सर्वागणी हरियाणा' आदि

विषयों से प्रसिद्ध है।[1]

हरियाणा के लोग संगीत में शुरु से ही रुचि रखते हैं। रोहतक के ढोलकियों की ख्याति जो वीणा की धुन पर मौखिक राग बजाकर लोक संगीत की रचना किया करते थे गुप्त राजाओं की प्रसिद्ध नगरी उज्जैन तक फैली हुई थी।[2]

हर्ष वर्धन काल के राजकवि बाणभट्ट ने उस समय का वर्णन बड़ा अतिशयोक्ति पूर्ण किया है। यहाँ के स्वर्णकारों द्वारा निर्मित आभूषणों की उन्होंने जी भरकर प्रशंसा की है। स्थाण्वीश्वर और उसके आस पास रंगाई छपाई की कला चरमोत्कर्ष पर थी जिसका वर्णन हर्ष - चरित में विस्तार से है।

हर्ष के शासन के बाद यहाँ अशान्ति और अव्यवस्था आ गई। यहाँ के निवासियों को हमलावरों से टक्कर लेनी पड़ी ऐसे समय में यहाँ की किसान औरतों ने खेतों का काम, शिल्पकारों के घरों में औरतों ने छेनी, हथौड़ा सम्भाल लिया। अतः उद्योग धन्धों में कोई रुकावट नहीं आई।

मुगलकाल में यहाँ के हाथी दांत के खिलौने, कांसे व पत्थर की बनी मूर्तियाँ प्रसिद्ध हुई। इस काल में भी उद्योग धन्धों का खूब विकास हुआ।[3]

1- निदेशक - लोक सम्पर्क विभाग, 'हरियाणा' पृ० 9

2- डी सी वर्मा - ' हरियाणा ' पृ० 15

3- देवी शंकर प्रभाकर - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ - 21

पानीपत में शीशे की दस्तकारी, रिवाड़ी तथा जगाधरी में कांसे, पत्थर, पीतल के बरतन और नारनौल पत्थर और बहलियों के निर्माण के लिये खूब प्रसिद्ध हुआ है।

उस समय भवन निर्माण शैली का भी विकास हुआ। सुन्दर भवनों, हवेलियों की दीवार और दरवाजों पर काठ और पत्थर पर की गई कलात्मक खुदाई तो देखते ही बनती है। गाँव की पुरानी चौपालों और कुओं को देखकर शिल्पियों की कलात्मकता का आभास मिलता है। परन्तु विदेशी शासन में यहाँ की शिल्प कलाओं को काफी क्षति पहुँची।[1]

यहाँ के लोगों में कुछ निजि विशेषताओं के कारण अपना अलग व्यक्तित्व बन गया है।

हरियाणा का स्वरूप अधिकतर ग्रामीण है - गाँवों का गठन और आकार स्थान स्थान पर भिन्न है जो स्थिति विशेष पर आधारित है। हरक्षेत्र खादर, बांगड़ या नरदक की अपनी अपनी विशेषता है तथा अपना अलग ही स्वरूप है। जाट, ब्राह्मण, राजपूत, गूजरों की अपनी अपनी विशिष्टतायें हैं जो उनके गाँवों में परिलक्षित होती हैं। फिर भी एक सामान्यता का भाव है जो विशेषता हरियाणवी कही जा सकती है।[2] ग्राम वासियों का जीवनाधार उनके प्राचीन रीति - रिवाज और परम्पराएँ हैं। अतीत से सम्बन्धित होने के कारण ग्राम वासियों ने अपने संस्कार मेले - ठेले, त्योहार विधि निषेध और अन्ध विश्वासों का मौलिक ढांचा

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर।

2- डी सी वर्मा - हरियाणा - पृ - 69

बनाये रखा है ।[1]

लोक तन्त्र, धर्म निरपेक्षता या समस्तवाद का कोई अधिक प्रभाव गाँवों पर दिखाई नहीं देता । सहिष्णुता, उदारता, सादगी और सहजता यहाँ की विशेषता है ।[2]

आध्यात्मिक भावना से ओत - प्रोत होने के कारण सभी प्रकार के संस्कार, उत्सव, त्योहारों तथा धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करने के लिए लोककला का अपूर्व स्थान है । इनको मनाने में गीतों व नृत्य का प्रमुख स्थान है । यद्यपि ज्यादा श्रद्धा तथा विश्वास लोक चित्रकला को ही दिया जाता है । इसके अन्तर्गत गीले रंगों से लिखने, काढ़ने, चौतने, गोदने सूखे रंगों से भरने और चिपकाने आदि की कलायें आती हैं । इस प्रकार की लोक चित्र कला का क्रमबद्ध इतिहास मिलना तो कठिन है क्योंकि यह अस्थाई है । अतः लोक चित्रकला की खोज तत्कालीन समाज की धर्म - परायणता तथा सामाजिक स्थिति के आधार पर ही हो सकती है । फिर भी प्राचीन कला के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि उस समय के प्रतीक किसी न किसी रूप में आज की लोक कला के आकारों से मिलते जुलते हैं । सिन्धु घाटी के अवशेषों में नाग, पीपल, पशुपति आदि की उकेरी हुई प्रतिमायें आज भी किसी न किसी रूप, आकार में पूजी जाती हैं ।

सर्पों की पूजा का विवरण हमें सिन्धु घाटी की सभ्यता में भी मिलता है ।[3] इसके अतिरिक्त यक्षी, मनसा देवी शरीर से भारी - सामने

1- वही - पृ- 70

2- वही - पृ -70

3- परिपूर्णानन्द वर्मा - प्रतीक शास्त्र - पृ० 217

छद्दी पीछे सपाट है लोक कला का नमूना है। यह आज भी मथुरा के गाँवों में पूजित है।[1]

अनार्यों की पूजा में सांप की पूजा का विवरण प्राप्त होता है। एक मुहर पर देवता की मूर्ति के दोनों ओर दो नाग अंजलि - मुद्रा में स्तुति करते हुये हैं।[2]

हमारे यहाँ आज भी नाग पंचमी तथा गूगा नवमी के दिन सर्पों के चित्र बना कर पूजा का विधान है। सांपों की पूजा का मुख्य कारण यही होगा कि सांप एक जहरीला तथा भयंकर जीव है। किसी का भी अनिष्ट कर सकता है। असभ्य मस्तिष्क में जब भी यह बात आई होगी, तब ही से पूजा का विधान चला होगा। अतः मानव ने कोयले या कलम से सर्प बना कर उसकी दूध, चावल से पूजा आरम्भ कर दी। वेदों के समय से भी पूर्व सर्प पूजा का विवरण मिलता है। यह मोहन जोदाड़ो, हड़प्पा से प्राप्त मुद्राओं के ऊपर बनी मूर्तियों से स्पष्ट होता है कि वह लोग भी इन्हें देवता समान पूजते थे।[3] कई जातियों में कुल देवता सर्प ही होते हैं। जिसकी पूजा शादी - विवाह तथा पुत्र होने आदि पर की जाती है। नया मकान बनाने पर नींव में सोने या चांदी का नाग बनवा कर दबाने का भी प्रचलन है। भाव यह है कि यदि जमीन खोदने में कोई सर्प की मृत्यु हो गई हो तो सोने या चांदी का सर्प दान।[4] जिससे साँप मारने का पाप

1- कल्याण खरे - प्रतिमा विज्ञान पृ- 210

2- डा0 इन्दुमति मिश्र - प्रतिमा विज्ञान, पृ- 347

3- वही -

4- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर

न लगे ।

कई स्थानों पर वृक्षों की भी विभिन्न प्रकार से पूजा होती है । जैसे तुलसी, पीपल, बड़, केला आदि ये भी प्राचीन काल से चली आ रही प्रथा है । यद्यपि लोकचित्र कला में इसका परोक्ष रूप में स्थान है परन्तु यह प्रथायें और रीति - रिवाजों का प्रचलन लोक चित्रकला के अस्तित्व के किसी न किसी रूप में होने का समर्थन देता है । तुलसी की पूजा की पुष्टि की गई है ।[1] आकृतियाँ साधारण होते हुये भी देवता का रूप दिया गया है ।

सिन्धु घाटी की सभ्यता में हमें स्त्री - पुरुषों के सौन्दर्य - प्रसाधनों के विषय में बहुत कम जानकारी है । हाँ वस्त्रों, केश विन्यास से तुलना की जा सकती है ।[2] सिन्धु घाटी के अवशेषों में नारियाँ अपने बालों को पीछे की ओर बनाती थीं । अब भी कुछ स्त्रियाँ बाल पीछे की ओर बनाकर माँग में सिन्दूर भरती हैं । इस प्रकार दैनिक जीवन की बहुत सी बातें पुरानी बातों से मिलती जुलती हैं । लोक कला सम्बन्धी विवरणों का अभाव है परन्तु अनेक रूप आकार उस सभ्यता में प्राप्त उपकरणों में थी उनका वर्तमान में भी प्रयोग मिलता है । इस प्रकार कुछ संकेत यहाँ की व सिन्धु घाटी से मिलते हैं । समय के साथ सभ्यता बदली और लोक चित्रकला के स्वरूप में भी परिवर्तन आया ।

यहाँ पर अनुष्ठानों का प्रचलन वैदिक काल से चला आ रहा है । अनुष्ठान धर्म का मुख्य अंग है तथा इन अनुष्ठानों में अलंकरण का मुख्य स्थान

1- पी टामस - ऐपिक्स मिथ्स एण्ड लीजेण्ड्स पृ 35

2- हेनरी समर - इंडियन्स वैले सिविलजेशन पृ 23

सम्पन्न है तथा इससे उत्सव को महत्व मिलता है । लोक चित्रकला में प्रायः इन उपादानों का प्रयोग होता है । तरह तरह की मिट्टी की मूर्तियाँ, बरतन, खिलौने प्राचीन समय जैसे मिलते हैं । उन पर बने आलेखन प्राचीनता की पुष्टि करते हैं । करवा - चौथ, अहोई पर जो बर्तन (करवे) आज भी प्रयोग में लाये जाते हैं । यहाँ पर ऋतुओं के अनुसार त्योहार मनाये जाते हैं । जो सूर्यवंशी राजाओं के समय से चले आ रहे हैं । उस समय में भी रीति - रिवाजों, रहन - सहन, पूजा, अर्चना - बन्दना में यथाक्रम लोक प्रथाओं का प्रचलन था । देवी - देवताओं की पूजा अर्चना, चौक पूरना, अनुष्ठान, करना यथाक्रम चलता रहता था । दैनिक दिनचर्या के उत्सवों में लोक चित्र - कला का प्रयोग होता था । उस समय में रथ, हाथी, घोड़ों पर भी अलंकरण बनाने की प्रथा थी । लोक चित्र कला समाज में काफी प्रचलित थी । अनुष्ठान अलंकरण की प्रचुरता थी । प्रत्येक त्योहारों तथा उत्सवों पर चौक पूरना, भित्ति सजाना आदि आम तौर पर प्रचलित था । इसमें सिन्दूर - हिंगुल, महावर, हल्दी और खड़िया का प्रयोग होता था । विशेषता यही थी कि चित्रकला का प्र चार राजा तथा प्रजा में समान रूप से होता था ।[1]

वैदिक साहित्य में तथा महाभारत काल में भी चित्रकला का वर्णन मिलता है । चौक पूरना तथा हवन की वेदी सजाना आज तक प्रचलित है । सत्यनारायण की पूजा कथा में भी भगवान की वेदी सजाई जाती है । अतः इस प्रकार का अलंकरण परम्परागत है । मैकडानल महोदय कहते हैं, सामाजिक व्यवस्था तथा रीति रिवाजों का पालन प्राचीन परम्पराओं का ही अनुकरण है । लोक चित्रकला की कृतियाँ का स्थायी रूप नहीं हो सकता

1- कृष्ण दत्त बाजपेई - ब्रज का इतिहास - प्रथम खण्ड, पृ 16

क्योंकि इसका निर्माण थोड़े समय के लिये होता है।[1] इन कृतियों का जीवन कम से कम कुछ घण्टे तथा ज्यादा से ज्यादा एक वर्ष का ही होता है। स्थाई नहीं है। जैसे शादी- विवाह पर, दरवाजों पर अलंकरण, फूल - पत्तों से बन्दरवारे सजाना, झन्डियें लगाना आदि अभी भी उत्सवों पर इस प्रकार की सजावटें की जाती हैं। इतनी क्षणिक होती हैं कि उत्सव के बाद आलोप हो जाती हैं परन्तु इसका रूप पुराना ही चला आ रहा है।

हरियाणवी लोक जीवन और लोक- संस्कृति का सही परिचय हमें किसी ठेठ हरियाणवी गाँव को देखने से ही प्राप्त हो सकता है। गाँव का एक धुंधला सा चित्र उभरता है। मार्ग किसी ऊँचे स्थान पर कच्चे -पक्के मकानों की उभरती पंक्तियाँ तथा ऊँची हवेलियों पर लगे धातु निर्मित मोर दिखाई देने लगते हैं। अन्दर मिट्टी व गोबर से लिपा - पुता आंगन - साफ - सुथरे लिपे कमरे जिसमें सुन्दर मिट्टी की ' कोठी ' भी दीख पड़ती है जिसे लोककला का सुन्दर नमूना कहा जा सकता है। चिकनी मिट्टी की बनी इस बड़ी सी कोठी का उपयोग गृहणी ताले में रखने वाली चीजों के लिये करती है। एक बाहर खिड़की लगी होती है। उसके ऊपर मिट्टी के ही उभरे हुये मोर अथवा स्वास्तिक चिन्ह जरूर बना होता है जिसे मोर - पंखों पर शीशे के छोटे छोटे टुकड़ों से सजाया जाता है जो लोक कला का सुन्दर नमूना है। (चित्र नं० 6,iii)फलक नं० 6)

कहीं कहीं मिट्टी का बना बड़ा गोल कुठला अनाज रखने का भी बना होता है। बाहरी दलान में कोने में चक्की होती है। थोड़ा हट कर

1- डा० सी एल झा - ब्रज में लोक चित्रकला निबन्ध लोक साहित्य शोध ग्रन्थ, पृ 44

फलक 6

कोठी - कुठला (शाहगढ़)

चित्र संख्या 6

' हारा ' दूध गर्म करने का चूल्हा होता है ।(चित्र नं० ९, फलक - 7) इस प्रकार भरा - पूरा घर एक आदर्श घर होता है ।

घर में बरतन, टोकड़ी, कूंडा, पतीली, देगची, भरतुआ, बेल्ली, डोई, बेलवो, चाखाड़ा आदि सब होते हैं ।

हरियाणवी क्षेत्र में महिलाओं को भांति भांति के गहने पहनने का बड़ा चाव रहा है । वर पक्ष से चढ़ाये गये जेवर उनकी समृद्धि को बताते हैं । अतः गहने पूरे सामर्थ्य से बनवाये जाते हैं । ये स्त्रियों के साज - श्रृंगार होते हैं । इसमें गहने चांदी के ज्यादा तथा सोने के कम रहते हैं । आभूषणों में पात्ती, कड़े, चूड़ी, बिछुये, बाकड़े, आरसी, हथफूल, कंगन, हंसली, कण्ठी झालरा हार माला, सिंगार पट्टी बोरला, लोंग, कर्णफूल, कठला आदि होते हैं ।[2] (चित्र नं० 8, फलक 8)

त्योहारों पर मेंहदी, महावर लगाने का भी प्रचलन है । मेंहदी सादी तथा तरह तरह के डिजाइनों की भी लगाई जाती है । सुन्दर मेंहदी रचाने की तो होड सी लगी रहती है । साथ ही मेंहदी सुहाग की भी निशानी मानी जाती है । महावर तरह तरह की लगाने का प्रचलन है ।पैरों को रंग से सजाया जाता है । पैरों में पजेबे तथा बिछुये भी पहने जाते हैं । दर्द का अनुभव करते हुए भी गाँव की महिलायें हाथ, पैरों, तथा मुँह पर गोदने गुदवाती हैं । अपना नाम पति का नाम, फूल पत्ते, ॐ, स्वास्तिक

1- देवी शंकर प्रभाकर-हरियाणा : एक सांस्कृतिक अध्याय पृ 45-46

2- ऋग्वेदिक आर्य - पं० राहुल सांकृत्यायन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन पृ 155
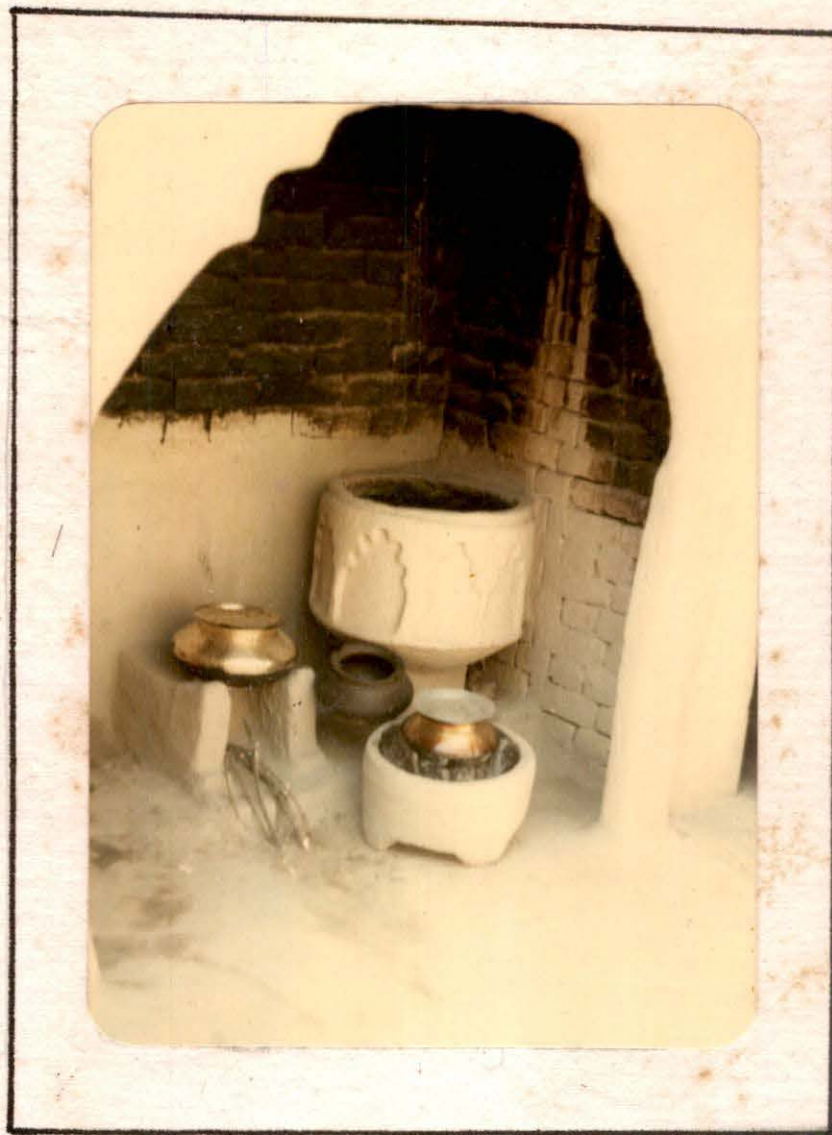
हारा, चूल्हें व मिट्टी के बरतन
चित्र संख्या 7

और डिजाइन जैसे घडी, पहुँची आदि गुदवाये जाते हैं । गोदना या इसे खिपना भी कहा जाता है । यह प्रथा भारत के बंगा व गौंण जाति से मिलती जुलती है । विशेष जाति के लोग इसे करते हैं जिन्हें लिलिहारी कहते हैं । पहले सौन्दर्य प्रसाधन उपलब्ध नहीं थी । अतः सजने संवरने का यही उपाय था । गोदने का मुख्य आधार पवित्रता धार्मिकता एवम अधिपत्य से सम्बन्धित रहा है ।[1] गुदना स्मृतियाँ, घटनाओं व व्यक्तियों की याददाश्त अमर रखने के लिये भी कराया जाता है । गुदना गोदते समय सामूहिक रूप से ' गुदना - गीत ' गाने की प्रथा रही है - ये लोक-गीत हास परिहास के साथ साथ लोक जीवन का भी दर्शन कराते हैं । एक हरियाणवी गीत में गुदना कांक्षी युवती लिलिहारी से कहती है -

' अच्छो लोला गोद मेरी से रे लिलिहारी
नाक पे बुलाक, गोद रथा के सी पैयया
गाल के झुका दे, दोनों भंग के पंवय्या
अच्छो लोला गोद मेरी -------- ।'[2]

हरियाणा के जनमानस में भोलापन, उल्लास एवं कोमलता का दर्शन होता है । ग्रामवासियों का जीवनाधार उनके प्राचीन रीति रिवाजों और परम्पराएँ हैं । सादा भोजन तथा सादी वेश भूषा ही यहाँ की विशेषता है । हरियाणा प्रान्त के आहार के विषय में लोकोक्ति है कि देस्सां में देस हरियाणा, जिन दूध - दही, घी, खाणा' इस लोकोक्ति

1- डा० जयसिंह प्रदीप - फैशन की मांग बन रही है, आलेखान या गोदना - साप्ताहिक हिन्दुस्तान ' - 25 नवम्बर 1984

2- वही

से सात्विक भोजन की महत्ता तथा हरियाणा प्रदेश में दूध, घी का बाहुल्य प्रकट होता है। राबड़ी भी यहाँ का लोक प्रिय पेय पदार्थ है जैसे इस लोकोक्ति से प्रकट है -

खीर खाण ते बाहम्भण राज्जी
बाणिया राज्जी मूली ते।
जाट राबड़ी ते राज्जी।
कायथ राज्जी पूरी तैं।[1]

यहाँ पर लोग अधिकतर मोटे, सादे वस्त्र पहनते हैं जो वैदिक परम्परा के अनुरूप है। लोगों का विश्वास है कि मोटटा खाणा और मोटटा पहरणा अच्छा हो से' फैशन परस्ती को अभिशाप समझते हैं तथा कहते हैं '' दिल्ली के दिलवाल्ली मुंह चीकणा पेट खाल्ली ''[2] अर्थात फैशन करने वाला भोजन में कटौती करता है। पुरूष धोती, कुरता, पगड़ी तथा चद्दर को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। स्त्रियों की वेश भूषा में घाघरी, चुन्नी, कुरता शामिल है जो अब कम होता जा रहा है तथा सलवार कुर्ता चुन्नी आ रहा है। विवाहिताओं में घूँघट का रिवाज भी है।[3] ग्राम बालायें सिर पर घड़ा, लहरदार भड़कीला दामण, फूलसितारों का ओढ़ना, कांच की रंग बिरंगी नलियों से बना 'ईंढवा' गले में मोटी कण्ठी, घाघरे पर लटकता चांदी का भारी नाड़ा, फूलदार जूती, पाँव में कड़ी कुछ बातों में व्यस्त कुछ गीत गाती मस्त चलती हैं जो दर्शकों के

1- जयनारायण वर्मा-हरियाणवी लोकोक्तियाँ शास्त्रीय विश्लेषण, 25
2- वही - पृ- 27
3- वही - पृ- 27

मानस पटल पर अमिट छाप छोड़ती हैं ।[1] सब अपने कामों में मस्त व व्यस्त रहते हैं । औरतों का बड़े करीने से उपले थापना तथा बिठोड़े में सजाना, किसानों का खेतों में काम करना, बच्चों का पशुओं को चराना, साधारण रहना, राम में विश्वास यहाँ की सात्विकता तथा आस्तिकतावाद को दिखाता है ।

धर्म का विकास श्रद्धा से होता है और प्रगाढ़ श्रद्धा अन्ध - विश्वासों को भी जन्म दे सकती है ।[3] श्रद्धा और विश्वास दोनों ही हरियाणवी संस्कृति के धार्मिक आधार हैं ।[4] सब त्योहार तथा देवी - देवताओं को श्रद्धा से पूजा जाता है । यहाँ पर अन्ध विश्वास भी काफी मात्रा में पाये जाते हैं । जैसे कहा जाता है - सोम सनीच्चर, पूरब बास्सा, बुध बोवणी, सुक्कर लावणी ' छींकत न्हाइए छींकत खाइये, छींकत पर घर ना जाइये ' आदि ।

अन्ध विश्वासों में जन्त्र - मन्त्र जादू टोने टोटके का भी स्थान है । नजर लगने पर, देवी का प्रकोप माता होने पर, शादी विवाह व बच्चा होने पर, दूध पीने व गिराने पर तरह तरह के टोने टोटके किये जाते हैं । उद्देश्य देवता को प्रसन्न कर व्याधि को दूर करना होता है । यहाँ की संस्कृति में ये अन्ध विश्वास भी एक घटक है क्योंकि श्रद्धा आस्था

1- स्वयम् सर्वेक्षण के आधार पर 16-3-84
2- वही 10-5-84
3- जयनारायण वर्मा - हरियाणवी लोकगीतों शास्त्रीय विश्ले पृ22
4- वही पृ - 23

एवं विश्वास में आस्तिक संस्कृति का प्रतिबिम्ब झलकता है ।[1]

तीज - त्योहार, मेले ठेले एवं संस्कृति के प्रतीक होते हैं । त्योहारों के माध्यम से ही कोई संस्कृति अपने मूल तत्वों को सुरक्षित रखती है ।[2] नीरस जीवन को सरस बनाने में यहाँ के मेलों का विशिष्ट स्थान है । प्रसिद्ध मेले हैं - गोपाल मोचन मेला - मेला देवी, गूँगा नवमी, दशहरा, दीवाली, शिवरात्रि, गंगा स्नान तथा होली आदि पर लगने वाले मेले जीवन में एक उल्लास की किरण पैदा करते हैं । लोग सजधज कर मेलों में खुशियाँ लूटने जाते हैं जो यहाँ की जिन्दगी का एक अंग समान है ।

1- वही पृ० - 25
2- वही पृ० - 35
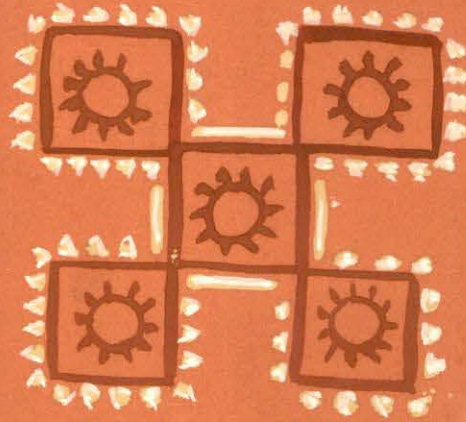
अध्याय तृतीय

हरियाणा प्रदेश की लोक चित्रकला की प्रक्रिया; सर्वेक्षण एवं विवेचनात्मक विश्लेषण

अध्याय तृतीय

हरियाणा प्रदेश की लोक चित्रकला की प्रक्रिया, सर्वेक्षण एवं विवेचनात्मक विश्लेषण :

हरियाणा के लोक जीवन में लोक चित्रकला एक ऐसा वेग है जो कभी रुकता नहीं वरन इसमें नित नये उत्साह व तेज की झलक मिलती है । जब जीवन में थोड़ी सी भी निराशा आती है कोई न कोई त्योहार उत्सव ऐसे आते रहते हैं जो यहाँ के जीवन में उन्माद भर देते हैं । इस प्रकार यहाँ के

लोक जीवन की मिट्टी में ही लोककला पनपती बढ़ती व फलती है । लोक-जीवन में सुख दुख के नाना धार्मिक सामाजिक कार्यक्रमों में जो चित्रकारी, जो साज सज्जा, कपडे, पट्टों, दीवारों फर्श आदि पर रंगों, गेरु, कलस, चूना आदि से की जाती है । लोक जीवन के प्रत्येक पहलू में व्याप्त चली आ रही है । माँ से बेटी तथा बेटी अगले घर में पुरानी प्रथाएँ ज्यों की त्यों ले जाती हैं । यद्यपि आज के फैशन की दौड में इसका दम घुट सा गया है फिर भी यहाँ का जनमानस लोक चित्रकला की परम्परा को प्रतिष्ठा तथा समुचित आदर देकर कायम रखे हुये है । न कि नवीनता के नाम पर उसकी आत्मा का नाश कर रहा है ।[1]

यहाँ के लोक चित्रकार परम्परा से चले आ रहे तत्वों को नष्ट होने से बचाये हुये हैं । अतः विभिन्न शैलियों, वादों और प्रतिवादों में न पड कर सीधे सच्चे रूप में अकृतिमता, स्वाभाविकता, सहजता तथा सरलता जो इसकी पुरानी परम्परा है, वैसे के वैसे ही संजोये हुये है ।

लोक चित्रकला पर ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा संस्कारों आदि का प्रभाव तो पड़ता ही है । अतः हरियाणा में दूसरे प्रदेशों की अपेक्षा लोक चित्रकला का रूप थोड़ा थोड़ा भिन्न है पर यदि ध्यान से देखें तो उनकी अन्तरआत्मा या मूल में अन्तर नहीं के बराबर है । जैसे उत्सवों, पोशाकों, आभूषणों तथा श्रृंगार प्रसाधनों में कुछ अन्तर है । इसी प्रकार कभी कभी माध्यम में भी अन्तर आ जाता है । इसका कारण बाह्य प्रभाव भी है । इसके उपरान्त भी यहाँ सर्वेक्षण के बीच पता लगा कि लोक चित्र कला

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर - 21/5/84

बिना अवलम्बन, आश्रय प्रोत्साहन और प्रलोभन के स्वतन्त्र, स्वच्छन्द और सौम्य गति से आगे बढ़ती जा रही है ।

हरियाणा में सांस्कृतिक परम्परा के आधार पर लोक कला जीवित है । ईसा की कुछ शताब्दियों पूर्व जैसे कि आज भी घरों में स्वच्छन्द भाव से नाना रंगों से युक्त दीवारों पर सूक्ष्म रेखाओं द्वारा अंकन करने की प्रथा है । धूलि चित्र भी मौर्य काल से वैसे ही चले आ रहे हैं । आज भी वैसा का वैसा ही मनाने की प्रथा चली आ रही है । हरियाणा - वासी प्राचीन काल से ही धर्म में अटूट श्रद्धा रखते आये हैं । प्रत्येक त्यौहार पर लोक चित्र अंकित करने की प्रथा है । यह चित्र अत्यन्त कलात्मक ढंग से बनाये जाते हैं । इसे बनाने में अनेक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है । जैसे - गोबर, मिट्टी, खड़िया, चूना, चावल का आटा, रोली, गुलाल, सूखी रंग, हल्दी, कलस आदि । घर में उपलब्ध साधारण उपकरणों से जैसे सींक में रुई लगाकर या उँगलियों से ही परम्परागत रीति से स्त्रियों के दीवार, पट्टे अथवा कपड़े आदि पर अंकित करके पूजा करने का विधान है । चित्र सरल और स्वाभाविक होते हैं । केवल आड़ी, तिरछी रेखाओं से गाँव की अपढ़ स्त्रियाँ भी स्वाभाविक व सरल आकृतियाँ बना लेती हैं कि कोई भी उन्हें पहचान सकता है । छोटी छोटी लड़कियाँ भी अपनी दादी, माँ, बहिन को देखते देखते सरलता से सीख लेती हैं । इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी ये आकृतियाँ वैसी की वैसी चलती जाती हैं । बनावट के स्थान पर यह आकृतियाँ धार्मिक भावना से ओत - प्रोत होती हैं । इसमें शुद्धता का विशेष ध्यान रखा जाता है । सुबह सुबह गृहणी नहा धोकर घर को लीपती -

---

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर - 25/2/84

पोतती है । फिर दीवार के भी धो, पोत कर आकृतियाँ अंकित करती हैं । इन आकृतियों में धार्मिक भावनाओं और आध्यात्मिक अनुभवों से गहरा सम्बन्ध होता है । इन कृतियों में परिवार की सुख समृद्धि की कामना निहित होती है । अतः प्रत्येक स्त्री इन चित्रों का अंकन बड़े शुद्ध मन व धार्मिक भावना से करती है । यही कारण है कि हमारा शिक्षित वर्ग भी इसे श्रद्धा और विश्वास से परम्परागत रीति से अपनाये चला आ रहा है । इसका उद्देश्य कला के लिये न होकर जीवन की समृद्धि के लिए होता है । इसकी अभिव्यक्ति स्वतः तथा परान्तः सुखाय होती है । इसका उद्देश्य जीवन को सुखमय बनाना और कष्ट-दुखों से जीवन को मुक्त करना है । जीवन को पवित्र करना तथा सन्तान की वृद्धि और रक्षा करना होता है । यहाँ का जीवन संस्कृति सूचक है तथा लोक चित्रकला उसकी अभिव्यक्ति है ।

मेलों के अवसरों पर खेल - खिलौने बनाने का प्रचलन है । खिलौने मिट्टी, लकड़ी या तारों आदि के बनाये जाते हैं । बाद में सूखने पर गोले व तेलों के रंगों से उन्हें सजाया जाता है । मेलों में सजे रखे यह सजीव खिलौने बच्चों का मन मोह लेते हैं । इन खिलौनों में हरियाणा की कला का रूप निखर कर आता है ।[1] चित्र नं० 9 फलक नं० 9

लोक चित्रकला का जहाँ भावना पक्ष महत्वपूर्ण है, वहीं उसका शैलीगत पक्ष भी अपना महत्व बनाये हुए है । एक के बिना दूसरा अपूर्ण है । अतः भाव पक्ष के साथ शैलीगत तत्वों का विवेचन भी आवश्यक है । लोक कला में भीति चित्र, छापा, पात्र चित्र, पट्टिका चित्र, धूलि चित्र,

---

1- स्वयम् सर्वेक्षण के आधार पर 26-1-84

खिलौनों पर चित्रकारी

चित्र संख्या १

शरीर चित्रण, भूमि चित्र, विभिन्न उपकरणों द्वारा बनाये जाते हैं। प्रत्येक स्त्री घर में त्योहारों पर चित्र बनाती है। अपनी बुद्धि और शक्ति अनुसार देवताओं, वृक्षों, पशु - पक्षियों, सूर्य, चन्द्रमा, स्वपस्तिक, शंख, कमल तथा दैनिक उपयोग की वस्तुओं का चित्रांकन करती हैं। हरियाणा में दैनिक जीवन में प्रयोग आने वाली वस्तुओं के लोक चित्रों का अंकन किया जाता है। हरियाणा की लोक चित्रकला के साधनों को सुविधानुसार चार भागों में बाटा है -

1- धूलि व अन्य रंग :-

गेरु, खड़िया व चूना, पेवड़ी तथा अन्य रंग।

2- अन्य रंग :-

गेहूँ का आटा, चावल का आटा, दालें, गेहूँ की भूसी, जौ आदि

3- अन्य साधन :-

गोबर, कोयला, काजल, नीला गोदने का नीला रंग, महावर, मेंहदी रोली, हल्दी, ऐपन, सिन्दूर, घी, चन्दन, आम के पत्ते, सितारे, पन्नी, कौडी, गुलाल, बुरादा, फूल, सींक और रूई।

बरतन :- करछुल, चम्मच, कटोरी

धूलि व अन्य रंग :-

गेरु :- लोक चित्रकला के साधनों में गेरु का प्रमुख स्थान है। ज्यादातर चित्र गेरु से ही बनाये जाते हैं। गेरु ढेले के रूप में होता है। उसे पीस कर पानी में घोलते हैं। इससे पतला रंग तैयार हो जाता है। यह लाल से मिलता जुलता होता है। अतः शुभ होता है। यह बहुत सस्ता आता है। इससे चित्र

तथा पृष्ठ भूमि भी तैयार की जाती है । या खड़िया लगाकर रूई से सींक लगाकर गेरु से चित्र बनाये जाते हैं । हरियाणा में गेरु से अहोई करवा - चौथ बनाई जाती है । जैसे चित्र 40,42, 44, 45, 74, 75

चूना व खड़िया :- हरियाणा में चित्र बनाने में चूना व खड़िया भी प्रयोग में लाया जाता है । इससे पृष्ठ भूमि तैयार की जाती है । अहोई, दीवाली , करवा चौथ, नाग पंचमी आदि सफेद पृष्ठ भूमि पर बनाये जाते हैं ।

पेवड़ी :- पेवड़ी (पीली मिट्टी) का प्रयोग भी पृष्ठ भूमि के लिये किया जाता है । या चित्र में रंग भरने के प्रयोग में लाया जाता है ।

अन्य रंग :-

हरियाणा में भूमि चित्रों में या पट्टे पर चौक लगाने के लिए प्रयोग किया जाता है । त्योहारों पर कलश स्थापना के लिए पहले आटे से चौक लगाते हैं । नवग्रह पूजन के लिए भी नौ घर आटे की लकीरों से बनाते हैं । रंग विरंगा अलंकृत करने के मेंहदी हल्दी, रोली आदि भरी जाती है ।

चावल :- व्रत या त्योहारों पर चावलों के पानी में भिगोने दिया जाता है। भीग जाने पर सिल पर पीस लेते हैं । इसमें हल्दी मिला देने से ऐपन बन जाता है । चावलों से अहोई करवा चौथ आदि पर चित्र बनाये जाते हैं । नवग्रह बनाने में भी ग्रहों में चावल भरे जाते हैं ।

दालें :- नव ग्रह में दालें भरकर नवग्रह दर्शाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त अल्पना में भी दालों के भरा जाता है । दीवाली व अन्य शादी विवाह के अवसरों पर इसका प्रयोग किया जाता है ।

गेहूँ , जौ :- कलश को गोबर से चीतने के बाद जौ चिपकाये जाते हैं या गोबर धन के भी जौ, गेहूँ से सजाया जाता है ।

अन्य साधन :-

गोबर :- गाय का गोबर से स्थान को शुद्ध करने के लिये मिट्टी मिला कर लीपा जाता है । चित्रों की पृष्ठ भूमि भी गोबर से लीप कर तैयार की जाती है । घर के फर्श को भी गोबर से लीप कर साफ - सुथरा किया जाता है । गोबरधन, दशहरे पर गोबर का प्रयोग होता है । छटी पर कमरे के द्वार पर गोबर से गोल गोल फूल बनाये जाते हैं । चरूआ चीता जाता है । फलक - चित्र 102, 103

कोयला या कालस :- कोयला घिस कर या तवे की कालिख से नाग पंचमी व गूँगा नवमी पर सर्प बनाये जाते हैं । चित्र नं० फलक नं० 72, 73

काजल :- काजल की बिन्दी लगा कर पूजा की जाती है । या नजर के लिए माथे पर टिमक्का लगाया जाता है ।

लीला गोदने का नीला रंग :-

यह रंग जड़ी - बूटियों से बनाते हैं । उपयोग सुई द्वारा किया जाता है । शरीर पर सुन्दर सुन्दर आलेखन बनवाये जाते हैं ।

महावर :- पैरों को त्योहारों, शादी - विवाहों पर सजाने को लाल रंग प्रयोग में लाया जाता है । यह गहरा गुलाबी होता है । तरल रूप में शीशी में सस्ता मिलता है । यह सौभाग्य का चिन्ह है । लड़कियाँ व सधवा स्त्रियाँ लगाती हैं ।

मेंहदी :- सौन्दर्य प्रसाधनों में मेंहदी मुख्य है । सौभाग्य की सूचक है । रंग भरने में प्रयोग की जाती है । तथा हाथों पैरों पर मेंहदी की सुन्दर सुन्दर माते सजाई जाती हैं । मेंहदी से थापे भी लगाये जाते हैं । जिसको लगाने का अभिप्राय होता है कि घर हरा - भरा, फलता - फूलता रहे । मेंहदी शीतलता देती है । विवाह पर दोनों पक्षों में मेंहदी लगाने की रसम की जाती है । पैरों व बालों में भी ठण्डक के लिये मेंहदी का उपयोग किया जाता

है ।

हल्दी :- शुभ कार्यों में हल्दी का प्रयोग किया जाता है । थापे लगाये जाते हैं । हल्दी से चौक भी लगाया जाता है । चावल में हल्दी पीस कर ऐपन बनाया जाता है जो पूजा में टीका लगाने के काम भी आता है ।हल्दी की गाँठ नव ग्रह में भी रक्खी जाती है । विवाह में लड़की की चुन्नी में हल्दी रक्खी जाती है ।

सिन्दूर :- बिन्दी लगाने व पूजा में प्रयोग में लाया जाता है । यह सौभाग्य का सूचक है । कहीं कहीं सिन्दूर से भीति पर पूजा के लिये चित्र भी बनाये जाते हैं । जैसे देवी का (फलक नं० - 18) चित्र तथा दीवाली के दूसरे दिन हनुमान जी का चित्र नं० 19 फलक नं०

चन्दन :- टिकिया के रूप में तथा पेड़ की लकड़ी के टुकड़े के रूप में बाजार से मिलता है । पत्थर पर घिस कर तिलक लगाने के काम आता है । सिर को ठण्डक पहुँचाता है ।

आम, केले के पत्ते :-

मांगलिक अवसरों पर बन्दनवार बनाये जाते हैं । शुभ माने जाते हैं । मंगल कलश में भी आम के पत्ते लगाने की प्रथा है । केले के पत्ते भी पवित्र माने जाते हैं । सत्य नारायण की पूजा में तस्वीर के साथ रक्खे जाते हैं ।

सितारे पन्नी :- साँझी व बन्दनवार बनाने में चिपकाये जाते हैं । इनको लगाने से सुन्दरता बढ़ती है । बन्दनवारे तथा विवाह में लड़के की 'मौड़' में लगाई जाती है । शुभ मानी जाती है तथा चीज की शोभा बढ़ाने को लगाई जाती है ।

गुलाल :- विभिन्न रंगों का आता है । अल्पना में लगाये जाते हैं । होली पर मुँह पर लगाया जाता है ।

फूल :- बन्दनवार में प्रयोग में लाये जाते हैं जो बन्दनवार को सुन्दर बनाते हैं । पूजा के काम आते हैं । भगवान को अर्पण किये जाते हैं ।
सींक रुई :- सींक में रुई लगाकर तूलिका बनाई जाती है । जिससे भित्तिचित्रों में रंग भरे जाते हैं ।
चम्मच, करछुल, कटोरी :- गोल चीज बनाने को कटोरी, रंग भरने को चम्मच और करछुल का प्रयोग किया जाता है ।

उक्त सभी साधन हरियाणा में चित्रकला अंकन में काम में आते हैं । इन्हीं साधनों से सौन्दर्यमय रूप बनते जाते हैं जिससे मनुष्य धर्म के अधिक निकट आ जाता है । हरियाणा में निम्नलिखित चित्रकला के स्वरूप हैं ।

1- भीति चित्र :-

लोक चित्रकला में भीति चित्रों का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है । यामिनीराय ने कहा था '' कोई कलाकार भीति को सूना नहीं देख सकता।''[1] लगता है लोक कला के चितेरे उक्त भावना को मूर्त रूप देते आये हैं ।'' गाँवों में प्रत्येक साधारण से साधारण मकानों की दीवारें अब भी आड़ी टेढ़ी रेखाओं से अंकित पायेंगे । चित्र नं० 10 - फलक 10, चित्र नं० 11 फलक नं० 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17

इन चित्रों का जन्म कब और कैसे हुआ यह जानना तो कठिन है । शायद खाली समय में घर बैठे होने पर आदि मानव कन्दराओं की भीति पर नुकीले पत्थरों की सहायता से कुछ टेढ़ी मेढ़ी आकृतियाँ खींच दी होंगी । अपने एकान्त के क्षणों में खिंची आकृतियाँ आज आदिम कला के नाम से

1- काशी उपाध्याय भ्रमर - त्रिपथगा- चित्रकला अंक, नवम्बर1962,पृ- 15

घर के द्वार पर चित्रकारी
चित्र संख्या 10
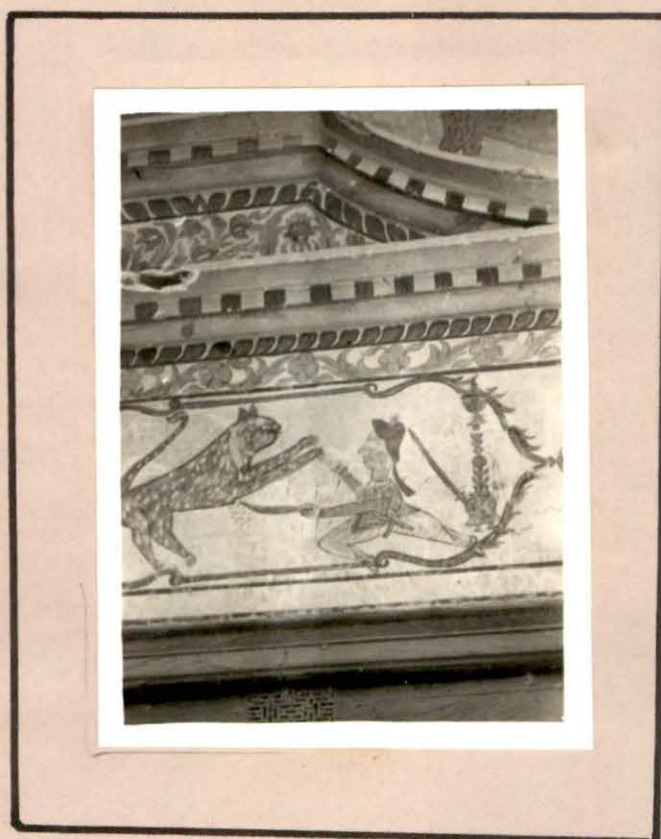
कमरे की दिवारों पर चित्रकारी

चित्र संख्या 12

दिवारों पर चित्रकारी

चित्र संख्या 13
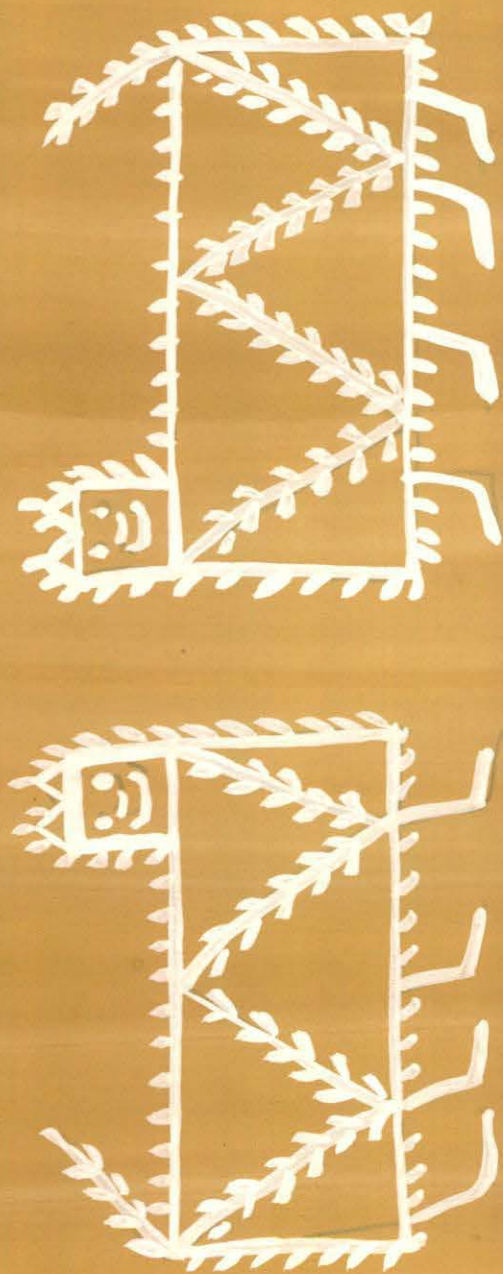
दिवाली पर घर के द्वार पर चित्रकारी (डाबड़ा)
चित्र संख्या 15

फलक 14

फलक 15

घर की दिवारों पर चित्रकारी

चित्र संख्या 15
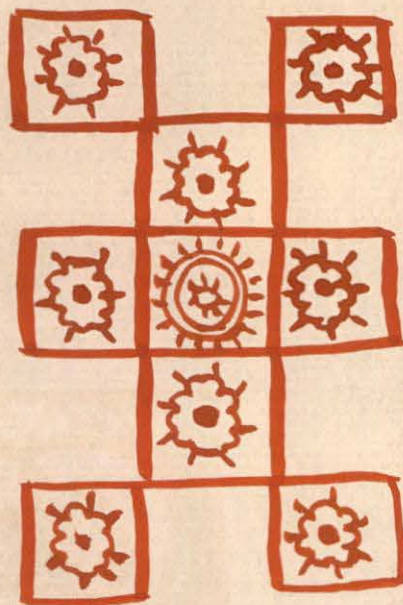
दिवारों पर चित्रकारी के विभिन्न रूप
चित्र संख्या 19

'फलिया'

कमरे के बाहर विवाह पर बारना चीतना (गंगवा, डाबड़ी)

चित्र संख्या 17

प्रसिद्ध है । एक भोजपुरी गीत में भीति चित्रण परम्परा का उदाहरण प्राप्त हुआ जिसमें सीता भीति पर रावण का चित्र बनाकर अपनी सखी को दिखाती है । इससे रामायण काल में भीति चित्रों के प्रचलन का पता चलता है ।[1]

हरियाणा में कुछ त्योहारों पर दीवार पर चित्र बना कर उसकी पूजा का विधान है । जैसे अहोई, करवा चौथ, गूँगा नवमी, नाग पंचमी, सांझी, दीवाली व विवाह आदि पर । देवी व हनुमान चित्र दिवाली पर 18,19.

1- अहोई :- कार्तिक कृष्णा सप्तमी को अहोई का व्रत रखा जाता है । यह व्रत बच्चों के कुशल मंगल के लिये होता है । दो कोरे मटके एक पानी दूसरा अनाज का रखा जाता है । मटके पास सास के लिये ' तील ' रखी जाती है । जो व्रत खोलने पर बहू सास को देती है । जिस घर में बच्चा हुआ होता है । कुण्डारे भरकर आस पास घरों में भेजती हैं । गेरु से माता और इसके 7 बच्चों को चूल्हे के पास दीवार पर चित्रित किया जाता है । अहोई की कहानी सुनकर व्रत खोलती हैं ।[2] अहोई धरती माता की पूजा का पर्व है ।[3]

3- करवा :- कार्तिक कृष्णा चतुर्थी को करवा चौथ का व्रत रखा जाता है । व्रत पति की दीर्घायु तथा स्वास्थ्य के लिये होता है । सारे दिन निर्जल व्रत रखकर महिलायें चाँद को अर्घ्य चढ़ाकर अपने अटल सुहाग की कामनायें करती हैं । सास को उपहार दिये जाते हैं ।

1- डा० स्वामि प्यारी आनन्द - अवध की लोक चित्रकला का अध्यय पृ152

2- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर 21-2-84 स्थान रामगढ

3- देवी शंकर प्रभाकर - हरियाणा पृ 137

फलकं 18

देवी चित्र

चित्र संख्या 18

'दिवाली' के अगले दिन घी सिंदूर से
हनुमान का चित्र.
चित्र संख्या 19
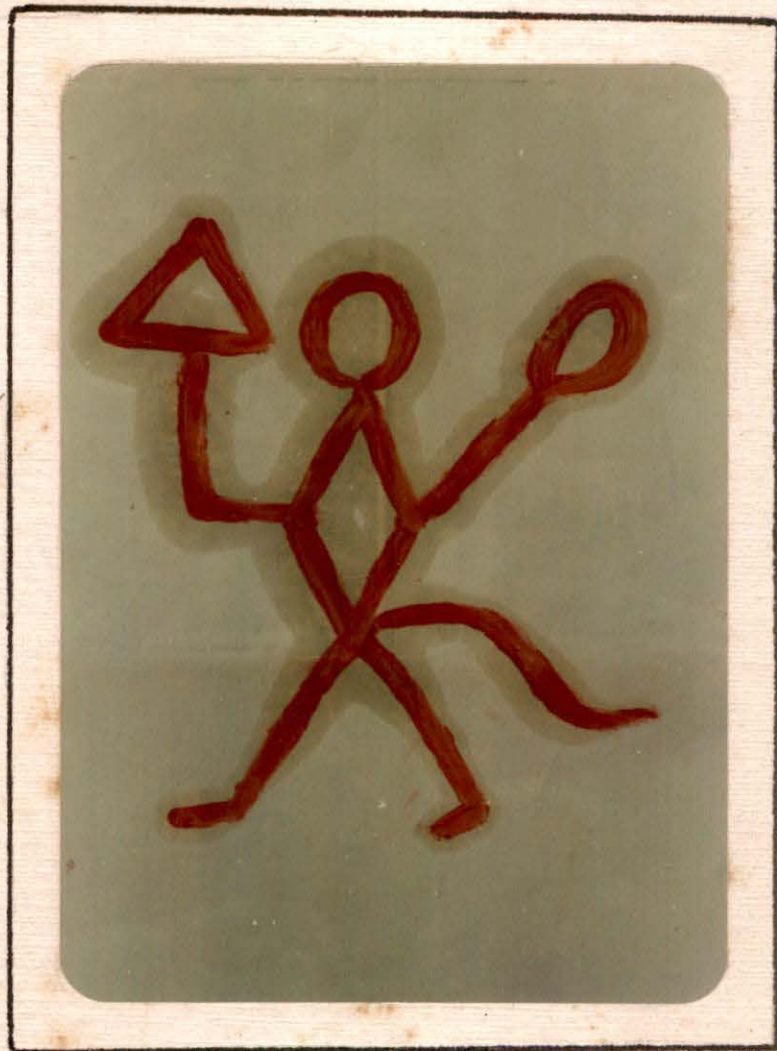
3- गूँगा नवमी :- जन्माष्टमी के अगले दिन गूँगा नवमी मनाया जाता है। नागों की पूजा की जाती है। दीवार पर 5 सांपों के चित्र बनाकर पूजा की जाती है। बजरा, मोठ, भीगे चने का बायना निकाला जाता है। इस दिन छड़ियाँ निकलती हैं। किसी जाल वृक्ष के नीचे छड़ी खड़ी कर दी जाती है और सभी लोग वहाँ पूजने जाते हैं। बताशों का भोग लगाते हैं। मेला, दंगल, कुश्ती होते हैं।

4- नागपंचमी :- श्रावण माह की पंचमी को नाग पंचमी मनाते हैं। इस दिन गोबर में लाल मिट्टी मिला कर घर लीपा जाता है। रस्सी में 7 गाँठें लगाकर सांप बना लिया जाता है फिर इसकी पूजा की जाती है। कच्चा दूध, शहद, चीनी, गुड़ घोलकर सांप की बांबी या बिल में डालते हैं। बिल की मिट्टी लेकर चक्की चूल्हे पर दरवाजे पर, घर के कोनों पर सांप बनाये जाते हैं। चावल पीस कर घोल से दरवाजे, दीवार, चक्की - चूल्हे पर सर्पाकृति अंकित करते हैं। यह बनाकर पूजा की जाती है। घी का दिया, बाजरा, घी, गुड़ का भोग लगता है। कहानी सुनकर बिलों की मिट्टी में गेहूं के दाने बो दिये जाते हैं।

साँझी :- आसोज लगते ही पूर्णमासी से लेकर अमावस्या तक मनाया जाता है। पहले से मिट्टी के अलग अलग भाग बनाकर गोबर से दीवार पर चिपका कर देवी का रूप बनाया जाता है। ऊपर से खूब सितारे किनारी, चूड़ियाँ आदि लगाकर उसे खूब सजाया जाता है। रोज सुबह शाम इसकी पूजा की जाती है। 15 वें दिन विशाल कोट बनाकर पूजन किया जाता है। दशहरे के दिन साँझी उतार कर उसका जोहड़ में विसर्जन कर दिया जाता है तथा उसके स्थान पर उसका भाई गोलू बना दिया जाता है। विसर्जन के बाद कन्यायें घर - घर जाकर साँझी माँगती हैं तथा खील - बताशे बाँटती व खाती हैं।

साँझी का पूजन शक्ति या दुर्गा पूजा का प्रतीक है। इस दिन बडे

बड़े मेले व देवी की कढाई भी होती है ।

दीवाली :- यहाँ इसे गिरड़ी का दिवस भी कहा जाता है । इस दिन यहाँ पशुओं को सजाया जाता है जिन्हें जतनी, पटियाँ और गांडली बांधी जाती हैं । पीठ पर गेरु का चिन्ह लगता है । सींग रंगे जाते हैं । दीपमाला होती है । दीवार पर दिवाली लिखी जाती है । नये बरतन लिये जाते हैं । लक्ष्मी पूजा होती है । मिठाई खाते हैं । इस दिन देवताओं की पूजा विशेष कर लक्ष्मी की पूजा सुख सम्पत्ति के लिये की जाती है ।

विवाह :- विवाह मण्डप को सुन्दर सजाया जाता है । चंदोवा, मंगल कलश, रंगीन झंडियों से मण्डप सजाते हैं । वेदी का स्थान गऊ गोबर से लिपा पुता होता है । पुरोहित ठीक बीच में गेहूँ के आटे से अल्पना (पूरत) पूरता है वहीं शुद्ध मिट्टी से हवन कुण्ड भी बनाया जाता है तथा फूलों से सजावट भी करते हैं ।[1] चित्र नं० 20 फलक 20

थापे :- पूजा स्थान पर जब हाथ का निशान लगाया जाता है । उसे थापा कहते हैं । भीति चित्रण, अल्पना, लीपना - पोतना आदि की भाँति थापा लगाना भी प्राचीन लोक प्रथा है जो आदि काल से चली आ रही है । हरियाणा में भिन्न उत्सवों, त्योहारों शादी पर भिन्न - भिन्न ~~xxxxx~~,प्रकार के थापे अंकित किये जाने का प्रचलन पुराने समय से चला आ रहा है । आज साज - सज्जा का साधन भी बन गया है ।

ग्राम जीवन में थापा का बहुत महत्व है । उसे लगाने से घर पवित्र माना जाता है । इसे थापा, छाप, थाप, छप्पा आदि भी कहा जाता है । वास्तव में थापा शब्द की उत्पत्ति ' स्थापन ' शब्द से हुई होगी

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर 13-3-84

चंदोवा
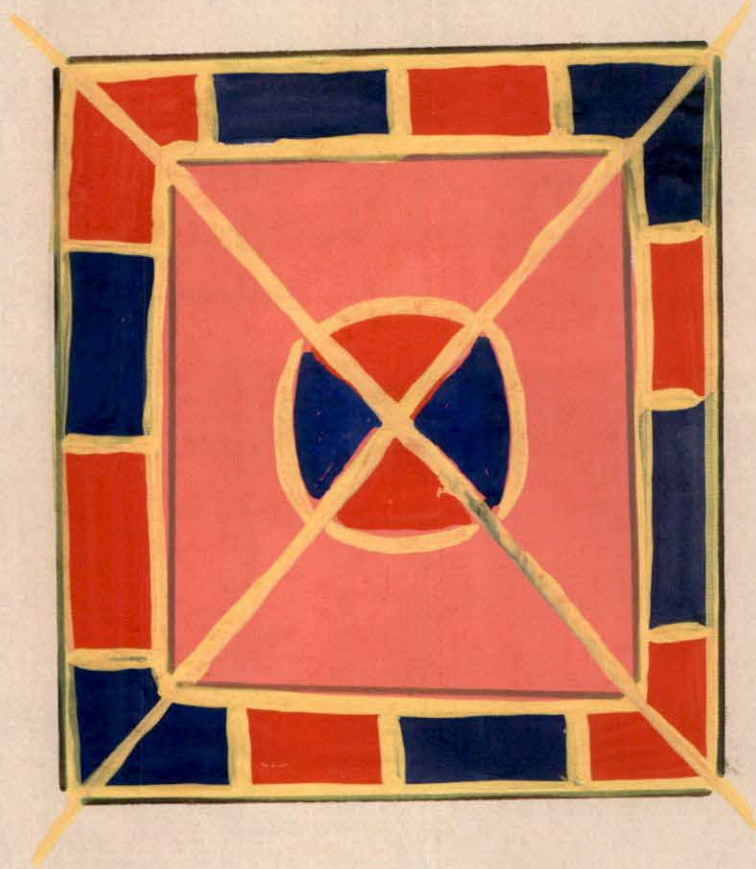
चित्र संख्या 20

जिसका साधारण रूप थापन है । इसका प्रयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है । थापा मेंहदी, रोली, ऐपन, गेरु, हल्दी आदि से लगाये जाते हैं । थापा लगाने का स्थान पहले धोकर शुद्ध किया जाता है । फिर हाथ से थापा लगाकर उसे भगवान के रूप में पूजा जाता है । यहाँ पर विवाह में स्त्रियाँ समधियों की छाती, पीठ पर मेंहदी, हल्दी के थापे लगाती हैं । मतलब अपनी छाप लगाने से है कि हमारे ही परिवार के सदस्य हो गये ।

थापे का प्रचलन देवी देवता के रूष्ट होने तथा अनिष्ट होने के भय से भी लगाया जाता है ।

थापा सांसारिक जीवन की पवित्र झाँकी प्रस्तुत करता है । इसका प्रचलन गृहस्थ जीवन में है - इसमें दाम्पत्य जीवन की सुख समृद्धि की परि - कल्पना निहित है । साधु - सन्यासी अपनी कुटिया में थापे नहीं लगाते थापे के साथ गोठना भी किया जाता है । अर्थात घर में विपत्ति आने के साथ बिजली के गिरने का रोकना भी है । वर्षा ऋतु में नाग पंचमी पर सब घर गोठ दिये जाते हैं । इस अवसर पर थापे का विशेष विधान है ।

थापा सधवा स्त्रियाँ ही लगाती हैं । स्नान कर पवित्र हो कर थापा लगाया जाता है । एक कहानी में थापे का वर्णन है - चोर भी - पूरे घरों में चोरी के लिए निशानी के तौर पर थापे लगा देते थे । एक स्त्री ने देख लिया और सब घरों में थापे लगा दिये जिससे चोर चोरी करने में असमर्थ रहे । सफेद, सुन्दर पशुओं पर भी थापे लगाये जाते हैं । नजर के लिये तथा पक्षियों के आक्रमण करने से बचाने के लिये भी थापे लगाये

1- देवीशंकर प्रभाकर - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ 123

जाते हैं ।[1]

श्री राहुल सांकृत्यायन के अनुसार निम्न थापों का प्रचलन है । नाम पंचमी, पूर्णमासी, होई, दीवाली, कार्तिक, एकादशी पर ।[2]

थापे का जन्म चाहे किसी भी कारण से हुआ हो, इससे कला में पर्याप्त उन्नति हुई । प्रत्येक स्त्री थापे लगा सकती है । अतः त्योहारों पर चित्र न भी बना सके तो यह सहज उपाय है । जिनसे भिन्न देवी देवताओं का जन्म होता है तथा देवी देवता का रूप मान कर पूजा जाता है । यदि हम कहें कि इसमें अपनी संस्कृति और धरती की महक लिप्त है तो अति - शयोक्ति न होगी । चित्र नं० 20 (क) 20 (ख) 20 (ग)
शरीर चित्रण :- शरीर चित्रकारी भी स्त्रियों की महत्वपूर्ण कला है । शादी, विवाह या त्योहारों पर स्त्रियाँ हाथों में कलात्मक मेंहदी रचाती हैं जिसमें सुन्दर से सुन्दर डिजाइन बनाने की प्रतियोगिता सी चलती है । पैरों पर आलता, माथे पर भिन्न भिन्न आकार प्रकारों में बिन्दी लगाने की भी प्रथा आम तौर से है । गुदने में कष्ट होने पर भी शरीर पर दिखाई जाने स्थानों पर गोदने के सुन्दर नमूने चित्रित कराये जाते हैं । यह पतिव्रता तथा पति परायणता का सूचक माना जाता है । मांग भरना तथा काजल लगाकर भी शरीर की शोभा बढ़ाई जाती है ।
भूमि चित्र :- त्योहारों तथा पर्वों पर आटे, रंग, बुरादे आदि से भूमि पर चित्रकारी की जाती है । इसी को भूमि अलंकरण कहते हैं । बिन्दु रेखाओं

1- वही पृ० - 148

2- रामनारायण उपाध्याय - लोक गीतों में भीति चित्रों का स्थान त्रिपथगा - चित्रकला, अंक नवम्बर 1962 पृ 152

आदि से फूल - पत्तों द्वारा स्वास्तिक व ॐ से भी अलंकरण बनाये जाते हैं। गेरु या गोबर से लिपी पुती भूमि पर रंगों द्वारा तथा फूल पत्तों द्वारा भी अलंकरण देखते ही बनते हैं।

पात्र चित्र :- पूजा अथवा विवाह के अवसर पर कलश की स्थापना विशेष रूप से होती है। कलश को स्त्रियाँ चित्रित करती हैं। इसमें गोबर, चावल, ऐपन, हल्दी, रोली, सिन्दूर आदि का प्रयोग करती हैं। साथ ही ऊपर से कौड़ी, सितारे, पन्नी चिपकाती हैं। गोबर व गीले आटे से भी चित्रकारी की हुई मिलती है।

पट्टिका चित्र :- लकड़ी के छोटे से पटरे पर अपने इष्ट देव की मूर्ति या चित्र बनाकर रख लिया जाता है और समय समय पर उसका पूजन किया जाता है भाई दोज पर, विवाह पर पट्टों पर सुन्दर चित्रकारी करने की प्रथा है। ये चित्रकारी चौक पूरने के समान ही होती है। इसमें हल्दी, ऐपन, आटे का प्रयोग किया जाता है।

सत्यनारायण की कथा में नवग्रहों को भी पट्टे पर ही बनाने का विधान है। तीजों के दिन मिट्टी की गौर माता बनाकर पट्टे पर चौक लगा कर बैठाया जाता है। नव रात्रों में देवी की स्थापना भी पट्टे पर की जाती है।

धूलि चित्र :- शादी, विवाह आदि के शुभ अवसर पर जब स्त्रियाँ यज्ञ की बेदी सजाती हैं तो उसमें हल्दी का चूर्ण आटा, अबीर तथा अन्य सूखे रंगों का प्रयोग करती हैं। चौक पूरने की तरह ही सूखे रंगों से भी एक प्रकार की चित्रकारी की जाती है।

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर - 12-5-84

वंशानुक्रमण तथा सहजता के गुण के कारण लोक कला आज भी चरितार्थ है । इसमें प्रयोग में आने वाली तूलिका, रंग, अथवा और प्रयोग में आने वाले सामान के लिये बाजार का मुख नहीं देखना पड़ता । इसके चित्रण के लिये केवल आंगन व भीति चाहिए । तूलिका के रूप में रूई, सूत, सखी टहनी या अनामिका अंगुलि चाहिए और चाहिए आटा (गेहूँ या चावल का) कोयला, हल्दी, फूल पत्तियाँ तथा गोबर या मिट्टी (ये वस्तुयें सहज हैं । इसके अतिरिक्त समाज में इसे पूरा मान सम्मान दिया । जिसमें महिलाओं का स्थान विशेष है । लोक चित्रकला कला के लिये ही न होकर जीवन के लिये भी रही है । इसकी अभिव्यक्ति स्वान्तः तथा परान्तः सुखाय होती है । इसका उद्देश्य जीवन को सुखमय बनाना और मुक्त करना होता है । जीवन को पवित्र बनाने में इसका विशेष स्थान है । इससे संतान की वृद्धि और रक्षा होती है । आकृतियों की रचना तो सरल होती है परन्तु उनका अर्थ बड़ा गूढ़ होता है । जैसे नव ग्रह, देवी देवता का प्रतीक, स्वास्तिक, ओउम आदि आकारों का अर्थ गूढ़ है ।

लोक चित्रकला के क्षेत्र में कला का प्रयोजन अथवा उद्देश्य कुछ न कुछ अवश्य होता है । अमंगल का विनाश करने, उससे बचने तथा अलंकरण मनो-विनोद आदि के निमित्त लोक चित्रकला का विधान है ।

अध्याय चतुर्थ

हरियाणा प्रदेश की लोक चित्रकला का विस्तृत सिंहावलोकन

यहाँ के लोक जीवन में समाहित है तथा यहाँ का लोक जीवन धर्म से अनु-प्राणित है । भारतीय जीवन में धर्म का बहुत महत्व है । लोक जीवन में भी धार्मिक अनुष्ठानों की एक लम्बी कड़ी प्राप्त होती है[1]।

प्रत्येक त्योहारों पर उससे सम्बन्धित मांगलिक चिन्हों व रूपों को बनाया जाता है । हरियाणा में लोक चित्रकला विभिन्न रूपों में पाई जाती है । लोक चित्र कला का विभिन्न त्योहारों, धार्मिक अनुष्ठानों और पर्वों आदि से गहरा सम्बन्ध है। लोक चित्रकला हरियाणा वासियों के दैनिक जीवन का एक मुख्य अंग है । सभी लोक चित्र कला के प्रकारों को समझने के लिए सामान्य विभाजन का आश्रय लेना आवश्यक है ।

लोक कला के उपकरण की दृष्टि से कला के निम्नलिखित विविध प्रकार मुख्य है :-

1- काढ़ने या लिखने की कला (पतले रंगों से)
2- चीतना (मिट्टी, गोबर आदि से)
3- खोदना
4- भरना (सूखे रंगों से)
5- गोदना
6- चिपकाने की कला
7- अन्य प्रकार

1- काढ़ने या लिखने की कला (पतले रंगों से) :-

साधारण बोल चाल की भाषा में (काढ़ना) का अर्थ किसी वस्त्र पर बेल बूटे बनाना जिसका माध्यम ऊन या धागा है परन्तु लोक

1- डा० सी० एल० झा - कला के दार्शनिक तत्व पृ०- 147

चित्रकला के प्रसंग में काढ़ना या लिखाने की चित्रकारी के अन्तर्गत धार्मिक चित्र जैसे भारतीय नारियाँ काढ़ती हैं, आते हैं। काढ़ने का तात्पर्य सुई व रंगीन धागों से कपड़ों पर फूल पत्ती, पशु पक्षी आदि काढ़ने से ही नहीं है अपितु लोक भाषा में काढ़ना शब्द लिखाने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। जैसा कि पतले रंगों से काढ़ा जाता है। इस कला के अन्तर्गत धार्मिक चित्र आते हैं जैसा हरियाणा की स्त्रियाँ पतले रंग से काढ़ती व अलंकृत करती हैं। ये भीति चित्र घर की दीवार के बाहरी तथा भीतरी दोनों भागों में बनाये जाते हैं।

सर्वप्रथम काढ़ने की क्रिया से पूर्व पृष्ठभूमि तैयार की जाती है। यह पृष्ठ भूमि घर की बाह्य या भीतरी भित्ति या फर्श पर तैयार की जाती है। हरियाणा के गाँवों में बहुधा घर कच्ची मिट्टी के बने होते हैं। कहीं कहीं सीमेन्ट की उपलब्धि के कारण पक्के बनने लगे हैं। जहाँ की भित्ति कच्ची होती है। वहाँ पूरा घर गोबर से लीप दिया जाता है। गोबर की लिपाई को चिकना व मजबूत बनाने के लिये गोबर में पीली मिट्टी व आटे की भूसी मिला दी जाती है। इसमें भूसी जितनी महीन होगी, उतना ही गोबर का उपकरण मजबूत व न चिटकने वाला होगा। पीली मिट्टी व भूसी मिले गोबर के गारे से घर की भीतरी व बाहरी दीवारों को लीप देते हैं। ये लिपाई इस प्रकार की जाती है कि सूखने पर वह बहुत सुन्दर व चिकना लगने लगता है। यदि भित्ति पक्की होती है तो केवल उस भाग को ही गोबर से लीप लिया जाता है, जहाँ पर चित्रकला से चित्र काढ़ना या अलंकृत करना हो।

इस प्रकार लिपाई करने के बाद जब भित्ति सूख जाती है, तब उस पर गेरु, चूना, खड़िया, ऐपन से पृष्ठ भूमि को रंगा जाता है। उसके बाद भित्ति पर आकृतियाँ बनाई जाती हैं। यह आकृतियाँ अधिकतर आयताकार,

वर्गाकार या गोलाकार क्षेत्र में ही बनाई जाती हैं । फिर उन आकृतियों में विभिन्न रंग भर दिये जाते हैं ।

विभिन्न चित्रों के आलेखनों में जो रंग भरे जाते हैं, उन्हें स्त्रियाँ स्वयम घर पर ही तैयार करती है । जिन्हें मिट्टी के या खानिज रंग कहते हैं । जिनके अन्तर्गत गेरु, खड़िया, रामरज, हिरमिच, चूना, पेवड़ी तथा काजल आदि आते हैं । जिनका विवरण तृतीय अध्याय में किया जा चुका है ।

लोक चित्र बनाने के लिये बहुमूल्य तूलिका का प्रयोग नहीं किया जाता तूलिका भी हरियाणे की स्त्रियाँ स्वयम ही बना लेती हैं । तूलिका के लिए बांस की एक पतली शाखा के छोटे भाग को काट कर उसके अगले भाग को पत्थर से कूट कर उसे ब्रश के रूप में बना लिया जाता है । इसी से यहाँ की स्त्रियाँ गेरु व खड़िया से घर की भित्ति पर भाँति भाँति के चित्र चित्रित करती हैं । कहीं - कहीं पर सींक के आगे रुई को लपेट कर काम में लाया जाता है । इसके अतिरक्त कभी कभी सींक को आगे से चीर कर दो भाग कर लिये जाते हैं । उसके बीच में छोटी सी सींक फँसा देते हैं जिससे उस सींक के दो भाग हो जाते हैं । इसे गेरु - रंग आदि में डुबो कर रेखा चित्रित करती हैं तो रेखायें दोहरी खिंचती जाती हैं । इस प्रकार से भी लोक चित्र बनाये जाते हैं । यदि यह भी नहीं होता तो हरियाणा की स्त्रियों की कुशल तर्जनी उँगली ही तूलिका का कार्य सम्पादन करती हैं ।

स्त्रियाँ व्रतों, त्योहारों और उत्सवों पर आंगनों, दीवारों, कपाटों और द्वारों पर भाँति भाँति की आकृतियाँ अंकित करती हैं । स्त्रियों द्वारा घरों के बाहर भीतर, देवी - देवताओं, व्रत - कथाओं, जातकों और पुराण कथाओं से सम्बद्ध चित्रों को अंकित किये जाने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है ।[1] आज भी प्रत्येक त्योहार पर उसके अधिष्ठाता देवता

1- वाचस्पति गैरोला- भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त परिचय-पृ 122

आज भी प्रत्येक त्योहार पर उसके अधिष्ठाता देवता और उस देवता के सहचर व अन्य देवताओं की छवियाँ अंकित की जाती हैं। इन देवताओं में बहुधा लक्ष्मी, गणेश - शंकर, पार्वती, सूरज - चाँद, तारे आदि होते हैं। लक्ष्मी गणेश को आरोग्य, समृद्धि, कल्याण और मंगल सूचक माना जाता है। कुछ चित्र प्राकृतिक रूपों और कुछ सामाजिक विषयों से भी सम्बद्ध होते हैं। धार्मिक विषयों की तो अधिकता होती ही है।[1]

पशु पक्षियों की छवियाँ अंकित करना मनुष्यों की आदि प्रवृत्ति रही है। लोक कला में पशु पक्षियों का चित्रण मांगलिक दृष्टि से भी किया गया है। हरिण, गाय, बैल, हाथी, शेर, चिड़िया, तोते, मोर आदि पशु - पक्षियों को आम तौर पर चित्रित किया जाता है। इन पशुपक्षियों को चित्रित किये जाने का प्रयोजन प्राय धार्मिक विश्वास माना जाता है। मंगल सिद्धि और शकुन का प्रतीक मान कर उनको चित्रकला और लोक चित्र कला में व्यापक रूप से अपनाया जाता है।

हमारी लोक कला की उक्त समृद्धि शंख, स्वास्तिक, आभूषण, ग्रह कुण्डलियाँ, चक्र, कलश आदि की मोहक आकृतियों में भी देखी जा सकती है। माडना अल्पना, चौक पूरना, रंगोली, थापे और सांझी आदि की विभिन्न लोक शैलियाँ लोक कला की परम्परा को आज भी अक्षुण्ण बनाये हुये हैं।[2] आँगन या भूमि पर अंकित किये जाने वाले चित्रों को चौक या रंगोली और दीवारों तथा द्वारों पर अंकित किये जाने वाली आकृतियों को

1- वाचस्पति गैरोला - भारतीय चित्रकला पृ0 248

2- - वही -

छापा या दापा कहा जाता है । प्रत्येक त्योहार व उत्सव पर भिन्न - भिन्न प्रकार के छापे अंकित किये जाते हैं जो प्राचीन काल से चले आ रहे हैं । छापों का वर्णन तृतीय अध्याय में प्रस्तुत किया जा चुका है ।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति तथा लोक विश्वासों के साथ अपनी अभिन्न एकता बनाये ' अल्पना ' एक घरेलू कला के रूप में वर्षों से हमारे जन - मानस में अपनी लोक प्रियता बनाये हुये हैं । उसको लोक कला में सर्वाधिक सम्मान प्राप्त है । उत्सवों और त्योहारों के शुभवसर पर वह हमारे उल्लास, उत्साह का संवर्धन करती हुई हमारे संस्कृति के पवित्र तथा सुरुचि - पूर्ण पक्ष को प्रगट करती है ।[1]

कुछ त्योहारों पर मंगल कलश की स्थापना की जाती है जिसके नीचे पहले गेहूँ के आटे से चौक लगाया जाता है ।

दीवार पर बनाये जाने वाले चित्र कहीं - कहीं पर बहुत सुन्दर बनाये जाते हैं । अहोई पर दीवार पर होई माता चित्रित की जाती हैं जो पृथ्वी माता की पूजा को दर्शाती है । करवा चौथ पर अंक देती स्त्री, चाँद तारे फूल पत्ते आदि बनाये जाते हैं । नाग पंचमी पर दीवार को गोबर से लीपकर कलश से साँप चित्रित किये जाते हैं । साँपों की पूजा भारतीय उदारता की पराकाष्ठा है । इसे प्रत्येक परिवार प्रेम से करता है । जन मानस का ऐसा विश्वास है कि नाग की पूजा करने से तथा द्वार पर स्थापना करने से वर्ष भर तक वे उनके घर में प्रवेश नहीं करेंगे । दीवाली पर देवउठावणी ग्यारस पर भी इसी प्रकार खड़िया, गेरू रंग आदि से चित्र बनाये जाते हैं । इस

1- स्वयं सर्वेक्षण के आधार पर - 13-12-84

सब कला - कृतियों में संवहित की भावना छिपी रहती है तथा इसमें धार्मिकता का महान पुट है। हरियाणा में काढ़ने की कला की सबसे बड़ी विशेषता है - रेखाओं पर पूर्ण सन्तुलन एवम रेखाओं की शक्ति का भरपूर प्रयोग।

महावर :- महावर प्रत्येक त्योहार व धार्मिक अनुष्ठानों, विवाह व नृत्य करते समय लगाई जाती है। जिस प्रकार मेंहदी द्वारा हाथों को सजाया जाता है, उसी प्रकार महावर द्वारा पैरों का श्रृंगार किया जाता है। महावर को संस्कृत में ' आलक्तक' या घरेलू भाषा में अलता भी कहा जाता है। इसे पैरों में लगाने की प्रथा प्राचीन है। यह बाजार में तरल रूप में शीशी में सस्ता मिलता है और गहरे गुलाबी रंग का होता है। यह शुभ माना जाता है। त्योहारों पर तथा शादी, विवाह आदि पर लगाया जाता है। इसमें पैरों पर सुन्दर आलेखन या लाइनें ही लगाई जाती हैं। बिन्दियाँ व स्वास्तिक का चिन्ह बनाया जाता है।[1]

उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में भी इसे लगाने का खूब प्रचलन है। इसे शुभ माना जाता है। इसे लड़कियाँ व सधवा स्त्रियाँ ही लगाती हैं। महावर का प्रचलन बंगाल में सबसे अधिक है। वहाँ माना जाता है कि पैरों में महावर लगाने से खारवे नहीं पड़ते। यदि खारवे हों तो महावर लगाने से ठीक हो जाते हैं। अतः महावर का प्रयोग दवा के रूप में भी होता है।
चित्र नं0, फलक नं0- 21, 22, 23

चौतना (मिट्टी, गोबर आदि से) :-

लोक जीवन में चौतने की कला का बड़ा ही प्रचलन मिलता है। चौतने

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर - 13-12-84

'महावर'

चित्रसंख्या २।

फलक २।

महावर चित्र संख्या २२

'महावर'

चित्र संख्या 23

फलक 23
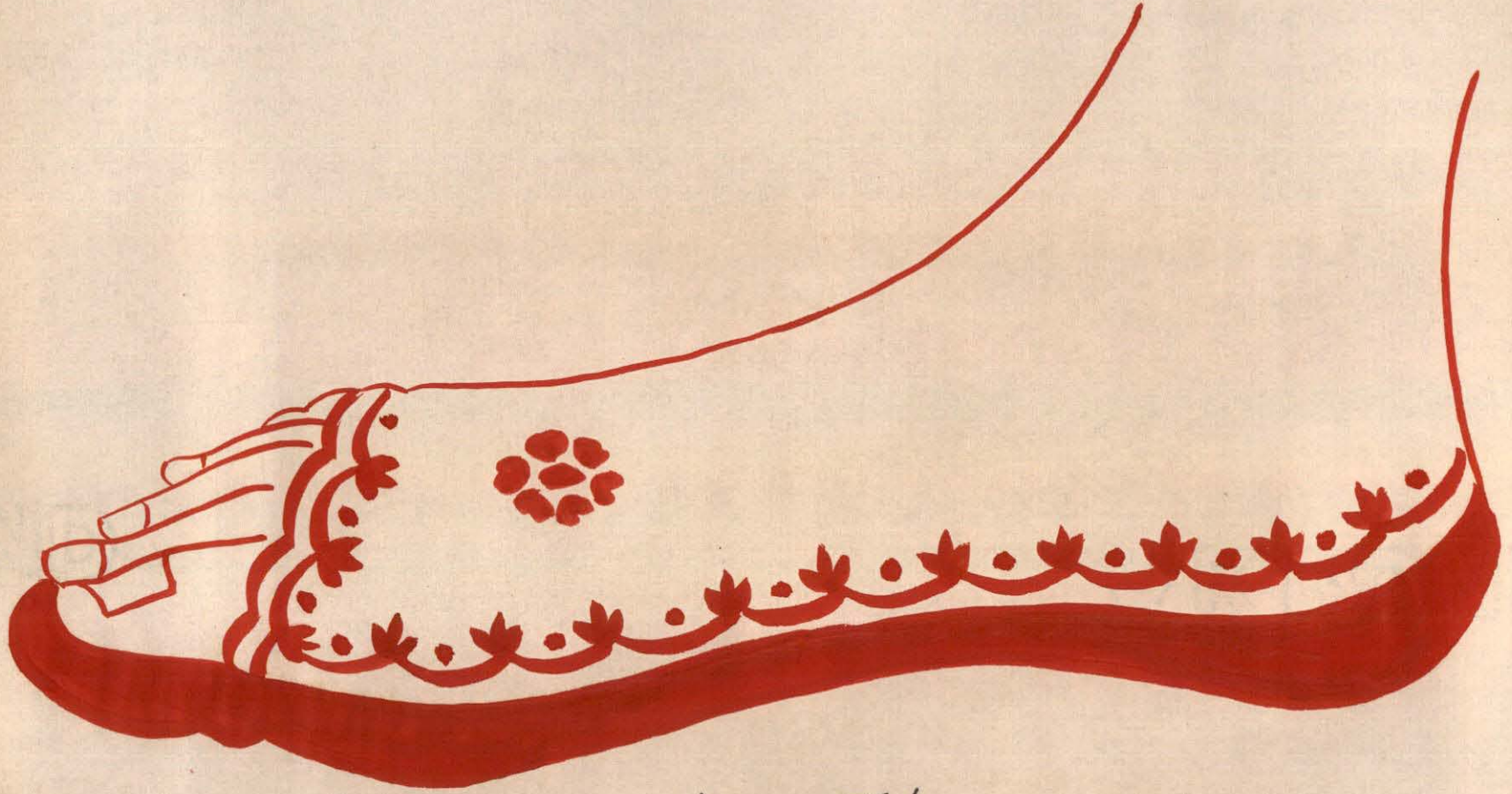
शब्द का अर्थ विभिन्न अर्थों में होता है। चित्रित करने से इसका विशेष महत्व है। सुनार जिस प्रकार सोना गढ़कर गहने बनाता है, उसी प्रकार चितेरे चोतते हैं। बंगाल में चोतने के समान चितिर शब्द का प्रयोग किया जाता है। भारतीय सदैव प्राकृतिक पदार्थों से कला का प्रदर्शन करते रहे हैं। चोतने की लोक चित्रकला की रचना अधिकतर गोबर से की जाती है। कागज न होने के कारण दीवारों पर ही चोता जाता था। हरियाणा में गोबर से चोता जाता है तथा गाँवों में कच्चे मकानों के फर्श व दीवारें गोबर से ही लीपी जाती हैं।

नौ दुर्गा में, जो अश्विन के शुक्ल पक्ष में होती है, दीवार पर साँझी को गोबर द्वारा चिपकाया जाता है। जो नौ दिन तक बराबर कौड़ी, चूड़ी, कागज आदि की सहायता से दीवार पर एक प्रकार का आलेखन बनाया जाता है। बच्चा होने पर छटी पर कमरे के बाहर गोबर से गोले व सतिये बनाये जाते हैं।

दीवाली के अगले दिन गोबर धन की रचना बड़ी विस्तृत और आनंद पूर्ण होती है। इसमें कपड़े, गेहूँ की बालें सीखों, गेहूँ की डण्डी मोमबत्तियाँ आदि लगाकर सुन्दर सजाया जाता है तथा रात्रि के समय पूजा की जाती है।

साँझी के विसर्जन के बाद दीवार पर गोदू साँझी का भाई बनाया जाता है। गोबर से बनाकर मिट्टी के बने पहले से सूखे तथा रंग किये फूलों से उसे सजाया जाता है। यह घर के आंगन की दीवार पर प्रत्येक घर में बनाया जाता है जो एक वर्ष तक बना रहता है।

1- फोक रियुअल ड्राइंग आफ बंगाल - पृ 82

गोबर से उपले बनाना भी बोलने की कला के अच्छे नमूने कहे जा सकते हैं । गोबर के उपले बनाने की प्रक्रिया को गोबर थापना कहते हैं ।इन्हें थोपड़ी भी कहते हैं । प्रत्येक गाँव में सरोवर के साथ साथ ' गितवाड़ों' की पंक्ति होती है । जहाँ उपले थापे जाते हैं । यहाँ चारों ओर काँटों की ऊँची ऊँची बाड़ लगी होती है । स्त्रियाँ गोबर लेकर सुबह आती हैं, उपले थापती हैं और लौटते समय सूखे उपले टोकरों में भर कर ले जाती हैं । बहुत मात्रा में उपले जमा होने पर तथा बारिश से बचाने को उपलों को विशेष सुव्यवस्थित ढंग से चुनकर ऊँचा सा ' बिटोहा ' खड़ा कर दिया जाता है तथा ऊपर से घास का छप्पर डाल दिया जाता है । उपले बनाने का काम यहाँ बहुत मात्रा में होता है । मोटे बनों को उपले तथा पतलों को थापेड़ी कहा जाता है । यह प्रायः दीवार पर और जमीन पर बनाये जाते हैं । उत्तर प्रदेश में इन्हें गोष्ठा और चिपटी कहा जाता है । चिपटी पर उँगलियों के तीन निशान रहते हैं और गोष्ठा मोटा होता है जो हरियाणा से मिलते जुलते हैं ।

इस प्रकार गोबर थापने में भी लोक कला परिलक्षित होती है।[1]

मेंहदी :- नग्न जंगली अवस्था में लोग आकर्षक रंगों का प्रयोग अपने शरीर को अलंकृत करने में किया करते थे । तदुपरान्त इसका प्रयोग उन्होंने अपने वस्त्रों में किया ।[2] इस प्रकार यह माना जा सकता है कि मेंहदी का प्रयोग

1- काशी उपाध्याय 'भ्रमर' त्रिपथगा - चित्रकला अंक - नवम्बर 1962, पृ - 143

2- एडवर्ड बानकार्पेट - फिलासफी आफ परमानेन्ट कलर वा०-1, पृ० 9

" " ... गैडी एंड बैराइड कलर्स, इन द स्टेट आफ नैकेड सेवेजेज दे हेव जनरली एप्लाइड टू देयर स्किन एंड आफ्टरवर्ड्स टू देयर गारमेन्ट्स,

अति प्राचीन काल से मेंहदी द्वारा स्थाई रंग चढ़ जाने के कारण होता होगा । मेंहदी लगाने का प्रचलन हाथों, पैरों तथा बाल रंगने के लिये किया जाता है । सुन्दर, कोमल हथेलियों को मनोहर बनाने का प्रसंग ईसा की पहली शती के आस - पास मिलता है । बाइबिल में इनका उल्लेख 'कोफर' के नाम से मिलता है । ' साइप्रस ' झाड़ी के नाम से यह यूनान में पहचानी जाती है ।[1]

मेंहदी लगाने की प्रथा रीतने के अन्तर्गत आती है । इसका हमारे दैनिक जीवन में बहुत महत्व है । प्रत्येक शुभ त्योहारों, व्रतों, संस्कारों और अनुष्ठानों में इसकी आवश्यकता होती है । यही कारण है कि आज भी आधुनिकायें विवाह जैसे मांगलिक कार्यों, संस्कारों आदि पर मेंहदी लगाने का लोभ संवरण नहीं कर पातीं ।[2]

भारतीय संस्कृति में सुहाग के प्रतीक के रूप में जितना महत्व सिन्दूर, बिन्दी चूड़ी, महावर को दिया गया है, उतना ही महत्व मेंहदी को भी प्रदान किया गया है । मेंहदी स्त्रियों का श्रृंगार, विवाहितों की सुख सौभाग्य की लाली है । शादी विवाह, तीज - त्योहार, संस्कार प्रत्येक मांगलिक कार्य मेंहदी के बिना अधूरा ही माना जाता है । विवाह के अवसर पर जब तक वर वधू के हाथों में मेंहदी न रचे तब तक उनका श्रृंगार पूरा नहीं होता ।[3] मुस्लिम

1- मुकेश गुप्त - मेंहदी के रंग - दैनिक जागरण - परिशिष्ट 12 अगस्त, 1970, पृ0- 1

2- - वही -

3- कनक मेंहदी - मनोरमा - 8 जुलाई, 1979 - पृ0- 29

परिवारों में भी मेंहदी का महत्व कम नहीं है । निकाह के अवसर पर वधू तथा उनका परिवार मेंहदी रचाते हैं । मेंहदी लगाते समय मेंहदी के गीत भी गाये जाते हैं :-

घोलो री नंनद मेंहदी के पात रगड़ रचाओ मेंहदी जो राज
ननद रचाए हाथ और पां हमने रचाई चिटली आंगली जो राज
छोटी सो रची हाय और पां कुल म रची से चिटली आंगली जोराज''

- 2

यों मेंहदी किन लाई
दूर देसां ते म्हारे बहण मुआ आई
तो मेंहदी उन लाई
म्हारे घर में एक छन्दलिया भाभी
तो सुरमा उन सारया ।
म्हारे सहर में एक माई की बसे धी
तो मरमट उन चोल्या । - 2 (1)

तथा

मेंहदी से रची हथेलियां,
जब करे मधुर अठखेलियां
बज उठे काँच की चूड़ियाँ
नागिन सी उड़े लटरियाँ - 2 (11)

1- मुकेश गुप्त - मेंहदी के रंग - दैनिक जागरण - साप्ताहिक परिशिष्ट 12 अगस्त, 1979, पृ० - 1

2- भाषा विभाग हरियाणा - हरियाणा के लोक गीत पृ० 20

2(1) राजाराम शास्त्री - हरियाणा का लोक साहित्य पृ0 21

2(11) उदय भानु हंस - हरियाणा गौरव गाथा पृ0 - 25

स्त्रियाँ जब तक मेंहदी सूखा नहीं पाती कोई काम नहीं करतीं। इसलिए " हाथ में मेंहदी लगाना " एक मुहावरे के रूप में प्रचलित हो गया है। जिसका अर्थ है कोई काम न करना।

वास्तव में मेंहदी हाथ पैरों का प्रसाधन ही नहीं बल्कि उनकी कला प्रियता का प्रत्यक्ष प्रतीक भी है। हिन्दू परिवारों में आज भी मांगलिक अवसरों पर मेंहदी लगाना एक धार्मिक कृत्य समझा जाने लगा है।[1]

मेंहदी की महिमा का तो अन्त नहीं। राजस्थान में तो मेंहदी वहाँ की संस्कृति और जन जीवन में ऐसी रची बसी है कि मेंहदी के बिना राजस्थान और राजस्थान के बिना मेंहदी की कल्पना नहीं की जा सकती।[2]

राजस्थान में सोजत की मेंहदी सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है। इस सम्बन्ध में रोचक और तथ्य पूर्ण बात यह है कि अन्य जातियों की तुलना में वैश्य घरों में बनाये जाने वाले मेंहदी के डिजाइन सर्वाधिक सुन्दर, विविध आकार प्रकार के परिष्कृत और अलंकार पूर्ण होते हैं। यह भी सत्य है कि मेंहदी के डिजाइनों को सुख और सौभाग्य की भावना से प्रेरित होकर ही बनाया जाता है। वैश्य महिलाओं के बाद दूसरा स्थान ब्राह्मण महिलाओं का आता है।[3]

हरियाणा में पहले तो आम तौर पर मुठ्ठी वाली मेंहदी लगाई

1- काशी उपाध्याय - 'भ्रमर' त्रिपथगा अंक नवम्बर, 1962 पृ 141

2- कनक - मेंहदी - मनोरमा - 8 जुलाई, 1979, पृ० 29

3- जोगेन्द्र सक्सेना- माण्डणा, मेंहदी और रंगोली और रंगोली, क्या इनका संबंध तन्त्र से है?- सा०हिन्दुस्तान 26 अक्टूबर, 1984, पृष्ठ - 43

जाती थी परन्तु अब सुन्दर सुन्दर डिजाइनों में मेंहदी लगाने का प्रचलन हो गया है ।

कहते हैं कि मेंहदी मेह की दी हुई है । अतः इसे मेंहदी कहते हैं । बरसात में मेंहदी की छटा निराली होती है । हाथों में मेंहदी भिन्न रूपों में लगाई जाती है । गोलाकार, वर्गाकार, स्वास्तिक, ओउम, नाम तथा फूल पत्तों के डिजाइनों वाली ।

मेंहदी दो प्रकार की होती है । सूखा पाउडर तथा हरी पत्तीदार पाउडर वाली को घोल कर या महीन पीस कर लगाई जाती है । लगाने के लिये सींक अथवा छापों से लगाई जाती है । राजस्थान व उत्तर प्रदेश में इसमें भिण्डी का लेस मिलाकर तार टपका कर सुन्दर बारीक आलेखन बनाये जाते हैं । पर्वों पर सुहाग का प्रतीक होने के कारण विवाहिता अपने सुहाग की रक्षा हेतु, कुमारियाँ अपने अभीष्ट वर की प्राप्ति के हेतु लगाती हैं । ऐसे अवसरों पर वे अपने हाथ पैरों को मेंहदी से अलंकृत करती हैं । विधवा स्त्रियाँ इसका प्रयोग नहीं करती ।

मेंहदी लगाने से हाथ पैरों की जलन भी दूर होती है । पैरों में घाव हो जाने पर मेंहदी लगाने से आराम मिलता है । इस प्रकार स्वास्थ्य लाभ के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है ।

हरियाणा में साधारणतया मुट्ठी में मेंहदी लगाने का अधिक प्रचलन है । इसके लिये सख्त, मेंहदी घोल कर लम्बे आकार में मेंहदी रखा कर मुट्ठी बन्द कर लेते हैं । इसमें बीच में कुछ स्थान बिना रचा रह जाता है जिससे हाथ में ' मुठिया या मछली ' पड़ना कहते हैं । सींक से और आकार प्रकारों में भी डिजाइन बनाये जाते हैं । चित्र नं०/फलक नं० 24,25,26,26(i)

खोदने की चित्रकारी :- खोदने की चित्रकारी काफी पुरानी है । पृथ्वी को
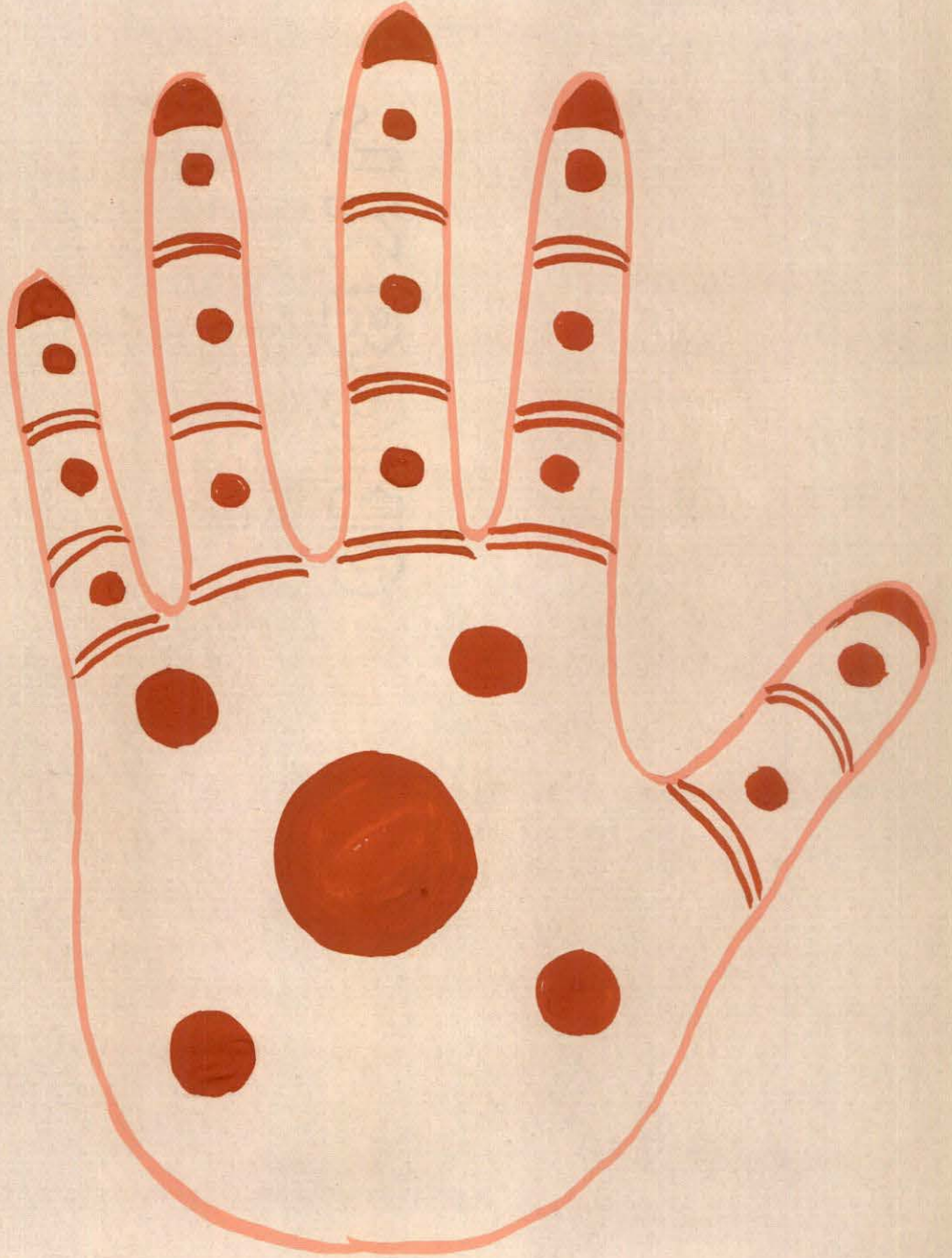
मेंहदी

चित्रसंख्या २५

मेंहदी
चित्र संख्या 25
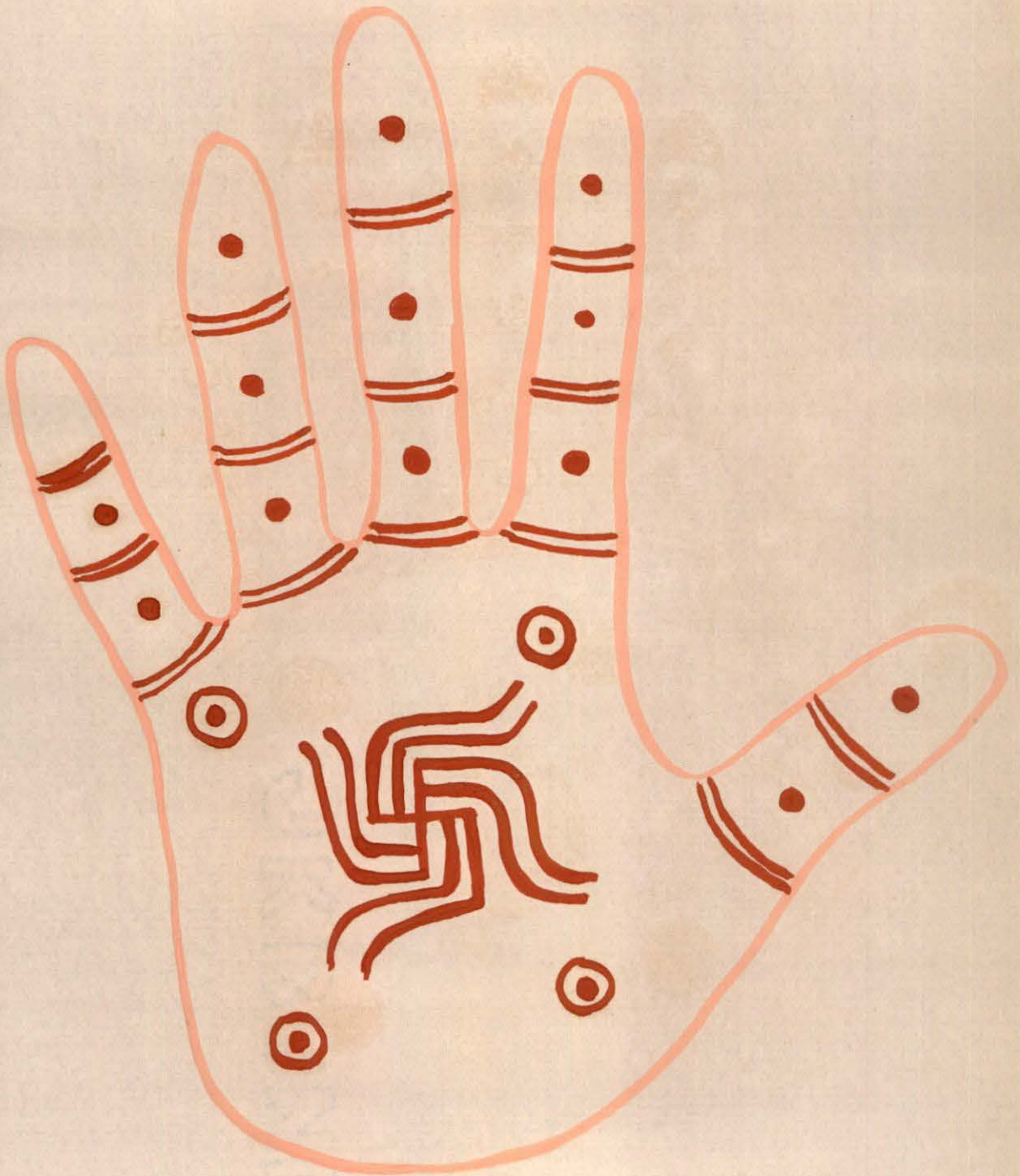
अलंकारिक मेंहदी
चित्र संख्या २६

अलंकारिक मेंहदी
चित्र संख्या 21

को खोदकर भिन्न भिन्न प्रकार के आलेखान बनाये जाते हैं । आदि मानव असभ्य अवस्था में जंगलों में रहता था । उसका काम केवल पेट भरना ही था । जानवरों को मार कर पेट भरता था । खाली समय में गुफाओं की दीवारों पर नुकीले पत्थरों की सहायता से जानवरों के चित्र बनाता था तथा उन शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिये उनकी पूजा करता था । ऐसी अनेक गुफायें मिली हैं, जिनको देखकर आदि मानव की रुचि का पता लगता है । पहले घरों के दरवाजों आदि पर भी खुदाई का सुन्दर काम किया जाता था । पुराने मकानों की अपनी ही बनावट होती है । बाहर की ओर मजबूत लकड़ी की ' टोड़ियों ' पर छज्जा टिका रहता है । इन पर बढ़िया नक्काशी की जाती थी । मुख्य द्वार की बड़ी सी काठ की चौखट पर भी सुन्दर बेलबूटे खुदे होते हैं जो कला का सुन्दर नमूना है ।[1]

भरना सूखे रंगों से :-

यहाँ पर सूखे रंग भर कर भी चौक लगाने की प्रथा है । पट्टे पर आटा व सूखी हल्दी से विभिन्न त्योहारों, संस्कारों पर पृथ्वी व पट्टे पर चौक लगाया जाता है । फिर दीवार, फर्श को पहले लीपा पोता जाता है तथा पृथ्वी पर सुन्दर चौक लगाया जाता है । रंगों से गीले व सूखे दोनों से, फूलों से, बुरादे से चौक लगाने की प्रथा है । पहले गेरु या खड़िया , मिट्टी से डिजाइन बना लिया जाता है फिर रंग भर जाते हैं । यह काम हरियाणा से ज्यादा उत्तर प्रदेश में प्रचलित है कभी कभी इतने सुन्दर अलंकरण तैयार किये जाते हैं कि देखते ही रह जाओ ।

1- देवी शंकर प्रभाकर - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ 65

माँग भरने या बिन्दी लगाने की क्रिया भी भरने की कला के अन्तरगत आती है । माँग भरना सुहाग का चिन्ह है । अतः माँग भरी जाती है । यहाँ पर माँग शादी, विवाह या माँगलिक अवसरों पर ही माँग भरते हैं । रोज में प्रायः स्त्रियाँ नहीं भरतीं । बिन्दी भी तरह तरह की लगाई जाती है । रोली, चन्दन, लाल रंग की गोली - सुखी या चिपकाने वाली । बिन्दी भी यहाँ पर त्योहारों, विवाह आदि पर ही लगाई जाती है रोज में इसका प्रचलन कम ही है । चित्र नं० 27 फलक नं० 28.

गोदना :-

सारे भारत में ही शरीर को गुदवाने की प्रथा प्राचीन है । गोदने की विशेष चित्रकला का सम्बन्ध अलंकरण से ही होता है । यह मनोविनोद के लिये ही किया जाता है । गोदने में उनकी धारणा है कि अगले जन्म में हिन्दी परिवार में जन्म नहीं होता । अतः गोदना स्त्रियों के लिये धर्म का एक अंग बन गया है । भगवान कृष्ण ने गोदने वाली का स्वरूप बनाया था । अतः गोदने की कला द्वापर युग से प्रमाणित रूप से ही प्रचलित है । इसे सौभाग्य सूचक भी माना गया है । यहाँ गाँव की स्त्रियों में गोदना बहुत प्रिय है । इसमें सुन्दरता की वृद्धि की भावना भी निहित है ।

इसमें कष्ट का अनुभव होते हुए भी स्त्रियाँ शौक से करवाती हैं क्योंकि यह सुई चुभो कर किया जाता है । गोदना करने वाली को 'लिलिहारी' कहा जाता है ।

गोदने भिन्न भिन्न आकृतियों में बनाये जाते हैं । वर्गाकार, आयताकार, ओ३म , स्वास्तिक, नाम, देवी - देवता, पशु - पक्षी, फूल पत्ती , मोरनी, आरसी, घडी आदि ।

बिन्दी के रूप फलक २४

चित्र संख्या २१ (२)
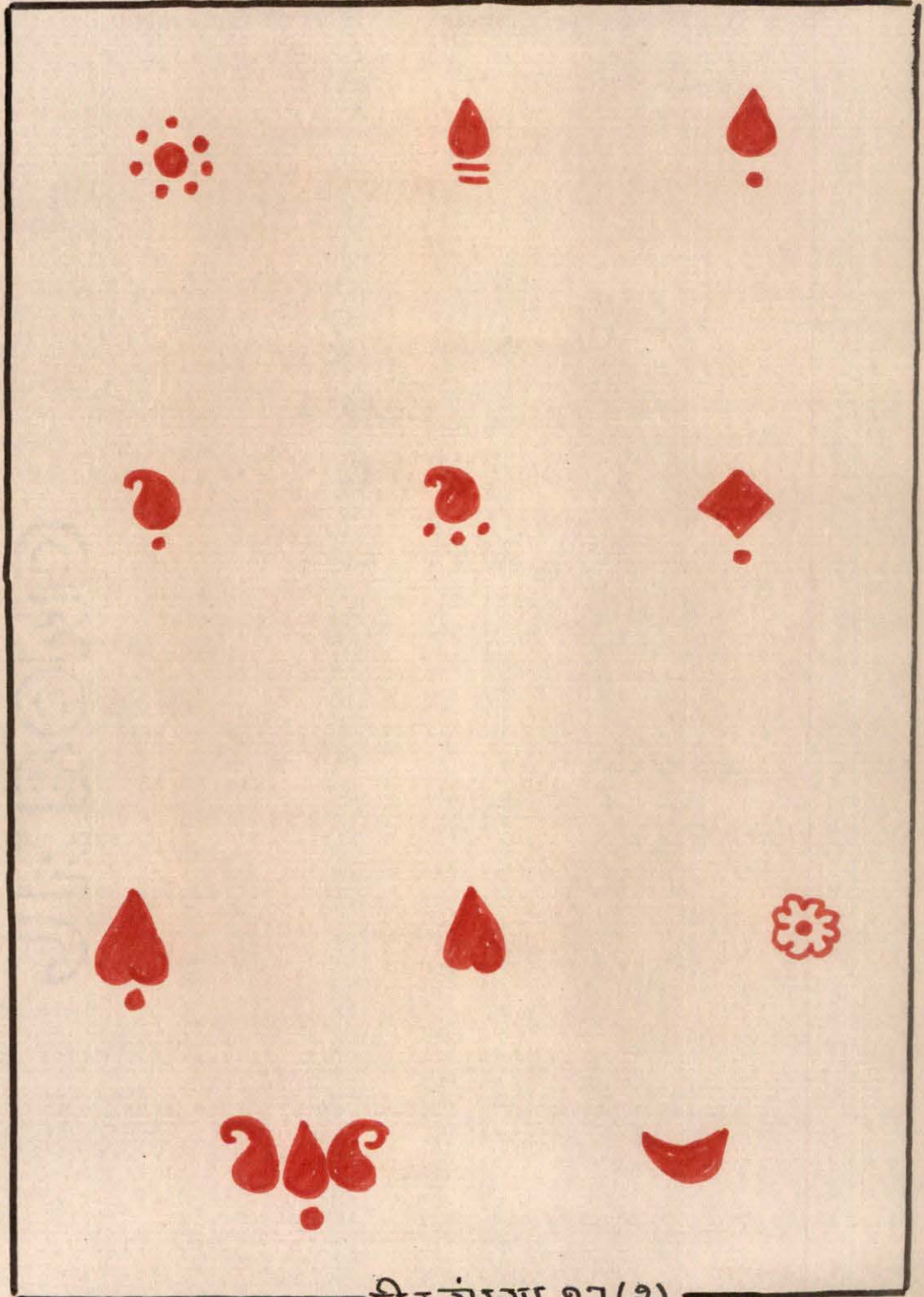
पहले सौन्दर्य साधन उपलब्ध नहीं थे । अतः स्त्रियों को सजने - संवरने की मूल प्रवृत्ति को पूर्ण करने का एक साधन था । यह शरीर पर दिखाई देने वाले स्थान पर ही करवाया जाता है । इस गोदने का मुख्य आधार पवित्रता, धार्मिकता एवं अधिपत्य से सम्बन्धित रहा है । बिहार में एक अन्ध विश्वास है कि जो स्त्री जितना अधिक गोदना कराती है, उतनी ही साहसी व निर्भीक मानी जाती है ।[2]

गोदना या इसे लिखाना भी कहा जाता है । यह प्रथा भारत के आदिवासी लोक जीवन में बहुत मिलती है । विशेषकर मध्य भारत के बैगा व गोण्ड जाति में यह अधिक प्रचलित है । कुछ उत्तर प्रदेश के धारु आदि वासी लोगों में इसका प्रचलन काफी है । राजस्थान व हरियाणा प्रदेश में भी इसका महत्व आज भी बना हुआ है । मुख्यतया स्त्रियाँ ही अपना शरीर गुदवाती हैं । गुदने का अपना एक हज आकर्षण होता है जो देखता ही देखता ही रह जाता है । गुदना स्मृतियों, घटनाओं व व्यक्तियों की याददाश्त अमर रखने के लिये भी कराया जाता है । इस प्रकार गुदना से सम्बन्धित अनेक अन्ध विश्वास प्रचलित हैं । आजकल विदेशों में भी यह प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा है । जर्मनी तथा इटली में तो यह अपने आधुनिकतम रूप में ' पाप आर्ट' रूप में ' जाज एवम् बीटल गायकों में लोकप्रिय हो रहा है ।[3]

गोदने में बनी धार्मिक आकृतियों से लोक मानस की धार्मिक भावना

1- एस पी आनन्द - अवध की लोक चित्रकला पृ 143

2- डा० जय सिंह प्रदीप - फैशन की मांग बन रही है - आलेखन या गोदना - साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 25 नवम्बर, 1984, पृ0'23

3 वही

का भी आभास मिलता है ।

धार्मिक भावना के साथ साथ इसमें सामाजिक भाव भी प्रदर्शित होते हैं । अलंकरण के साथ जैसे अन्य लोक कला कृतियाँ भावना प्रधान होती हैं । गोदने में भी टोने टोटके अथवा जादू की भावना छिपी रहती है । टोने टोटके के रूप में भी अनेक आकृतियों का प्रयोग किया जाता है । अन्ध विश्वासी होने के कारण ग्रामीण किसी भी संकट के समय टोने टोटके का प्रयोग करते हैं । बड़ी बड़ी बीमारियों में टोटके करते हैं । बीमारी में हुये कष्टों के निवारण के लिये गुदना गुदवा लिये जाते हैं । इस विश्वास से कि कष्ट दूर होगा ।[1] परन्तु कभी कभी सुई आदि के गन्दा होने पर कष्ट और बढ़ जाता है तो उसे लोक मानस देवी का प्रकोप समझते हैं । इसमें धतूरे के दूध में काजल मिलाकर काला रंग तैयार किया जाता है । उसमें सुइयों को डुबो कर कोमल अंगों को अपनी तीखी सुइयों से निर्दयता के साथ बेधा जाता है ।[2]

यहाँ स्त्रियाँ अपनी सास अथवा अपने पति के हाथ पर हाथ रख कर गुदवाती हैं । इसका भाव यह होता है कि यही सास व पति उन्हें अगले जन्म में भी प्राप्त हो । यह अटूट श्रद्धा और प्रेम लोकाचार में दिखाया गया है । स्त्रियाँ पैर, हाथों की हथेली के ऊपर, मुँह पर, ठोड़ी पर, माथे पर गोदना गुदवाती हैं । गोरे रंग की सुन्दर स्त्रियों के गोदना उनकी सुन्दरता में चार चाँद लगा देता है । पुरुष भी अपने हाथों व बाँहों पर

1- डा० जय सिंह प्रदीप - फैशन की मांग बन रही है - आलेखन या गोदना - साप्ताहिक हिन्दुस्तान 25.11.84 पृ० 23

2- काशी उपाध्याय - भ्रमर - त्रिपथगा अंक - नवम्बर,62 पृ0141

अपना नाम, किसी देवता का नाम, फूल पत्ती, स्वास्तिक और ओउम की आकृतियाँ गुदवाते हैं। एक विरहा में इस प्रकार के विभिन्न रंग के गोदना गोदने की प्रार्थना की गई है। जिस प्रकार रंगरेज चूनरी को रंगता है।

" अइसन गोदना गोदुरे गोदनरिया, जइसे चूनरी रँगेलो रंगरेज"[1]
इस लोक गीत में स्त्री प्रार्थना करती है कि ऐ गोदनहारी, विभिन्न रंगों का मिश्रण बनाकर इस प्रकार से रंगीन गोदना गोदो जिस प्रकार रंगरेज चूनरी को रंगता है। ऐसा ज्ञात होता है कि गोदने में मनुष्यों की आकृति भी अंकित की जाती थी। आकृति विशेष प्रिय होती है।

6- चिपकाने की कला :- हरियाणा के लोक जीवन में चिपकाने की प्रक्रिया भी एक विशेष कला है। यह चिपकाने की लोक चित्रकला कोई स्वतन्त्र इकाई नहीं है। इसकी सहायता से अन्य लोक चित्रकलाओं को सुसज्जित होने का अवसर प्राप्त होता है। इसकी सहायता अनुष्ठानिक और मनोविनोदार्थ सभी चित्रकलाओं में ली जाती है। जन्म और विवाह के समय, साँझी, गोवर्धन आदि अवसरों पर चिपकाने की कला को प्रदर्शित किया जाता है। इसमें तरह तरह के रंगीन कागज, कौडी, कपडे, खोल, मोती, सितारे आदि अलंकरण की शोभा को द्विगुणित करते हैं। मिट्टी के खिलौनों में भी विभिन्न वस्तुओं को चिपका कर उन्हें अलंकृत किया जाता है। चूंदड़ी को गोटा किनारी चिपकाया जाता है।

हरियाणा में जन्माष्टमी का त्योहार भी बड़े उमंग व उल्लास से मनाया जाता है। घर घर में बड़े बड़े व बच्चे श्री कृष्ण भगवान की सुन्दर सुन्दर झाँकियाँ सजाते हैं जिनको रंग - बिरंगे कागज, पन्नी तथा और कलात्मक वस्तुयें चिपकाकर सजाया जाता है। हरियाणा में प्रत्येक नव वधू

1- डा0 उपाध्याय - भोजपुरी लोक गीत भाग - 1

विवाह में अपने घर से फूलझडी ' लाती है । जो बाहर बरान्डे से टांगी जाती है । यह रंग बिरंगे कागजों को मोड़कर चिपका कर ' झाड ' की आकृति में बनाई जाती है जो लोक कला का एक सुन्दर नमूना है । इसके अतिरिक्त बहु तरह - तरह की कपडे, गोटे, किनारी, कागज, बल्ब आदि लगाकर बन्दनवारे भी बना कर लाती हैं । जो चिपकाने की कला का सुन्दर नमूना प्रस्तुत करते हैं ।

साँझी पर भी मिट्टी के बने फूलों - गहनों, कागज के वस्त्र आदि गोबर से चिपकाये जाते हैं । कागज पर किनारी व सितारे आदि चिपकाकर साँझी को सुन्दर बनाया जाता है । छोटी पर कमरे के बाहर सतिये व गोल चक्र सा गोबर दीवार पर चिपका कर बनाया जाता है । तरह तरह के कपडे किनारी, गोटा लगाकर हरियाणा में हाथ के पंखे भी खूब बनाये जाते हैं जो देखते ही बनते हैं । इसके अतिरिक्त पशुओं को ढकने के कपडे कौड़ी, मोती कपडे आदि चिपका कर सुन्दर सुन्दर बनाये जाते हैं ।[1]

अन्य प्रकार :- लोक चित्र कला में अन्य प्रकार की बहुत सी ऐसी चित्रकला के नमूने सामने आते हैं, जिन्हें देखकर लोक संस्कृति की यहाँ के जीवन में प्रधानता दिखाई पड़ती है । इसके अन्तर्गत अल्पना, पशुओं का श्रंगार, वस्त्र की छपाई व कढ़ाई बर्तन व खेल - खिलौनों की चित्रकला में लोक कला तथा विविध प्रकार आते हैं ।

अल्पना :- चित्रकला पर पहले भारतीय लेख 'चित्र लक्षण' में एक कथा का वर्णन है । कथा इस प्रकार है - एक राजा के पुरोहित था, बेटा मर गया ।

1- स्वयम् सर्वेक्षण के आधार पर - 13-3-84

ब्रह्मा ने राजा से कहा कि वह लड़के का एक रेखा चित्र जमीन पर बना दे ताकि उसमें जान डाली जा सके। राजा ने जमीन पर कुछ रेखायें खींची। ' फ्लोर पेन्टिंग ' अर्थात् अल्पना का जन्म यहीं से हुआ।[1]

इसी प्रकार एक कथा और है - ब्रह्मा ने सृजन के उन्माद में आम के पेड़ का रस निकाल कर उसी से जमीन पर एक स्त्री की आकृति बनाई। उस स्त्री का सौन्दर्य अप्सराओं को भी मात देने वाला था। बाद में वही स्त्री उर्वशी कहलाई। ब्रह्मा द्वारा खींची गई यही आकृति अल्पना का प्रथम रूप है।[2]

अल्पना का आरम्भ, मानव सौन्दर्य बोध के आरम्भ जितना ही पुराना माना जा सकता है। लोक कला के नाम पर उपलब्ध चित्रकला में अल्पना भी है - इसका पौराणिक सन्दर्भ मिलता है। रामायण में जहाँ सीता के विवाह मण्डप की चर्चा की गई है, वहीं अल्पना का विवरण भी मिलता है। यह परम्परा बहुत प्राचीन व देश के विभिन्न भागों में अलग अलग नाम से पुकारी जाती है। बंगाल असम में इसे अल्पना, बिहार में अरिपन, राजस्थान में माण्डना, महाराष्ट्र और गुजरात में रंगोली - कुमांयूँ क्षेत्र को छोड़कर उत्तर प्रदेश में चौक पूरना, दक्षिण में कोलम कुमायूँ में ऐपण से जाना जाता है।

कुछ स्थानों पर अल्पना रोज बनाई जाती है। कुछ में किसी विशेष अवसर पर। यह एक शकुन माना जाता है। पूजा घर का प्रवेश द्वार,

---

1- शुभा वर्मा - लोक ही नहीं, धार्मिक अनुष्ठान भी' साप्ताहिक हिन्दुस्तान - 3 जून, 1979 पृ 39

2- वही - पृ0 39

रसोई, तुलसी, घर का मुख्य द्वार आदि पर रंगोली बनाई जाती है। कोई मेहमान आ रहा हो या पर्वों पर जैसे दीवाली पर घर में रंगोली सजाई जाती है। विवाह के अवसर पर भी तरह तरह की रंगोली सजाई जाती है। लकड़ी के तख्ते पर फर्श पर चावल रंग कर, सूखे व गीले रंगों से अल्पना बनाई जाती है। पर्वतीय प्रदेशों की स्त्रियाँ भी अल्पना की रचना में बड़ी ही कुशल होती हैं।

इसमें धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति भी होती है। उत्तर प्रदेश की स्त्रियों की उँगलियाँ अलंकरण करने में बड़ी कुशल होती हैं। उनकी कुछ ही रेखाओं से आकृतियाँ और भावों की अभिव्यक्ति होती जाती है।[2] हरियाणा में भी अपनी सजावट जैसी भी हो आन्तरिक शुद्धता का पता चलता है। यहाँ बहुत अलंकृत नमूने न बन कर बारीक बारीक साफ - सुथरा तथा भावों से पूर्ण अलंकरण बनाया जाता है। फर्श के स्थान पर किवाड़ों पर चित्रकारी ज्यादा की जाती है। जिसका उद्देश्य केवल सजावट ही होता है।

अल्पना बनाने में प्रतीकात्मक चिन्हों का प्रयोग सारे देश में एक ही प्रकार से होता है। आड़ी तिरछी रेखायें, बिन्दी, गोला, त्रिकोण, स्वास्तिक, फूल पत्ती, जानवर, पक्षी, देवी - देवता आदि बनाये जाते हैं।

भारतीय संस्कृति तथा लोकाचार के साथ अपनी अभिन्न एकता बनाये हुये ' अल्पना ' एक घरेलू कला के रूप में वर्षों से हमारे साथ चली

1- डा0 कृष्णदेव उपाध्याय- भोजपुरी लोककला- त्रिपथगा, नव062, पृ0- 140

2- शुभा वर्मा - लोक कला ही नहीं धार्मिक अनुष्ठान भी।

आ रही है । त्योहारों के समय यह हमारी संस्कृति के पवित्र तथा सुरुचि-पूर्ण पक्ष को प्रगट करती है । त्योहारों पर फर्श पर बनाई जाने वाली कुछ आकृतियाँ अल्पना में भी आ जाती हैं । चित्र नं०/फलक नं० 28, 29, 30, 31 / 29, 30, 31, 32.

1- वाचस्पति गैरोला - भारतीय चित्रकला - पृ० 247

'अल्पना'
चित्र संख्या २४
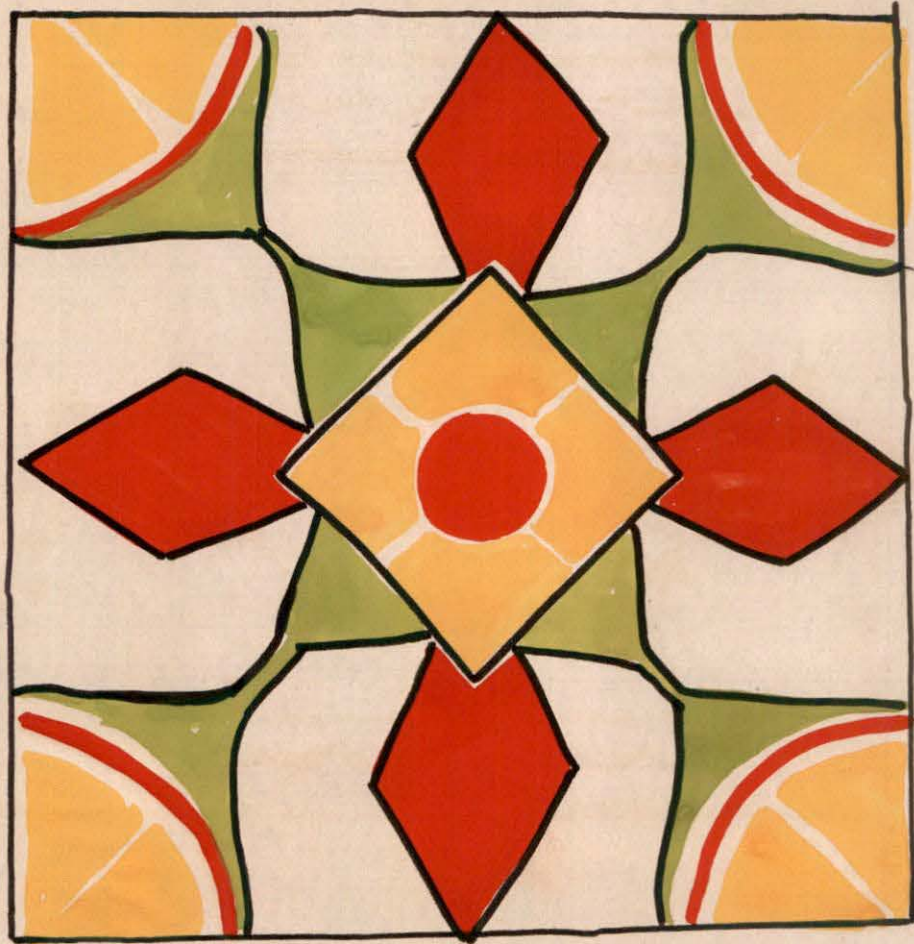
'अल्पना'

चित्र संख्या २१

'अलपना'

चित्र संख्या 30

'अल्पना'

चित्र संख्या 31

अध्याय पंचम

हरियाणा की लोक चित्रकला में काढ़ाने, लिखने की प्रक्रिया, सर्वेक्षण एवं उसका विवेचनात्मक विश्लेषण

अध्याय - पंचम

हरियाणा की लोक चित्रकला में काढने एवं लिखाने की प्रक्रिया एवं सर्वेक्षण उसका विवेचनात्मक विश्लेषण :

हरियाणा की लोक चित्रकला में काढने या लिखाने की कला का बहुत प्रचलन है । उत्सवों, त्योहारों, व्रतों, अनुष्ठानों आदि पर काढने अथवा लिखने का प्रयोग होता है । इसका पूर्ण विवरण चतुर्थ अध्याय में व्यक्त किया जा चुका है । काढने व लिखाने का प्रयोग धार्मिक अनुष्ठान के अतिरिक्त अलंकरण तथा मनोविनोद के लिये भी किया जाता है ।

अनुष्ठानिक लोक चित्रकला निम्नलिखित त्योहारों

तथा संस्कारों से सम्बद्ध है :-

1- अहोई 2- दीवाली 3- देव उठनी ग्यारस 4- नाग पंचमी, 5- साँझी 6- गूगा नवमी 7- दुर्गा अष्टमी 8- करवा चौथ 9- विवाह 10- विभिन्न चौक

हरियाणा में उपर्युक्त त्योहारों पर निम्नलिखित प्रक्रियाएँ होती हैं :-

1- गृह स्वच्छता
2- पूजा स्थान की पृष्ठ भूमि तैयार करना
3- पूजक स्वरूप
4- रचना सामग्री
5- पूजा सामग्री
6- पूजा के अंग
7- पूजा विधि
8- पूज्य वस्तु के प्रकार

1- गृह की स्वच्छता :- हरियाणा में गृहणी प्रत्येक त्योहार, उत्सव व अनुष्ठान पर प्रातः काल उठकर सर्व प्रथम घर की सफाई करती हैं । पक्के घरों के फर्शों को पानी से अच्छी प्रकार धोया जाता है । कच्चे घरों को गोबर से व मिट्टी से लीप कर शुद्ध किया जाता है ।

2- पूजा स्थान की पृष्ठ भूमि तैयार करना :-

अनुष्ठानिक कला के अन्तर्गत पूजा स्थान की पृष्ठ भूमि प्रायः भीति व फर्श होते हैं । यदि दीवार कच्ची होती है तो उसे गोबर मिट्टी से लीपा जाता है । उसमें मजबूती व खूबसूरती लाने के लिए गोबर में पीली मिट्टी या भूसी का बारीक चूरा मिलाया जाता है । यदि भीति या फर्श पक्का

होता है । तब भीत अलंकरण के लिये गोबर से लीपकर पृष्ठ भूमि बनाई जाती है । जिस भीति पर अलंकरण करना होता है, फर्श से डेढ़ - दो फुट ऊँचाई पर होता है । कुछ पर्वों पर पहले गोबर से लिपाई फिर गेरु से लिपाई करके ऐपन या चावल के आटे से चित्र बनाये जाते हैं । गोबर या गेरु से लीपने का तात्पर्य स्थान की शुद्ध करना होता है । यह पृष्ठभूमि एक दो दिन पूर्व या उसी दिन सुबह तैयार की जाती है ।

पूजक का स्वरूप :- विशेषतः अनुष्ठानों तथा व्रतों का कार्य हरियाणा की स्त्रियाँ स्वयम् ही करती हैं । पर्व के दिन स्त्रियाँ प्रातः ही उठकर सिर से स्नान कर नवीन अथवा शुद्ध वस्त्र धारण कर श्रृंगार आदि करके पूजा करती हैं । इसमें शरीर व आत्मिक शुद्धि की पराकाष्ठा होती है ।

रचना सामग्री :- अनुष्ठानिक पर्वों पर रचना सामग्री हरियाणा की स्त्रियाँ एवम घर में उपलब्ध सामान से तैयार करती हैं । रोली, हल्दी, खड़िया या चूना, चावल का आटा, गेहूँ का आटा, गेरु, ऐपन (चावल और हल्दी पिसी हुई) पिसा कोयला अथवा कालस आदि से ही अलंकरण करती हैं । काढ़ने या लिखने का काम पेड की टहनी को कूट कर ब्रश बना कर या रूई सींक पर लपेट कर या तर्जनी उंगली से करती हैं । पूरत (चौक) का काम चुटकी में आटा, हल्दी तथा रोली लेकर बुरक कर किया जाता है ।

पूजा सामग्री :- रोली, अक्षत, हल्दी, पुष्प, चन्दन, धूप, जल, सुपारी, पान का पत्ता तथा सामग्री (हवन की) इत्यादि ।

पूजा के अंग :-

1- जल चढाना

2- आरती करना

3- दीपक जलाना

4- धूप जलाना

5- कलावा बाँधना (मौली)

6- आरती करना

7- परिक्रमा देना

8- जल देना

9- गीत गाना

10- कहानी कहना

11- भोग लगाना

12- प्रसाद बाँटना

पूज्य वस्तु के प्रकार :-

1- मूर्ति (धातु की)

2- मूर्ति (मिट्टी अथवा पत्थर की)

3- कलश (चाँदी, मिट्टी अथवा कलई का)

4- काढे अथवा लिखे या छपे हुये चित्र(भीति अथवा फर्श पर)

आलंकारिक तथा मनोविनोदार्थ :-

आलंकारिक लोक चित्रकला का उद्देश्य आनुष्ठानिक लोक चित्रकला से भिन्न होता है । इसके लिये किसी भी प्रक्रिया का अनुसरण नहीं करना पड़ता है । अपने को अथवा वस्तु विशेष को अधिक शोभित करना ही आलंकारिक तथा मनोविनोदार्थ चित्रकला का उद्देश्य रहता है ।

रचना सामग्री :- गेरू, खड़िया, हल्दी, रोली, कपड़े, रंगने के रंग, मेंहदी, महावर, नीला गोदने का रंग, रूई और सींक आदि ।

रचनास्थल :-

1- मुख्य द्वार के चारों ओर या दो तरफ, भीति के ऊपर, फर्श, कलश

करुआ, घड़ा आदि ।

2- शरीर में हथेली के ऊपर अथवा नीचे, पैर के ऊपर अथवा नीचे, हाथ पैर के नाखून, माथा व माँग तथा ठुड्डी आदि ।

काढ़ने अथवा लिखने की लोकचित्रकला का आनुष्ठानिक प्रयोग के सन्दर्भ में क्रमानुसार त्योहारों का परिचय निम्न प्रकार से है :-

1- अहोई (चकरी) :-

यह त्योहार कार्तिक बदी आठे अथवा अष्टमी के दिन सर्वत्र मनाया जाता है । हरियाणा में इस दिन पुत्रवती माताएं दिन भर व्रत रखती हैं । जिस 'वार' को दीवाली होती है, उसी 'वार' को अष्टमी भी होती है । करवा चौथ के चार दिन बाद अहोई अष्टमी का व्रत किया जाता है । करवा चौथ का व्रत पति की दीर्घायु के लिये होता है तो अहोई अष्टमी का व्रत पुत्र की दीर्घायु तथा सन्तान प्राप्ति की कामना के लिए किया जाता है । अतः हरियाणा की स्त्रियाँ बड़े विश्वास एवम् श्रद्धा से अहोई का पर्व मनाती हैं । इस दिन स्त्रियाँ प्रातः ही स्नान करके व्रत रखती हैं तथा सायंकाल तारागणों के निकलने के बाद दीवार पर अहोई बनाकर उसकी पूजा करती हैं । फिर व्रत खोलती हैं ।

इस व्रत की पूजा विधि :-

इस व्रत की कथा सुनते समय एक पट्टे पर जल से भरकर लोटा या घड़ा रखा जाता है । एक चान्दी की अहोई बनवाकर उसमें चाँदी के मोती डलवाये जाते हैं । जिस प्रकार हार में पेंडल डलवाया जाता है, उसकी जगह चाँदी की अहोई डलवाते हैं जिस हार को हरियाणा में "सेया" कहते हैं । घड़े पर डाला जाता है । घड़े के पीछे दीवार पर अहोई लिखते हैं । पहले दीवार को धोकर खड़िया या चूने से पोतते हैं । फिर गेरु से अहोई

लिखते हैं ।

शाम के समय अहोई की पूजा की जाती है । प्रातः काल दो कोरे मटके एक पानी से भर कर एक अनाज से भर कर रखे जाते हैं । अनाज से भरे मटके पर सास के लिये ' तोल ' रखी जाती है जो व्रत खोलने पर बहुयें अपनी सास को देती हैं । जिस घर में बच्चा पैदा हुआ हो, उस घर की स्वामिनी कुण्डारे भर कर आस पड़ोस में भेजती है । कहीं कहीं गेरु से स्याऊ माता और उसके सात बच्चों को चूल्हे के पास दीवार पर चित्रित किया जाता है । औरतें होई की कहानी सुनकर व्रत खोलती हैं । कहानी सुनते समय ' सेयो' को बच्चों के गले में पहना दिया जाता है । बायना सास को देने के बाद चन्द्रमा को अर्घ्य दिया जाता है । तदउपरान्त भोजन किया जाता है ।

दीवाली के बाद किसी शुभ दिन होई ' सेयो' को गले से उतार कर उसका गुड़ से भोग लगाते हैं । जल से छींटे देकर मस्तक झुका कर रख देते हैं ।

जितने पुत्र हो, उतनी बार दो दो दाने गर अहोई में डालते हैं । ऐसा करने पर अहोई देवी प्रसन्न हो पुत्रों को दीर्घायु देती हैं । दीवार पर चित्रित की गई अहोई में प्रायः सात लड़के, सात बहिनें, सात खिलौने, चाँद, सूर्य तथा गऊ माता बनाते हैं तथा सीढ़ी पर चढ़कर अर्घ्य देती स्त्री बना कर घर के लड़कों के नाम उस पर लिखते हैं । सेई व उसके सात बच्चे भी बनाये जाते हैं ।
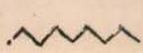
चित्र निहित अभिप्राय :-

पूरे हरियाणा में अलग अलग स्थान पर इस त्योहार को भिन्न भिन्न रूपों में मनाया जाता है । यद्यपि मूल रूप में मान्यता एक ही है ।

यह व्रत पुत्र की आकांक्षा की पूर्ति तथा पुत्रों की मंगल कामना हेतु किया जाता है । इसके सम्बन्ध में एक कहानी प्रचलित है जिसके अनुसार स्त्री आकृति बनाई जाती है । जिसे होई माता कहा जाता है ।

होई के चित्र में एक विशाल आकार में बहुत सी आकृतियाँ चित्रित की जाती हैं जो आकृतियाँ सांसारिक होती हैं । जैसे बेटे - बहू, गहना, गाय, बच्छी आदि । चाँद - सूरज तथा चारों दिशाओं के आह्वान हेतु, स्वास्तिक चिन्ह भी प्रायः चित्रों में बनाया जाता है । होई धरती माता की पूजा का पर्व है ।

चित्र रचना विधि :-

क्षेत्र व जाति भिन्नता के कारण होई के लोक चित्रों में मिलता है । सर्व प्रथम चित्र रचना के स्थान को गोबर मिट्टी से लीप लिया जाता है । यह चित्र दीवार से डेढ़ - दो फुट ऊँचा रहता है । चित्र विशेषकर गेरु से बनाया जाता है । क्योंकि गेरु को विशेष धार्मिक महत्व दिया जाता है । कुछ परिवारों में रंगों का भी प्रयोग कर लेते हैं । चित्र में आकृतियाँ सीधी, टेढ़ी रेखाओं से साधारण बनाते हैं । गाय गहने सूरज चाँद, स्वास्तिक का रूप भी साधारण होता है । बिना किसी यन्त्र की सहायता के सींक में रुई लगाकर बारीक सफाई के साथ चित्र बनाया जाता है ।

गंगवा हिसार बनिये परिवार के होई के चित्र में दीवार को गोबर को लीपकर गेरु से होई माता का चित्र चित्रित करते हैं । होई माता का आयताकार पेट बनाकर बीच से दो भाग लम्बाई के बल में किये जाते हैं । ऊपर आधे भाग में सात बेटे व सात बहुयें बनाई जाती हैं । नीचे के हिस्से को ऊँचाई से दो भागों में बाँट कर गहने गाय, बच्छी व 4 गोल आकृतियाँ बनाई जाती हैं । होई माता के हाथ - पैर व सिर त्रिभुजाकार बनाते हैं । ऊपर प्राणों का प्रतीक मोर बनाते हैं । चारों तरफ ^^^^^ लाइनें जीवन के उतार - चढ़ाव का प्रतीक है । फलक - चित्र नं० 32, फलक नं० - 33

अहोई (गंगवा)
चित्र संख्या 32
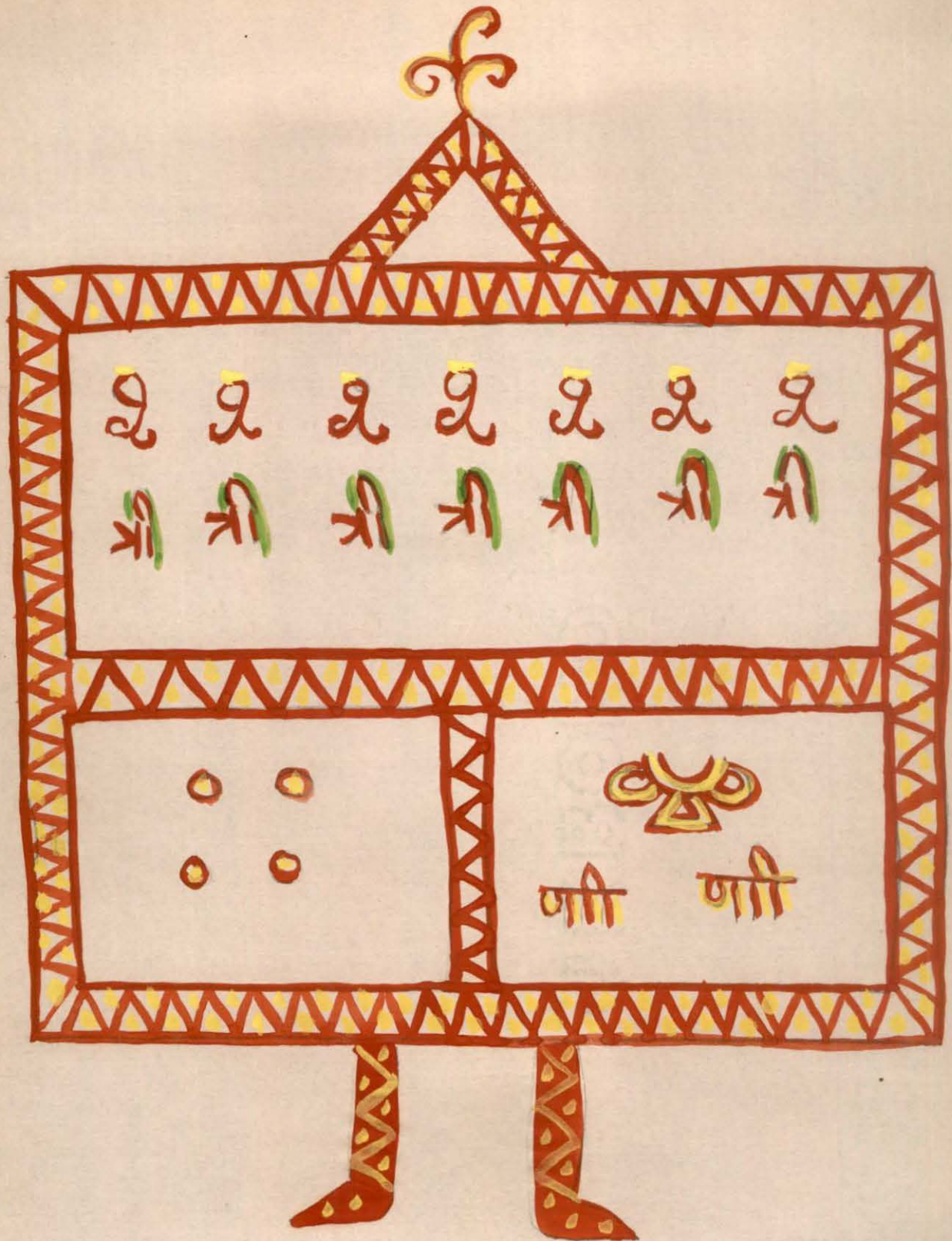
डाबड़ा (हिसार) ब्राह्मण परिवार में भी सात लड़के - बहू नो गोले हाथ - पैर व मुँह बनाया जाता है । सफेद दीवार पर गेरु से बनाया जाता है । चित्र नं०/फलक नं० 33/34

फरीदाबाद की होई में आदमी - औरत, फूल - सात गायें, सात लड़के, सात बहुयें, पक्षी, सूरज - चाँद, स्वास्तिक चारों ओर फूलों की सुन्दर बेल तथा ऊपर ओढ़ना बनाया जाता है । सफेद दीवार पर गेरु से अंकित कर कहीं कहीं रंग भी भरे जाते हैं । चित्र नं०/फलक नं० 34/35

शामगढ़ में होई माता का बड़ा सा मुख सिर पर बाल आयताकार पेट बनाकर उसमें ऊपर सूरज - चाँद, दो झूले बनाकर एक में राजा, एक में रानी व दो बच्चे, झूलों के बीच में गऊ पर आदमी दोनों तरफ बाहर की ओर फूलों के गमले और चारों ओर बेल बनाई जाती है । दीवार को पहले गोबर और फिर सूखने पर पिसे चावलों के घोल से पोता जाता है । फिर गेरु, संतरी, गुलाबी, हरा, स्याही आदि रंगों से सजाया जाता है । बीच में ही होई माता की जै लिखकर घर के लड़कों के नाम भी लिखे जाते हैं। चित्र - 35/36

कुरुक्षेत्र की जाटों की अहोई में सुन्दर ज्यामितीय आलेखन बनाया जाता है । नीचे चकोर घर में एक आकृति नीचे की ओर गऊ, सीढ़ी, सूरज चाँद व स्वास्तिक बनाया जाता है । फूल ऊँ तथा कंघी भी बनाई जाती है । चारों ओर बेल बनाई जाती है । गोबर लीप कर चावल हल्दी पीसकर ऐपन से होई बनाई जाती है जो एक सुन्दर कला का नमूना है । चित्र नं० / फलक नं० - 36/37

मसूरी में ब्राह्मण परिवार होई के ऊपर सुन्दर मुख बनाकर नीचे
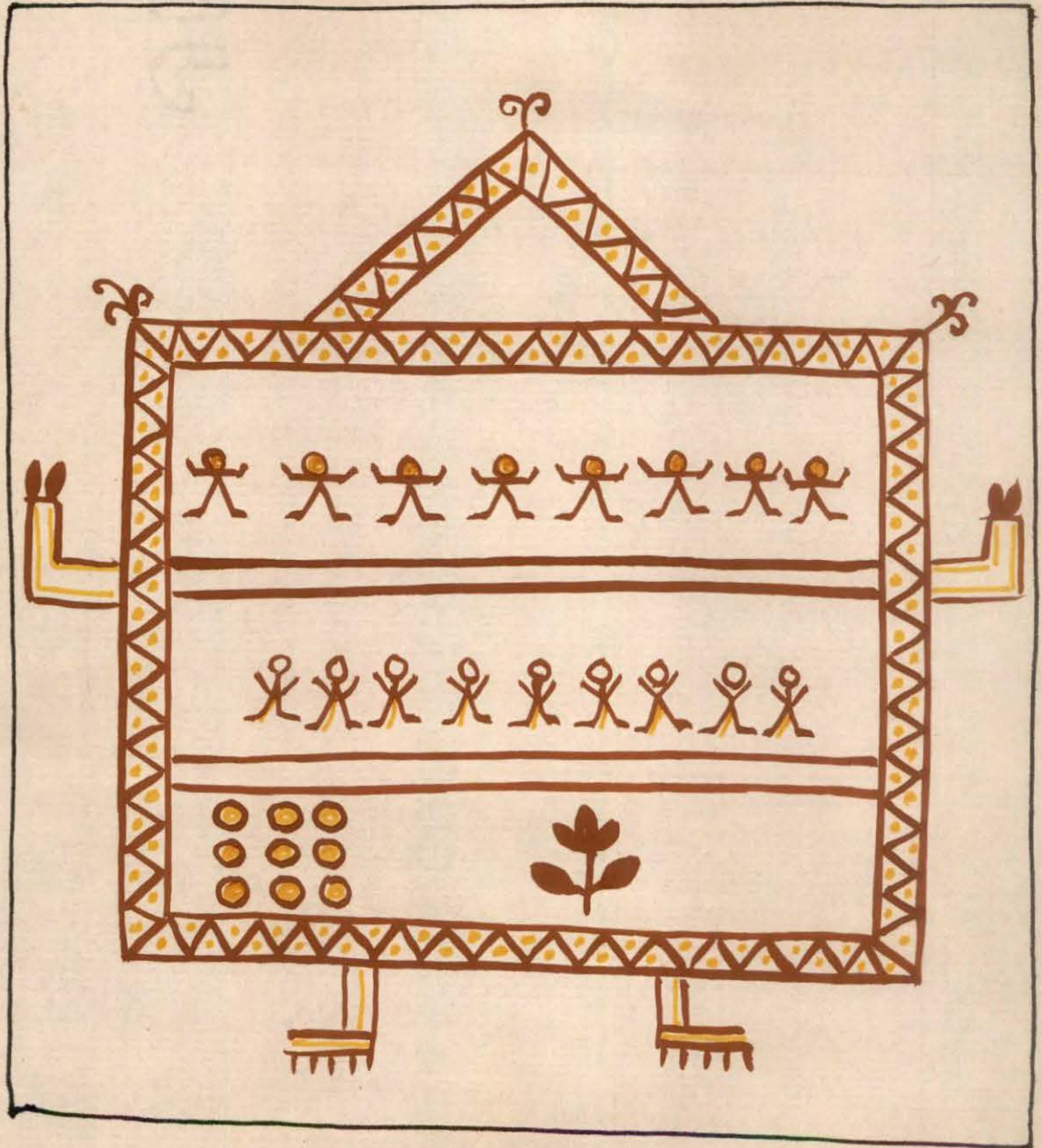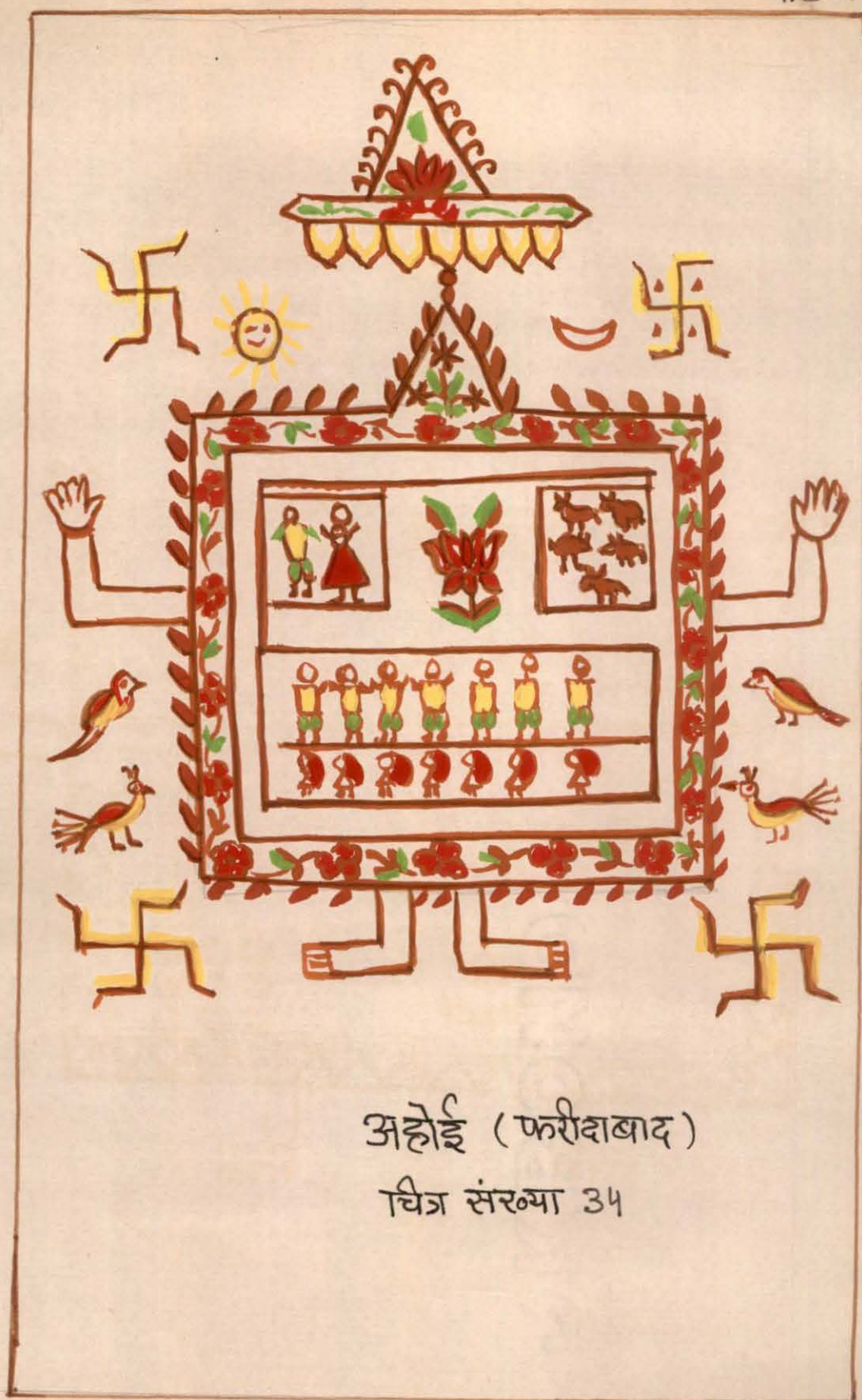
अहोई (डाबड़ा)

चित्र संख्या 33

अहोई (फरीदाबाद)

चित्र संख्या 35

अहोई (शामगढ़)

चित्र संख्या 35

अहोई (कुरुक्षेत्र)
चित्र संख्या 36

पेट में सात पुरुष व सात स्त्रियाँ, चाँद सूरज, घर, चोपड़, कलम दवात तथा नीचे गाय व गाय का बच्चा बनाया जाता है । गोबर से लीपकर गेरु से तथा और रंग लगा कर बनाया जाता है । फलक / चित्र नं० 37/38

करनाल के कश्यप परिवार में चावल से लीप कर गेरु से होई की आकृति बनाई जाती है । सात लड़के - बहुएँ, सूरज - चाँद, सीढ़ी, चोपड़, घर में स्त्री - पुरुष, बच्चा व रई बनाई जाती है । ऊपर होई माता का सुन्दर मुख तथा दोनों हाथों में फूल लिये बनायी जाती है । चित्र नं० / फलक नं० - 38/39

होई किशनपुरा लुहार मिस्त्री परिवार में होई की साधारण आकृति बनाई जाती है । मुँह हाथ पैर व पेट में छ आकृतियाँ बनाई जाती हैं । जिन्हें सफेद पृष्ठ भूमि पर गेरु से बनाया जाता है । चित्र नं०/ फलक नं० 39/40

कुरुक्षेत्र रतगल गाँव में होई को चकरी भी कहते हैं । रंग बिरंगी सुन्दर आकृति बनाई जाती है । घर के बीच में आकृति दोनों ओर मानव आकृतियाँ बनाई जाती हैं । चारों ओर बेल बनाकर सजाया जाता है । दीवार साफ करके मिट्टी तथा चावल का आटा फेरा जाता है । फिर गेरु व अन्य रंगों से चकरी बनाई जाती है । 2 कुंजियों में 2 लड्डू - हलवा डाल कर ढक्कन लगाये जाते हैं । थाली में रोटी, चावल, गुड़ - सूट का कपड़ा आदि सास ननद को देते हैं । शाम को बच्चे चाँदी की हसली - पहनते हैं। 5 साल का बच्चा हो जाने पर चाँदी के मोती अथवा बड़ा का पोते की हसली बनती है । बड़े लोगों को कपड़े, रुपये, चावल देते हैं । चकरी के घड़े के पानी से बच्चों को नहलाते हैं । चित्र नं०/ फलक नं० - 40/41

कुरुक्षेत्र (शामगढ) की अहोई में तीन आकृतियाँ बनाई जाती हैं ।

अहोई (मदपुरी)
चित्र संख्या 37

फलक 39

होई (करनाल)

चित्र संख्या 38

'चकरी' ढोई (रतगल)
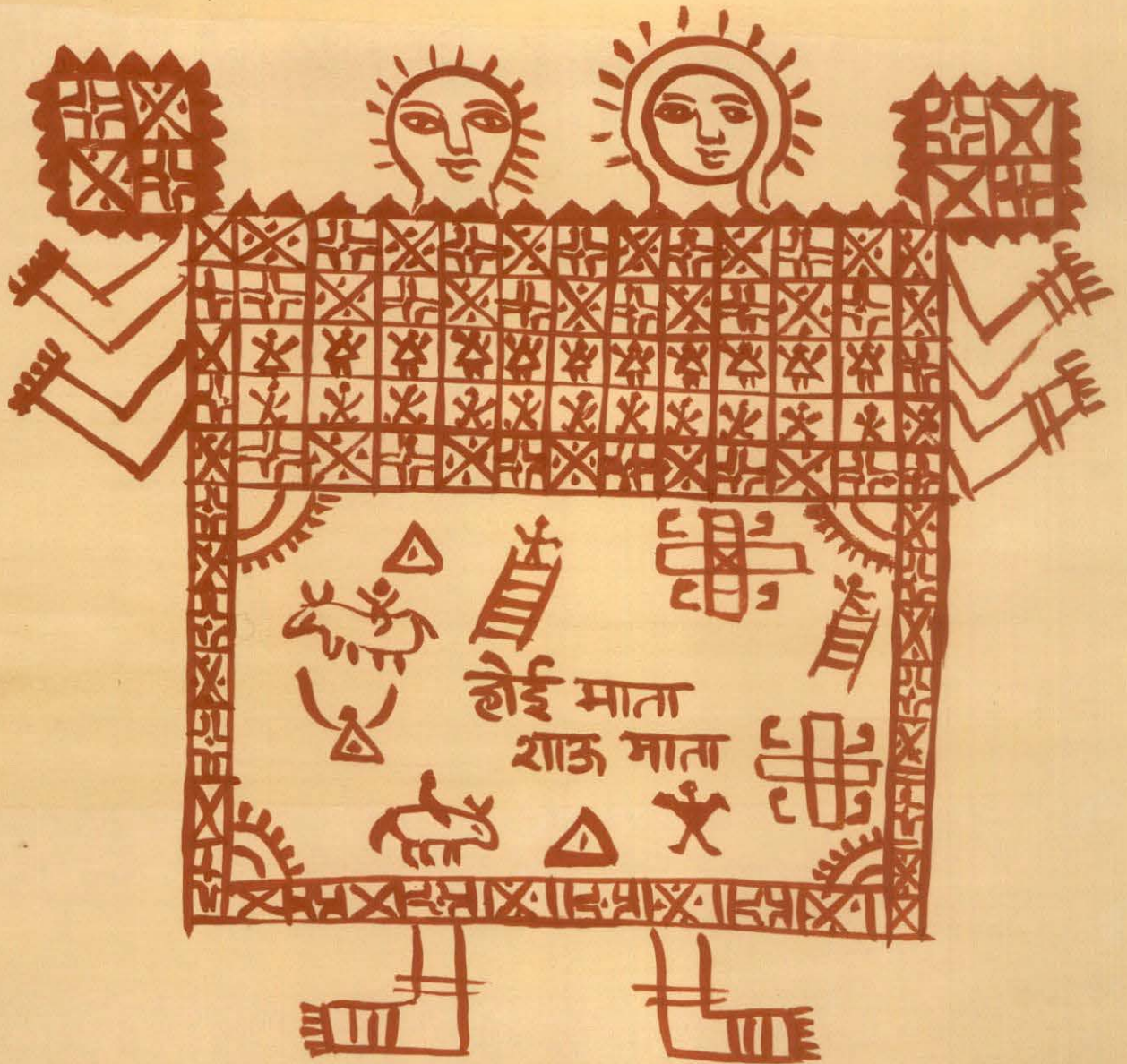
चित्र संख्या 50

चाँद - सूरज और दो कोनों में डिजाइन बनाये जाते हैं । मिट्टी से पृष्ठ भूमि पोत कर गेरु खड़िया तथा गेरु रंग से चित्र अंकित किया जाता है । फलक नं० 41/42

अम्बाला में ब्राह्मण परिवार में अहोई सात लड़के, सात बहुयें, मानवाकृतियाँ तथा ' जीवन एक चक्र ' के गोल गोल चिन्ह बनाये जाते हैं । मुँह हाथ - पैर तथा चारों ओर बेल बनाई जाती है । चित्र नं० - 42 फलक नं० - 42/43

फरल गाँव में बनिया परिवार से होई का रूप बहुत आसान सा बनाया जाता है । होई माता बना कर अन्दर एक घर में दो आकृतियाँ- सूरज - चाँद व स्वास्तिक बनाया जाता है । सफेद पृष्ठ भूमि पर गेरु से चित्र अंकित करते हैं । चित्र नं० 43 फलक नं० - 44

पूण्डरी में होई में सीढ़ी पर चढ़कर अर्घ्य देती स्त्री, चौपड़, चाँद, सिंघाड़ा, तीन डोलों में 3 आकृतियाँ आदि बनाये जाते हैं । किनारे में चित्रकारी की जाती है । लड़कों के नाम लिखे जाते हैं । गेरु से चित्र बनाया जाता है/ चित्र- 44/45 । कैथल में अहोई का साधारण रूप देखा गया । सूरज, चाँद, गऊ माता, होई की आकृति 7 लड़के लड़कियाँ, तथा सात खिलौने अर्क देती स्त्री, गेरु से दीवार पर बनाते हैं । चित्र नं० 44(2) फलक 45

डाबड़ा हरिजन परिवार में चौकोर आकृति के बीच आदमी औरतें तथा बैल पर बैठा आदमी बनाया जाता है तथा दो आकृतियों के बीच वृत बनाकर उसमें एक बीच में सिन्दूर से बिन्दी तथा चार कलस से बिंदिये लगाई जाती हैं । चित्र - 45(अ)/47

रोहतक व जींद में भी होई के सुन्दर रूप हैं। चित्र 45(2) एवं 45(3)(ब)/ 48, 49

सिरसा के दो अहोई चित्र नं० 45 (स)/50, 51

अहोई (शामगढ़)
चित्र संख्या 51

होई (अम्बाला)

चित्र संख्या ५२

होई (फरल)
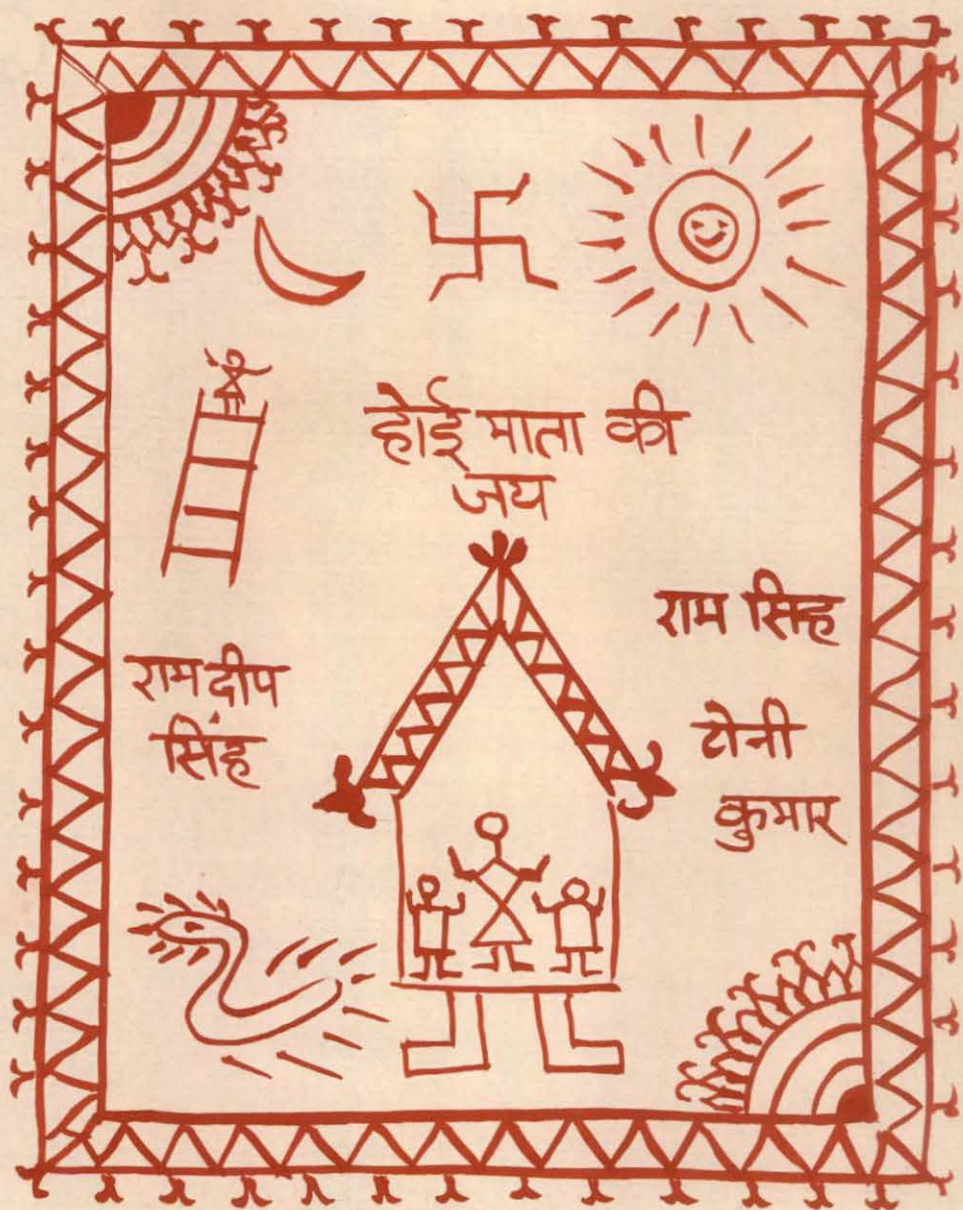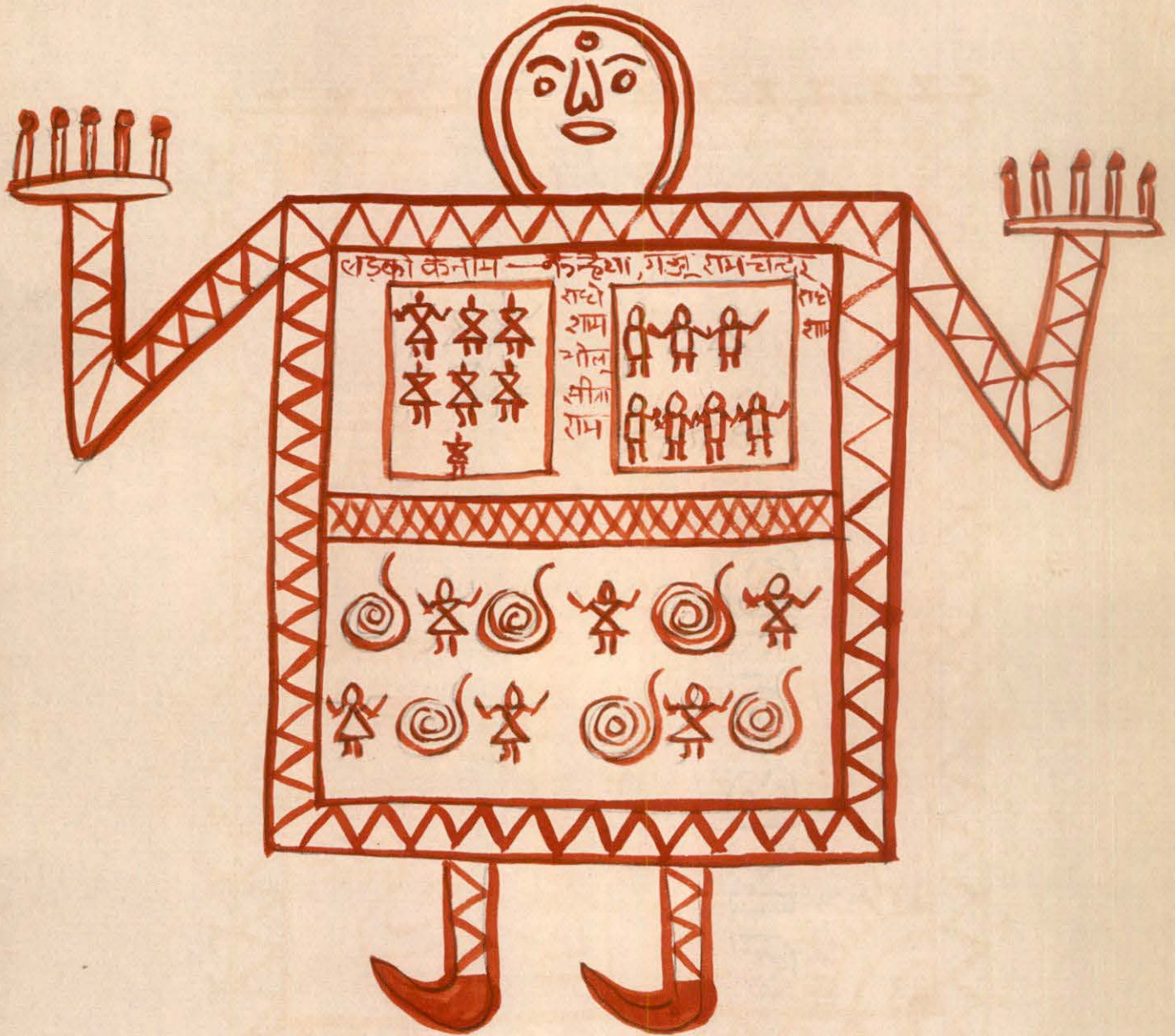
चित्र संख्या ५३

अहोई (पुत्री)

चित्र संख्या 45

जय होई माता
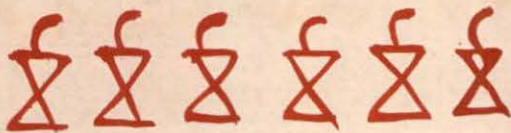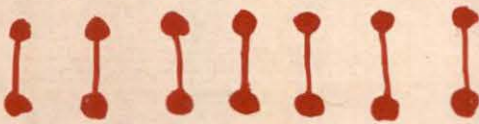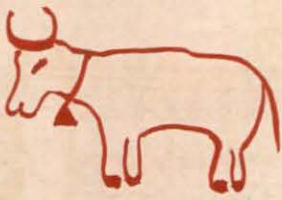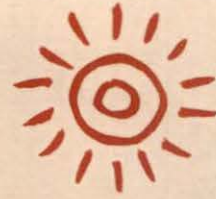
अहोई (कैथल)

चित्र संख्या ५५ (२)

होई (डाबड़ा)

चित्र संख्या 45 (अ)

अहोई (रोहतक)
चित्र संख्या ५५(ब)।

होई (जींद)

चित्र संख्या ५८(ब)२

अहोई

सिरसा

चित्र न० 45(स) 1
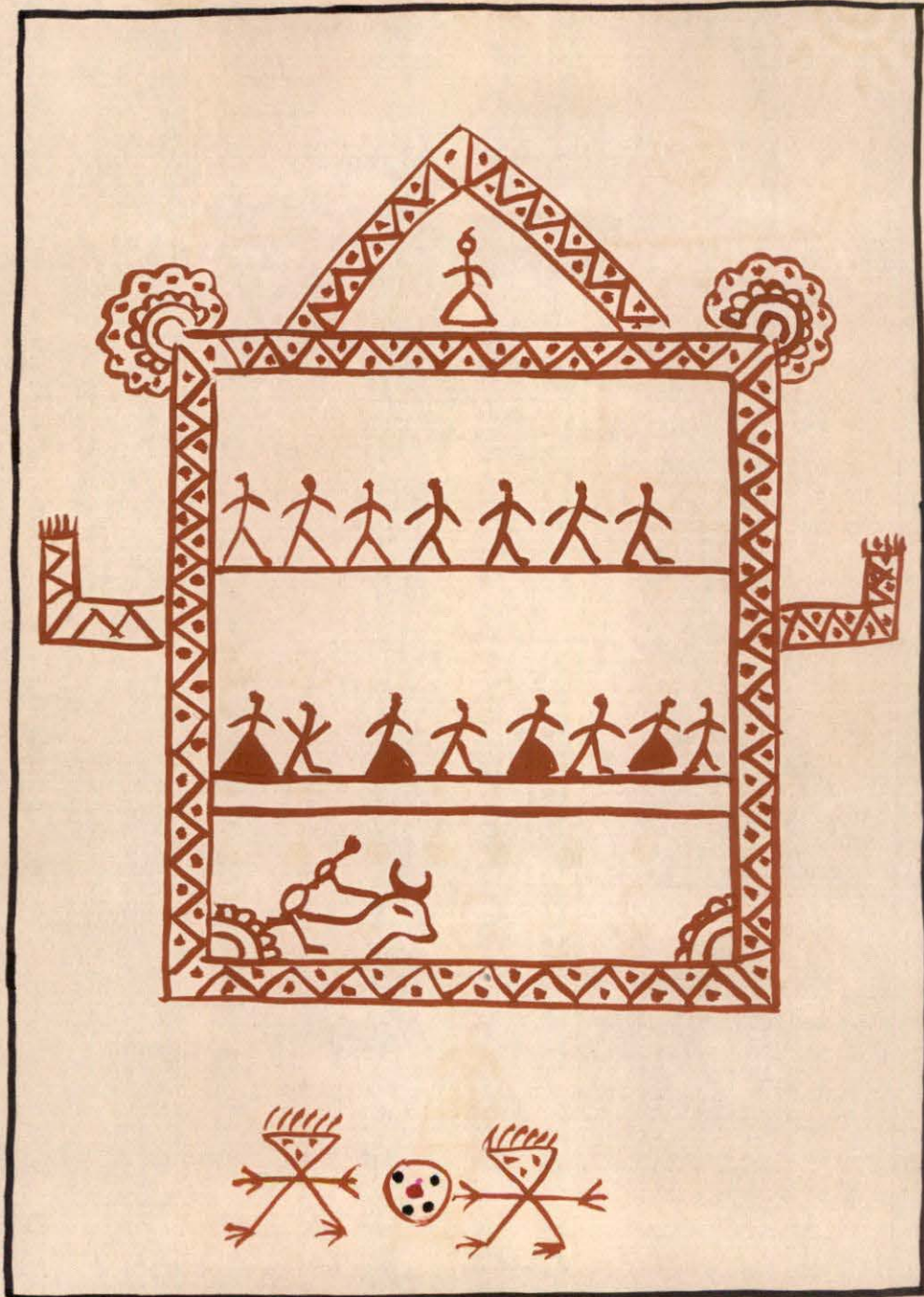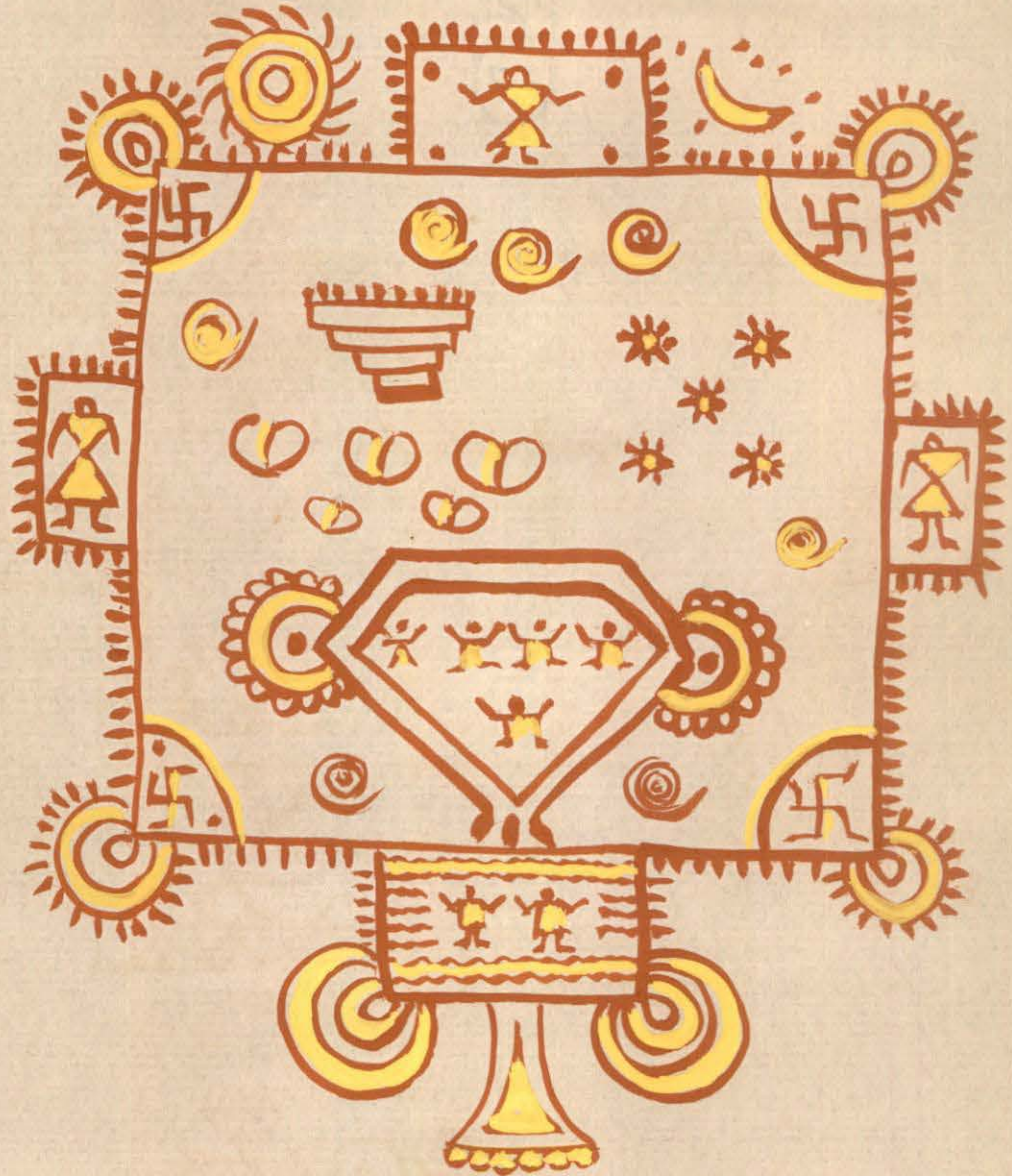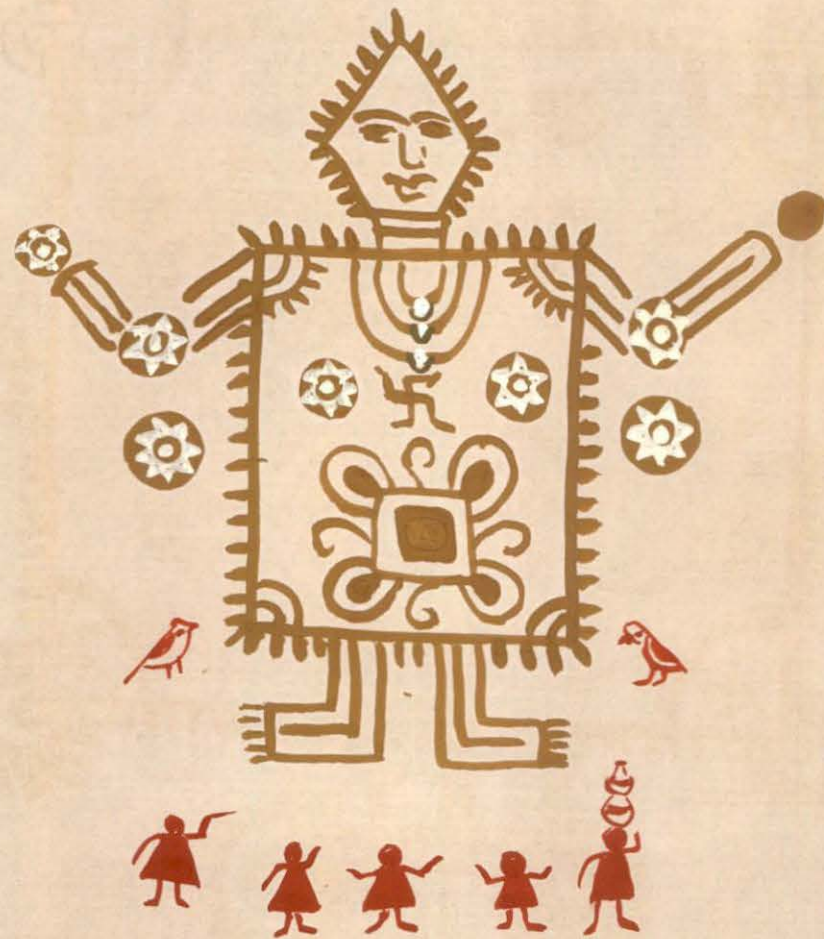
दीवाली :-

कार्तिक मास की अमावस्या के दिन दीपमालिका, दीपावली अथवा दीवाली का पर्व बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसकी व्यापकता और प्राचीनता का परिचय होमर[1] की इलियड और ओडसी महाकाव्यों में मिलता है। इसमें भी दीपक के त्योहार का वर्णन बहुत स्थानों पर आया है। अंग्रेजी शब्द ' लेम्प ' ग्रीक शब्द ' लेम्पस ' से बना है जिसका अर्थ टॉर्च है।

चौथी शती ई० पू० में दीपक मिट्टी अथवा धातु के होते थे। होमर के समय लेम्पस मन्दिरों व गिरजाघरों में प्रयुक्त होते थे। मिट्टी के लेम्प अथवा दीपक मेसोपोटामियाँ की पृथ्वी में दबे हुये शहरों के खंडहरों में मिले हैं। दीवाली हिन्दुओं के चार प्रमुख त्योहारों में से एक है जो वैश्यों का प्रधान त्योहार माना जाता है। अब इसे सब ही जातियों के लोग बड़े उत्साह से मनाते हैं। दीवाली का पर्व पाँच त्योहारों की श्रृंखला से जुड़ा है - धनतेरस, छोटी दीवाली (गिरडी), बड़ी दीवाली, गोबरधन तथा भैया दूज। यह धार्मिक तथा लोक प्रसिद्ध त्योहार है। यह पर्व निम्नलिखित कारणों से सम्बद्ध है।

यह लक्ष्मी पूजन का पर्व है। इस दिन के लिये मान्यता है कि कार्तिक की अमावस्या की रात्री में लक्ष्मी जी विचरण करती है। अपने योग्य स्वच्छ और शुद्ध स्थान पाकर वहीं पर बस जाती हैं। अतः इस दिन से पूर्व लोग घरों की खूब सफाई, पुताई, रंग - रोगन आदि करवाना शुरु कर

1- ए सी ई चौधरी - द फेस्टिवल आफ लेम्पस इन ईस्ट एण्ड वेस्ट। दि हिन्दुस्तान टाइम्स - अक्टूबर 9, 1960

देते हैं । लक्ष्मी के निवास योग्य स्थान बनाने की पूरी कोशिश करते हैं । मार्ग दर्शन स्वच्छता तथा घर की शोभा को बढ़ाने के लिए सारे घर को छोटे छोटे दीपों से प्रकाशित किया जाता है । मान्यता है कि लक्ष्मी जी अन्धेरे और गन्दे घर में कभी प्रवेश नहीं करतीं । घर की शुद्धता के साथ - साथ अन्तःकरण की शुद्धता पर भी ध्यान देना चाहिए । तब ही घर लक्ष्मी का वास स्थान बन सकता है । पुराणों में लक्ष्मी जी का संदेश इस प्रकार दिया गया है -

> वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्माणि वर्तमाने ।
> अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्य मुदीर्णसत्त्वे ।।
> स्वधर्मशीलेषु च धर्मवित्सु वृद्धोप सेवा निरते च दान्ते ।
> कृतात्मनि क्षान्तिपरे समर्थे क्षान्तासु दान्तासु तथा बलासु
> वासामि नारीषु पतिव्रतासु कल्याणशीलासु विभूषितासु।"[1]

अर्थात लक्ष्मी जी कहती हैं कि मैं शीलवान, सच्चरित्र, आलस्यहीन, कर्तव्य तत्पर लोगों के घर में वास करती हूँ । जो क्रोधी नहीं होते, देवताओं को भक्ति भाव से पूजते हैं और जितेन्द्रिय होते हैं, धर्माचरण एवं कर्तव्यशील होते हैं । गुरुजनों का सम्मान करने वाले, आत्म विश्वासी एवं क्षमाशील होते हैं, उनके घर में वास करती हूं । सौभाग्यवती, पतिव्रता, गुणवती स्त्रियों के घर में वास करती हूं । अकर्मण्य , आलसी, कृतघ्न, विश्वासघाती, ईर्ष्यालु, क्रूर व निर्दयी लोगों के घर में वास नहीं करती । दीवाली का पर्व इसलिये भी व्यापक रूप धारण कर लेता है कि धन की आवश्यकता

1- इन्दु प्रकाश पाण्डे - अवधी व्रत कथायें - पृ 163

केवल बनियों की ही न रह कर सबकी होती है।

दीवाली का सम्बन्ध कई ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं से माना जाता है। इस दिन विष्णु भगवान बलि के बन्दीगृह से सब देवताओं तथा लक्ष्मी को छुड़ा कर लाये थे। इस दिन राजा बलि की पूजा का भी विधान है। इन्होंने अपनी कठोर तपस्या के बल पर तीनों लोकों को जीत लिया था। अश्वमेध यज्ञ करके दान देना शुरू किया तो उनकी कीर्ति इतनी बढ़ी कि इन्द्र को इन्द्रासन का भय होने लगा। तब इन्द्र ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की तब विष्णु ने वामन रूप धारण करके बलि से तीन पग भूमि की याचना की। दान लेने के बाद विष्णु ने अपना विराट रूप धारण करके एक पद से भू मण्डल और दूसरे से स्वर्ग को नाप लिया। तीसरे पद के लिये बलि ने अपना सिर सामने कर दिया। इस प्रकार छल से भगवान विष्णु ने राजा बलि को पातालपुरी भेज दिया था[2]। पातालपुरी भेजने से देवताओं ने जो हर्षोल्लास मनाया था, उसी स्मृति में दीपावली मनाई जाती है।[3]

उज्जैन के सम्राट विक्रमादित्य का आज के दिन राजतिलक हुआ था। तब ही से विक्रमी सम्वत का प्रारम्भ हुआ माना जाता है। अतः यह नव वर्ष का प्रथम दिन है। विशेष रूप से वैश्य लोग आज ही अपने बही खाते बदलते तथा पुराने वर्ष का हिसाब पूरा करते हैं।[4]

रामचरित मानस के अनुसार इस दिन रामचन्द्र अपने भाई व पत्नी सीता के साथ चौदह वर्ष के बनवास के बाद अपनी नगरी अयोध्या लौटे

---

1 आशुतोष - बारह महिनों के व्रत त्यौहार पृ० 117

2- नव भारत टाइम्स - दीपावली अंक - 31 अक्टूबर, पृ 19

3- वही

4- स्वयं सर्वेक्षण के आधार पर 14.11.83

थी । इनके आगमन की प्रसन्नता में अयोध्यावासियों ने दीपकों से अयोध्या नगरी को दुल्हिन की तरह सजाया था । तभी से यह दिन दीपावली त्योहार के नाम से मनाया जाता है ।

दीवाली के मूल रूप का अनुसंधान करने पर पता चला है कि पुरातन काल में ' यक्ष पूजा ' का उत्सव होता था । पुराण में उस यक्षराज कुबेर का पूजन करने का विधान है । वात्स्यायन के ' काम सूत्र ' में ' यक्षरात्रि ' का उल्लेख किया गया है । उसमें दीप जलाने तथा द्यूत क्रीड़ा (जुआ खेलने) का भी वर्णन है । इससे जान पड़ता है कि ' यक्षरात्रि' दीवाली का ही आरम्भिक नाम है । 11 वीं शताब्दी में हेमचन्द्र कृत '' देशी नाम माला '' में '' जक्ख रत्ती '' (यक्ष रात्रि) को दीपावली का भी नाम बताया गया है । 12 वीं शताब्दी में पुरुषोत्तम देवी कृत '' त्रिकाण्ड शेष'' में यक्षरात्रि का अर्थ दीपावली ही किया गया है । यक्ष सम्प्रदाय की अवनति होने पर ' यक्ष रात्रि ' का सम्बन्ध यक्षों के गुणों वाले दैवी देवताओं से जोड़ दिया गया है ।[2] फलतः यह उत्सव कालान्तर में धन की देवी अधिष्ठात्री विष्णु प्रिय लक्ष्मी से सम्बद्ध हो गया । यक्षराज कुबेर को धन का देवता माना जाता है । लक्ष्मी के अति - रिक्त विद्या, बुद्धि की देवी सरस्वती और गणेश का पूजन भी दीवाली के उत्सव पर किया जाता है ।[3]

1- नव भारत टाइम्स - दीपावली अंक - 31 अक्टूबर, पृ 19
2- सम्मेलन पत्रिका का लोक संस्कृति अंक-प्रभूदयाल मित्तल, पृ 305
3- एस पी आनन्द - अवध की लोक चित्रकला(अप्रकाशित शोध प्र)पृ 209

दीवाली का पर्व भाग्य पर्व मानकर इस त्योहार में रात को लोग कई प्रकार के मनोरंजक रूप में जुआ खेलते हैं।

पुराणों में उल्लेख है कि कालरात्रि (दीपावली) महारात्रि तथा शिवरात्रि को भगवान की कथाओं का श्रवण, ध्यान, कीर्तन, भजन करते हुये पूर्ण इन्द्रिय निग्रह करते हुये रात्रि जागरण का विशेष महत्व है। इस प्रकार इन रात्रियों को जागकर व्यतीत करने वाले निश्चित रूप से यमपाश से मुक्त हो जाते हैं। अनेकों तांत्रिक मंत्र तन्त्र दीपावली की रात में सिद्ध किये जाते हैं। कार्तिक मास की दीपावली की आमावास्या मोक्षदायिनी तथा सब प्रकार से सिद्धदायिनी है।[1]

एक अन्य मान्यता यह भी है कि इसी दिन समुद्र मन्थन से लक्ष्मी भी प्रकट हुयीं थीं तथा विष्णु भगवान का पति के रूप में वरण किया था।[2]

ऐसा उल्लेख भी है कि इसी दिन आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती का निर्वाण हुआ था।[3]

अमावास्या को अन्य प्रदेशों में दीवाली का मुख्य दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है परन्तु हरियाणा प्रदेश में इसे ' गिरड़ी ' का दिवस भी कहा जाता है। इस दिन पशुओं को सजाया जाता है, उन्हें

1- आशुतोष शुक्ल - बारह महीनों के व्रत और त्योहार पृ 167
2- - वही - पृ० - 170
3- - वही - पृ० - 170

' जतनी ' पटियाँ और गांडली बाँधी जाती है । पीठ पर गेरु के चिह्न लगाये जाते हैं । सींगों को भी रंगा जाता है ।

गिरडी वाले दिन को दीपमाला सजाई जाती है । युवक मण्डलियाँ ' होड़ा ' में बिनौले तथा तेल डलवाकर घर घर तेल डलवाने जाते हैं । लड़कियाँ भी दमड़ी लिये अपने मोहल्लों में घूम घूमकर माँगती हैं । सारा गाँव दीपकों से जगमगा उठता है, लोग गली - गलीमें फिर कर यह शोभा निहारते हैं । [1]

इस दिन सभी देवी - देवताओं के स्थानों - पीपल के पेड़ के निकट, तुलसी के पौधे के पास, चौराहे पर, पशुओं की नाद पर, कुँये की मुंडेर पर और घर की मोरी के पास दीपक जलाये जाते हैं । देवी देवताओं के स्थानों पर दीपक जलाने से पहले घर के सभी व्यक्ति दीपकों को कांसे की थाली में रखकर पूजन करते हैं । [2]

पूजा की विधि :-

घर को साफ - सुथरा कर पूजा स्थान को विशेष प्रकार से लीप पोत कर दीवाली बनाई जाती है । दीवाली के नीचे तथा सारे घर में पूरत (चौक) पूरा जाता है । पूजा की तैयारी शाम से की जाती है । हटड़ी व अन्य मिट्टी के खेल खिलौने भी पूजा के स्थान पर सजाये जाते हैं । दीपक जला कर कांसे की थालीमें रक्खे जाते हैं । घर का बड़ा बूढ़ा चाँदी या सोने का सिक्का दीपकों के मध्य उसी कांसे की थाली में रखकर

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर - किशनपुरा - 28-9-83

2- - वही -

दीपकों पर खीलें बिखेरता है । और बाद में देवी देवताओं के स्थानों पर रखा जाता है । पिछली के दिन लाया गया नया बरतन भी पूजा के स्थान पर रखकर उसकी पूजा की जाती है । लक्ष्मी पूजन कहीं कहीं सारी रात किया जाता है । या एक बड़ा दीपक लक्ष्मी के आगे सारी रात जलाया जाता है तथा इसमें काजल पारा जाता है । सुबह उसे अपनी आखों में लगाना शुभ माना जाता है ।

पूजा में खील - खिलौने, मिठाइयाँ तरह तरह के पकवान बनाये जाते हैं । बच्चे बड़े पटाखे छोड़ते हैं । इस दिन नये कपड़े पहनने का भी विधान है । कुछ स्थानों पर दीपावली की रात में आकाश दीप जलाते हैं । ऐसी मान्यता है कि दीपावली की अमावस्या से पितरों की रात शुरु होती है ।[1] अतः उनके मार्ग दर्शन के लिये ऊँचे ऊँचे बासों पर आकाशदीप जलाकर प्रकाश किया जाता है ।[2]

चित्र रचना विधि :-

इस दिन प्रातः काल ही घर को धोकर साफ किया जाता है । हरियाणा में दीवाली का चित्र दीवार पर या कभी कभी कागज पर चित्र बनाकर दीवार पर चिपका दिया जाता है । आजकल बाजार में चित्र बना बनाया मिलता है । उसमें सुन्दर सुन्दर रंग भर कर आटे से चित्र दीवार पर लगाया जाता है । चित्र भूमि से करीब डेढ़ या 2 फुट ऊँचाई पर बनाया जाता है । चित्र रचना के लिये गेरु, खड़िया, गीले रंग, दियों में घोलकर तैयार कर लिये जाते हैं । आकृतियों के रेखांकन के लिये सीख में रुई लपेट

1- एस पी आनंद अवध की लोकचित्रकला (अप्रकाशित शोध ग्रंथ) पृ210

2- सर्वेक्षण में पाया - प्रत्येक घर के बाहर 'कण्डील' लगाई जाती है।

17-10-84

का कुश बना लिया जाता है । लक्ष्मी गणेश का चित्र, दीपक, पेड़, फूल पत्ते, स्त्री - पुरुष की आकृतियाँ, पशु - पक्षी, पटाखे, मोमबत्ती, पूजा करती स्त्रियाँ - तुलसी का पौधा, चौपड व बहीखाते तथा सूरज चाँद बनाये जाते हैं । चित्र बनाने का काम प्रायः घर की लडकियाँ ही करती हैं ।

यहाँ हरियाणा में अलग अलग स्थान पर अलग अलग ढंग में दीवाली बनाई जाती है ।

अम्बाला में ब्राह्मण परिवार में दीवाली में लक्ष्मी , आदमी - औरतें, दिये, पशु - पक्षी, फूल पत्ते आदि पहले दीवार के गोबर से पोत कर फिर चावल के घोल से पोत कर विभिन्न रंगों से बनाई जाती हैं । चित्र नं०/ फलक नं० - 46/52

फरीदाबाद में लक्ष्मी - गणेश, चौपड़, बहीखाता, बच्चे, फुलझड़ी, पटाखे छोड़ते हुये, तुलसी का पौधा, पूजा करती स्त्रियाँ, चाँद - सूरज आदि सुन्दर सुन्दर रंग भर कर बनाये जाते हैं । चित्र नं०/ फलक नं० 47/53

करनाल में दीवार पर ही दीवाली बनाई जाती है । लक्ष्मी गणेश, दीपक, पटाखे, पूजा करती स्त्रियाँ आदि रंग - विरंगे बनाये जाते हैं । चित्र नं०/ फलक नं० 48/54

हिसार में लक्ष्मी माता का चौड़ा सा पैंट बनाया जाता है । उसमें लक्ष्मी, गणेश, हाथी आदि बनाये जाते हैं तथा लक्ष्मी के हाथ पैर बनाये जाते हैं ।   चित्र नं०/ फलक नं० - 49/55

कुरुक्षेत्र में कागज पर दीवाली लिखते हैं तथा गणेश - लक्ष्मी की मिट्टी की मूर्ति रख कर दीये जला कर पूजन किया जाता है ।

दीपावली (अम्बाला)

चित्र संख्या ५6

दीपावली (फरीदाबाद)

चित्र सख्या 57

दीपावली (करनाल)

चित्र संख्या 48

दीपावली (हिसार)
चित्र सख्या ५१

देव उठणी ग्यायस :-

जिसे हरियाणा में केवल ग्यास भी कहते हैं । कार्तिक शुक्ला एकादशी को देव जागते हैं और इस दिन देउठणी ग्यायस का त्योहार मनाया जाता है । ये दीवाली के ग्यारहवें दिन मनाया जाता है । एक किम्वदन्ती के अनुसार आषाढ़ मास की शुक्ल हरिशयनी एकादशी को भगवान विष्णु वर्षा के चार माह के लिये क्षीर सागर में जाकर शेषशैया पर जाकर शयन करते हैं । कार्तिक शुक्ल प्रबोधिनी एकादशी को उठते हैं । इस बीच में अर्थात भगवान विष्णु के शयन काल में विवाहादि जैसे मांगलिक कार्य नहीं किये जाते हैं । तुलसी पूजा की दृष्टि से आज का पर्व अत्यधिक महत्व का है । क्योंकि आज के दिन तुलसी का विवाह भगवान विष्णु से किया जाता है ।

यह बहुत प्रचलित पर्व है और इसका अपना अलग ही महत्व है । इसको कुछ देवी तथा कुछ लोग देवता मानते हैं । हिन्दुओं का विश्वास है कि इस दिन हिन्दुओं के समस्त देवी देवता अपने अपने निवास स्थान को चले जाते हैं । अतः वर्ष भर के त्योहारों को इस दिन विदा कर दिया जाता है और एकादशी ही इन सबको अपने साथ ले जाती है । क्योंकि यह त्योहारों में सबसे अन्तिम त्योहार है ।

हरियाणा में यह त्योहार अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है । क्योंकि सभी शुभ कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं । देवोत्थान एकादशी से पहले देव (विष्णु भगवान) सोते हैं । देव सोनी एकादशी से देवोत्थानी एकादशी तक कोई शुभ कार्य नहीं होते । एकादशी का व्रत रक्खा जाता है ।

पूजा विधि :- हरियाणा में महिलायें सुबह से घरों को गोबर तथा

पोली मिट्टी से लीपती हैं । और चौके के पास अथवा घर के दालान में गेरु में छोटे छोटे बच्चों के पावों के चिन्ह बनाये जाते हैं तथा जानवरों के खुरों के निशान भी अंकित किये जाते हैं । घर के द्वार के दालान में गेरु से दोनों ओर भीत पर शुभ चिन्ह अंकित किये जाते हैं । साँझ को पकवान बनाकर उन्हें परात के नीचे ढक दिया जाता है । फिर औरतें इकट्ठी होकर एक एक घर के द्वार पर पहुँच कर देव जगाती हैं । देव - जागरण का यह गीत गाया जाता है ।

उठ ॥ उठाउँ ॥
घर की नार जगाउँ ॥
छोके हाथ धलाउ ॥[1]

गाने के बाद महिलायें परात थपथपा कर उसे उठाती हैं और नीचे के पकवान उठा लेती हैं । फिर गाती हैं :-

घर के लोगों की मंगलकामना का गीत :-
ओलां कोलां घरें सें जंगेरटे,
ये बहू किशनी तेरे बेट्टे ।
ओलां कोलां धरे जंजीरे,
ये बेबे भरतो तेरे बीरे ।[2]

कहीं कहीं पर थाली बजा कर इस प्रकार कहते हैं -

उठो देवा, बैठो देवा, आंगुरिया चटकाओ देवा,

1- हरियाणा, भाषा विभाग - हरियाणा के लोक गीत पृ 15
2- - वही पृ 15

चित्र में निहित भावना :-

देवताओं के चरण व पशुओं के खुर देवता प्रगट होने के सूचक हैं। अर्थात देवताओं की उपस्थिति में कोई भी शुभ कार्य सम्पन्न करने का विधान है। जिससे कार्य सफल और शुभ माना जाता है।

कुरुक्षेत्र में रतगल गाँव में एक कोष्टक बना कर उसमें देवताओं के चित्र अंकित किये जाते हैं। दोनों ओर हाथी बनाये जाते हैं तथा ऊपर मोर बनाया जाता है। देवताओं के चरण व जानवरों के खुर अंकित किये जाते हैं। चूल्हे के पास भोजन रखते हैं। 2 दोवे कपास, 2 ढेरी जोरी - परात थोडी मुदो थोडी खुली रखते हैं। उसके अन्दर फूलो, गन्ना, सिंघाडे, पूरी, पकवान रखते हैं। परात उठाते हैं - माथा टेकते हैं तथा भोजन लडकियों को देते हैं। चित्र नं०/ फलक नं० 50/56

शामगढ़ करनाल के जाट लोगों में ग्यारस को देवी के रूप में चित्रित करते हैं जिसे परसराम की माता कहते हैं। माता की आकृति में पेट गोल बड़ा सा बनाते हैं जिसमें चौपड सी बनाकर चार आकृतियाँ बनाते हैं। नीचे देवों के चरण व पशुओं के खुर के चिन्ह बनाये जाते हैं तथा पाँच गाय के कटे बनाये जाते हैं। चित्र नं०/ फलक नं० 51/57

गाँव बामला जिला भिवानी जाट परिवार में ग्यास के चित्र में देवताओं तथा पशुओं के खुर चमार खाना बनाकर चित्रित किये जाते हैं। सफेद पृष्ठ भूमि पर गेरु से बनाये जाते हैं। चित्र नं०/फलक नं० 52/58

कुरुक्षेत्र के किशनपुर गांव में ग्यास की आकृति बनाकर पेट में एक देवता खड़ा बनाते हैं। नीचे पशुओं के चार खुर बनाये जाते हैं। चित्र नं०/ फलक नं० 53/59
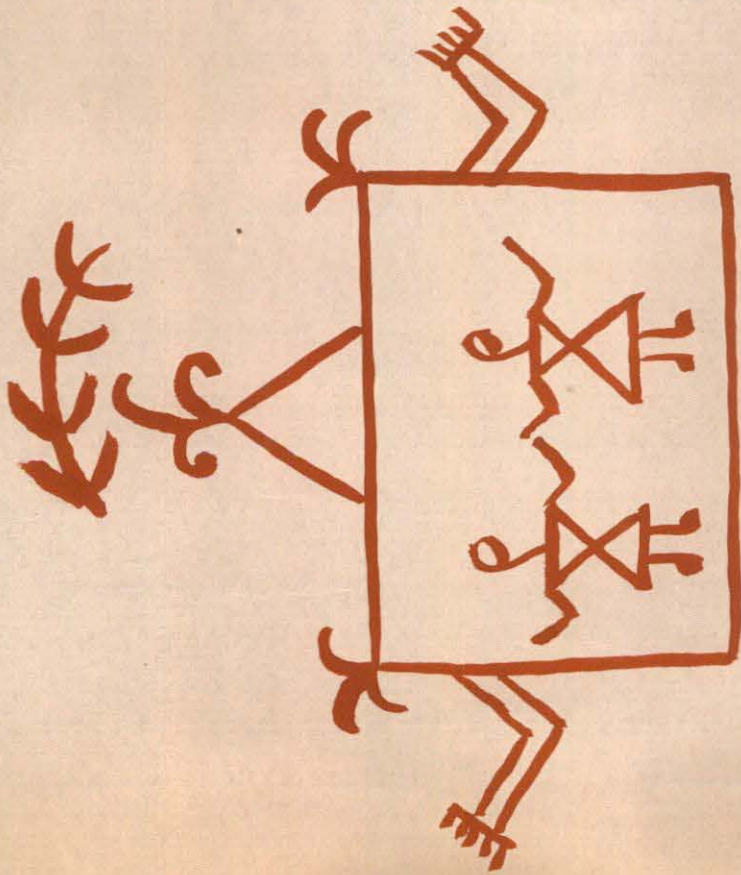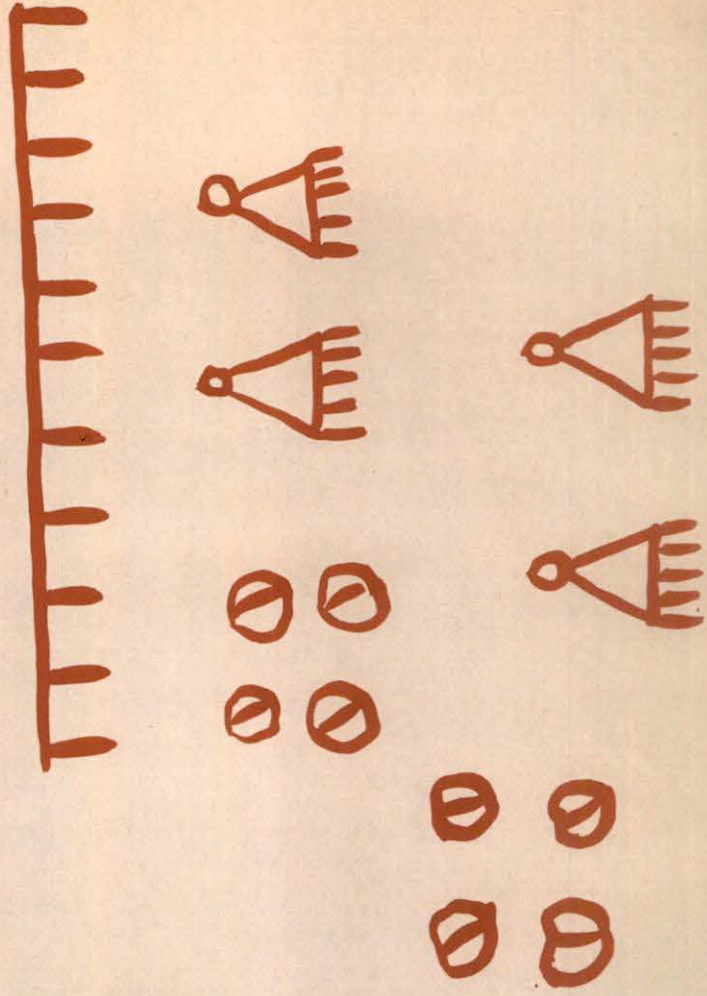
देउठणी ग्यारस (रतगल)
चित्र संख्या 50

देउठणी ग्यायस
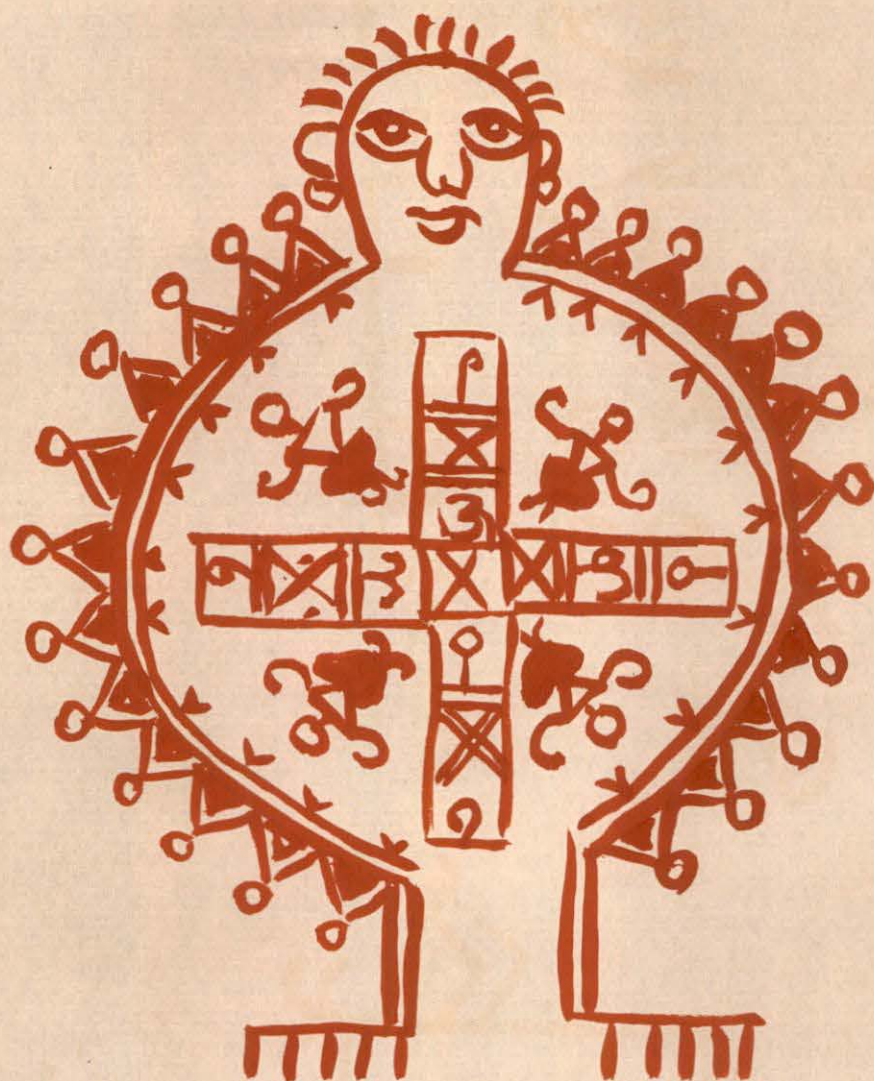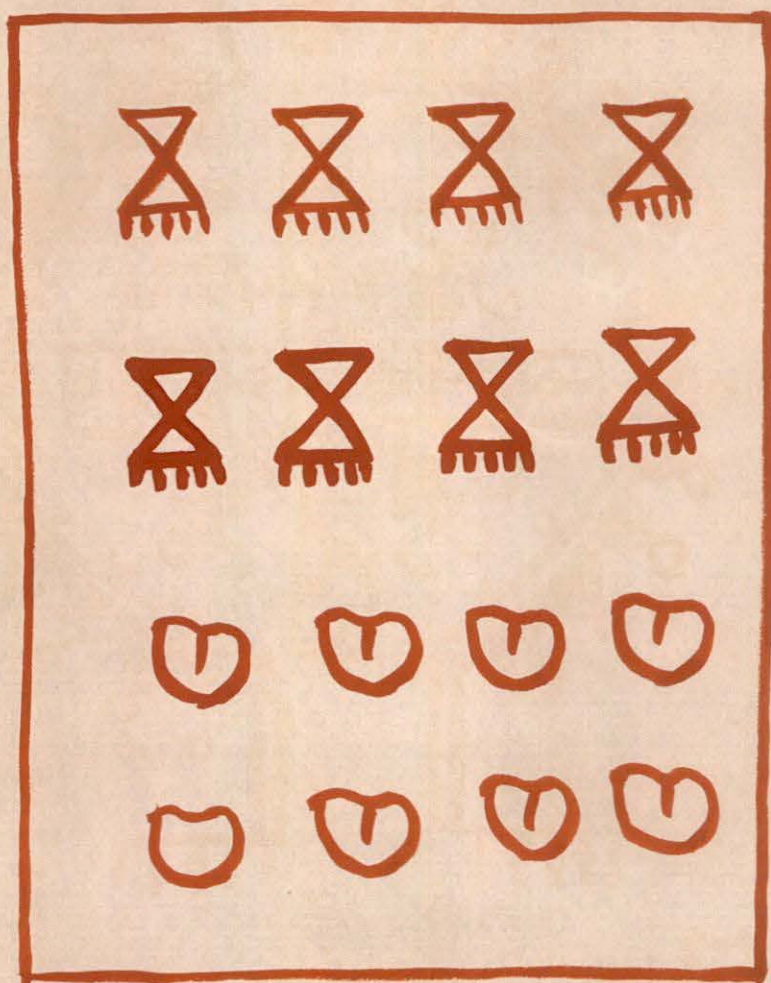
परसाराम की माता (शामगढ़)
करनाल
चित्र संख्या 51

देउठणी ग्यायस (बांमला, भिवानी)

चित्र संख्या 52

देउठणी ग्यास (किशनपुरा)
कुरुक्षेत्र
चित्र संख्या 53

फलक 59(ii)

देउठणी ग्यायस (फरल)
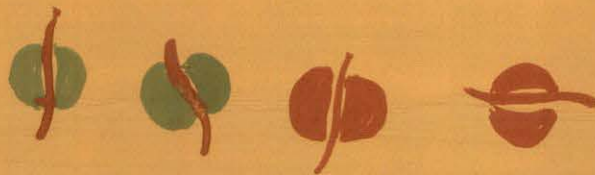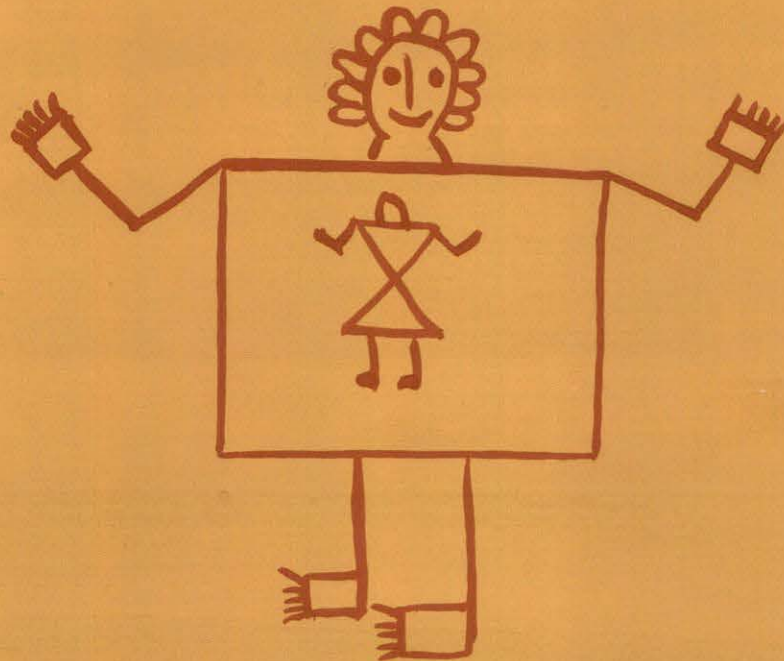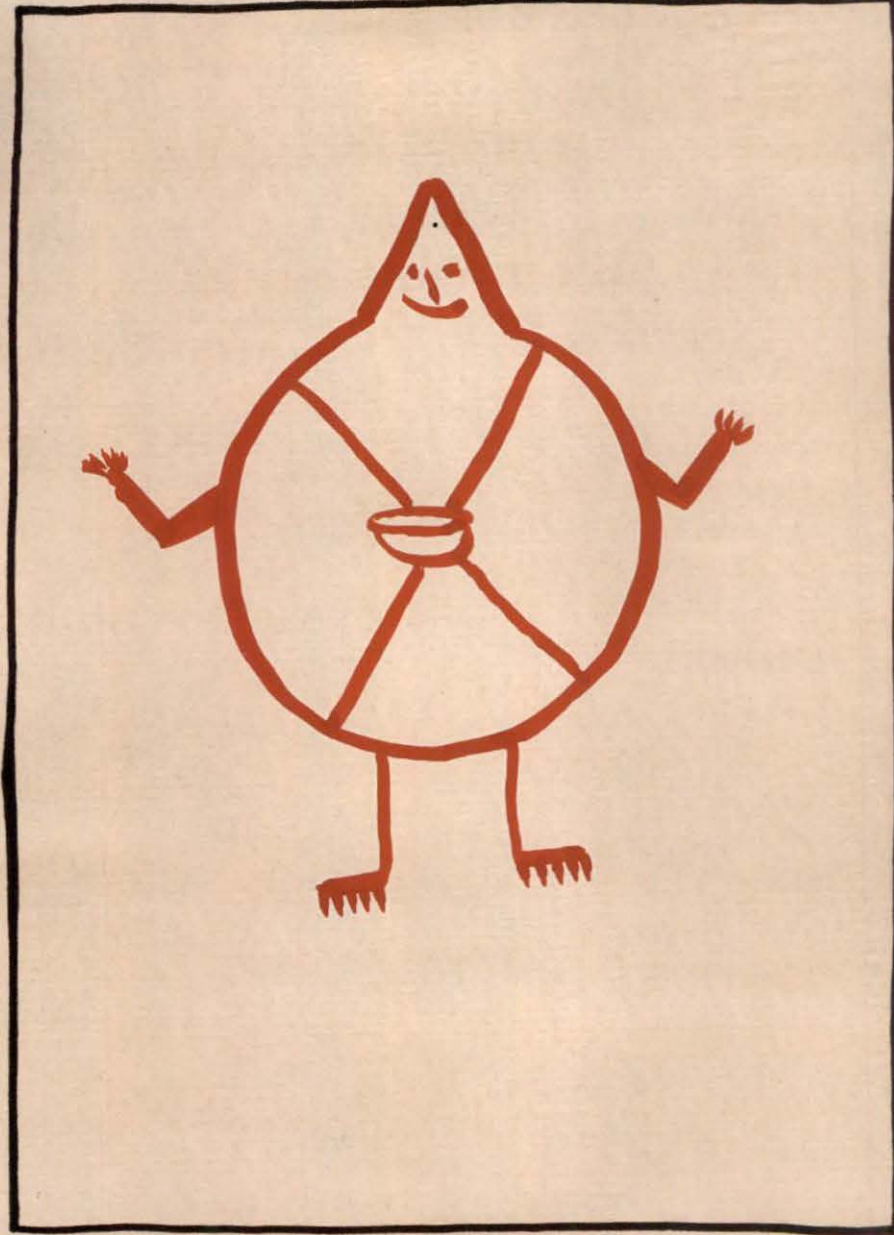
चित्र संख्या 53(ii)

नागपंचमी :-

श्रावण माह लगते ही जो पंचमी आती है, उसी को नाग पंचमी कहते हैं। इस दिन नागों के दर्शन का विशेष महात्म्य माना जाता है। यह त्योहार श्रावण शुक्ला पंचमी को होता है।

चित्र निहित अभिप्राय :-

हरियाणा में नाग पंचमी पर बनने वाले कुछ चित्रों में नागों को लहराते हुये दिखाया जाता है। टेढ़े - मेढ़े नागों की रचना का यह आशय हो सकता है कि नाग वर्षा ऋतु में पाताल लोक से मनुष्य लोक में आ रहे हैं। नागों को देवता तथा मृत्यु का प्रतीक माना गया है। मृत्यु के देवता भगवान शंकर के शरीर में भी सर्प लिपटे रहते हैं। इसका आशय यह है कि मृत्यु भगवान शंकर की चेरी है। शंकर महायोगी राजा है और नाग उनके आभूषण हैं। मृत्यु से सदैव ही रक्षा करनी चाहिये। अतः नागों की पूजा का विधान है।

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा सर्प प्रतीक और उसकी उपासना पर लिखते हैं कि सम्पूर्ण भूखण्ड को भगवान शेषनाग अपने सिर पर उठाये हैं। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि शरीर के भीतर स्थित इंगला - पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों की कुण्डलिनी के प्रतीक सर्प में यह सम्पूर्ण लोक व्याप्त है। श्रीकृष्ण ने यमुना में कूद कर कालि सर्प को वश में किया था।

1- डा० चिरंजी लाल झा - शोध प्रबन्ध - ब्रज में लोक चित्रकला - निबन्ध लोक साहित्य पृ - 166-67

अर्थ है योगीराज कृष्ण ने कुण्डलियों को वश में करके परम योगी की सिद्धि प्राप्त की थी । नाग पंचमी का पूजन काल स्वरूप सर्प का भी पूजन है । तथा मनुष्य को उसके शरीर की रचना तथा उस रचना की माँग की याद भी दिलाता है ।[1]

यह त्योहार प्राचीन नाग पूजा की परम्परा से प्रचलित हुआ है।[2] बौद्धों के समय नाग को प्रकृति देवी की शक्ति का स्वरूप कहा गया है । यह धर्म का भी प्रतीक है ।

कहीं कहीं दो नागों की अभिव्यक्ति भी की गई है । ये इड़ा, पिंगला नाड़ियों अथवा पुरूष और प्रकृति के स्वरूप कहे जाते हैं । कहीं कहीं तीन नाग भी चित्रित किये गये हैं । ये नाग ज्ञान शक्ति, क्रिया शक्ति व इच्छा शक्ति के प्रतीक हैं ।[3]

पंचमी के त्योहार के कारण पांच नाग चित्रित किये जाते हैं । पाँच नागों की रचना का उद्देश्य पांच तत्वों - पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश की साकार अभिव्यक्ति करना तथा इच्छा, क्रिया, ज्ञान, चित्त और आनन्द के बोधक हो सकते हैं ।

सात नागों की अभिव्यक्ति का आशय सात विकारों - राग-द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर के चित्र के द्वारा स्पष्ट करना हो सकता है । नाग वासनाओं का स्वरूप भी कहा गया है ।

1- परिपूर्णानन्द वर्मा, प्रतीक शास्त्र पृ 216

2- प्रभूदयाल मित्तल - ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास पृ 789

3- तंत्र लोक - द्वितीय भाग - पृ 78

वासनायें अमूर्त रूप में मनुष्य को डसती हैं जब कि नाग मूर्त रूप में आता है।[1]

नाग पूजा के मूल में केवल डर की भावना का होना है। संकट से बचने में असमर्थ होने के कारण पूजा भाव जगता है। यह पर्व नागों से अभय प्राप्त करने की याचना का पर्व है। नागों की पूजा करने के कारण, श्रावण मास में नाग मारना मना है। नाग पंचमी के दिन धरती नहीं खोदी जाती। प्रत्येक लोक कला में तन्त्र का मूल भाव अवश्य रहता है। कुछ विद्वान कहते हैं कि ये निरर्थक नहीं बनाये जाते। आदिम मनुष्यों द्वारा चित्रित चित्र टोटके थे। इसको टोनों का रूप कहा गया है। नाग पंचमी के नागों का भी यही उद्देश्य हो सकता है। नाग चित्रों को इसलिए भी बनाया जाता है कि नाग प्रसन्न रहे, काटे न और समृद्धि लाये।

नाग कभी बदला लेने में नहीं चूकता। बारह वर्ष बाद भी बदला लेता है। लोक मान्यता है कि सांप की आंख में मारने वाले का अक्स खिंच जाता है। जिसे देखकर उसी मारने वाले को काटकर बदला लेता है। अनिष्ट से बचने को इनकी पूजा का विधान बनाया गया है तथा इनकी पूजा की जाती है।

पूजा विधि :-

प्रातः काल घर को गोबर या लाल मिट्टी से लीपकर या गोबर में गेरु मिलाकर घर को लीपते हैं। पूजा के स्थान पर एक पट्टा बिछाया जाता है। उस पर एक रस्सी में सात गाँठे लगा कर सांप बना कर बैठाया

1- डा० सी एल झा - ब्रज में लोक चित्रकला शोध प्रबन्ध - निबन्ध लोक साहित्य पृ 168

जाता है । अक्षत, हल्दी, फूल आदि से इसकी पूजा की जाती है । बाद में कच्चा दूध, घी, चीनी अर्पित किया जाता है । कच्चे दूध में शहद, गुड़, चीनी डाले । बिल की मिट्टी लेकर चक्की, चूल्हे, दीवारों, घर के कोने आदि पर साँप बनाये जाते हैं । कुछ लोग कच्चे चावलों के घोल से भी साँपों की आकृतियाँ बनाते हैं । भीगे बाजरे घी, गुड़ से पूजा की जाती है तथा प्रसाद बाँटा जाता है ।

करनाल में एक आयताकार बनाकर पाँच साँपों को कालस से चित्रित किया जाता है । चित्र नं०/ फलक नं० 54 (1)/60

गंगवा हिसार में बनिया जाति में एक वर्गाकार में सात सर्प चित्रित किये जाते हैं । चित्र नं०/ फलक नं० 54 (2)/60(2)

डाबड़ा में एक वर्गाकार में सात सर्प बीच में घोड़े पर नागों का बादशाह बैठा भी दिखाया जाता है । चारों ओर तिरछी लाइनों की बेल व हाथ - पैर भी बनाये जाते हैं । गेरु पोत कर सांप कालस से ही बनाये जाते हैं । चित्र नं / फलक नं० 55 /61

कुछ स्थानों पर रस्सी में गाँठ लगाकर सर्प बनाकर उसकी पूजा की जाती है तथा कहीं कहीं पर दूध में कालस (कोयले की) मिला कर साप चित्रित किये जाते हैं ।

साँझी :- आसोज शुक्ला प्रथमा से दशमी तक साँझी की पूजा होती है । अमावस की साँझ को ही सांझी की स्थापना की जाती है । अश्विन असोज या क्वार का महीना अनेक धार्मिक त्योहारों और उत्सवों से युक्त होता है । इस महीने का प्रथम पक्ष पितृपक्ष कहलाता है । द्वितीय पक्ष में प्रतिपदा से नौ दिन तक दुर्गा पूजन होता है । इसे 'शारदीय नव रात्र' नाम से भी पुकारते हैं । इसी समय हरियाणा - उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि
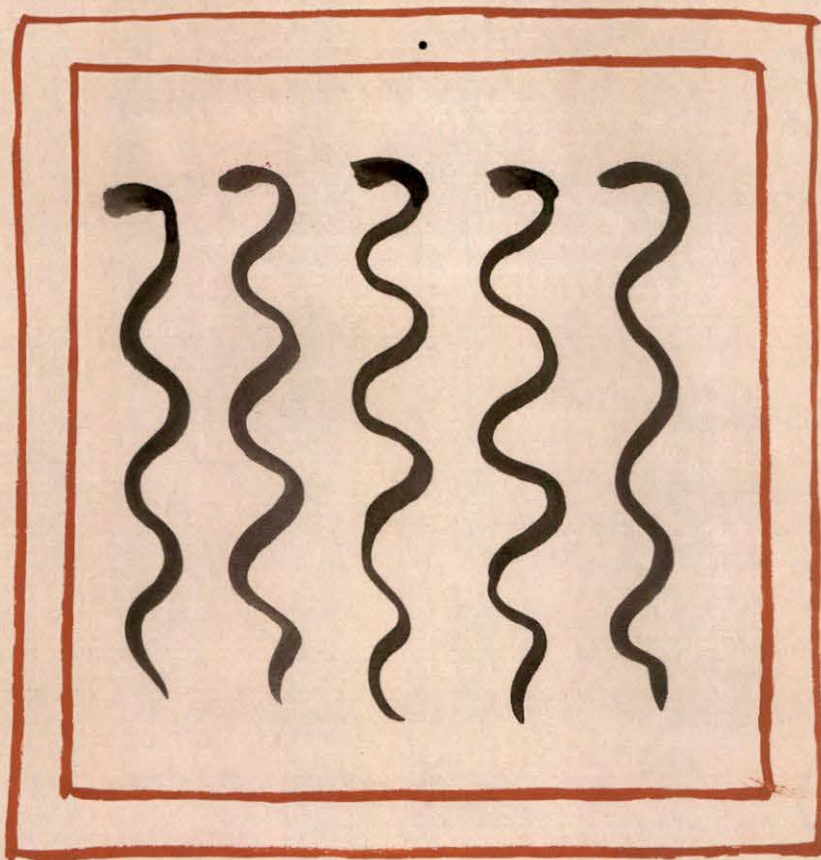
नाग पंचमी (करनाल)
चित्र संख्या 54
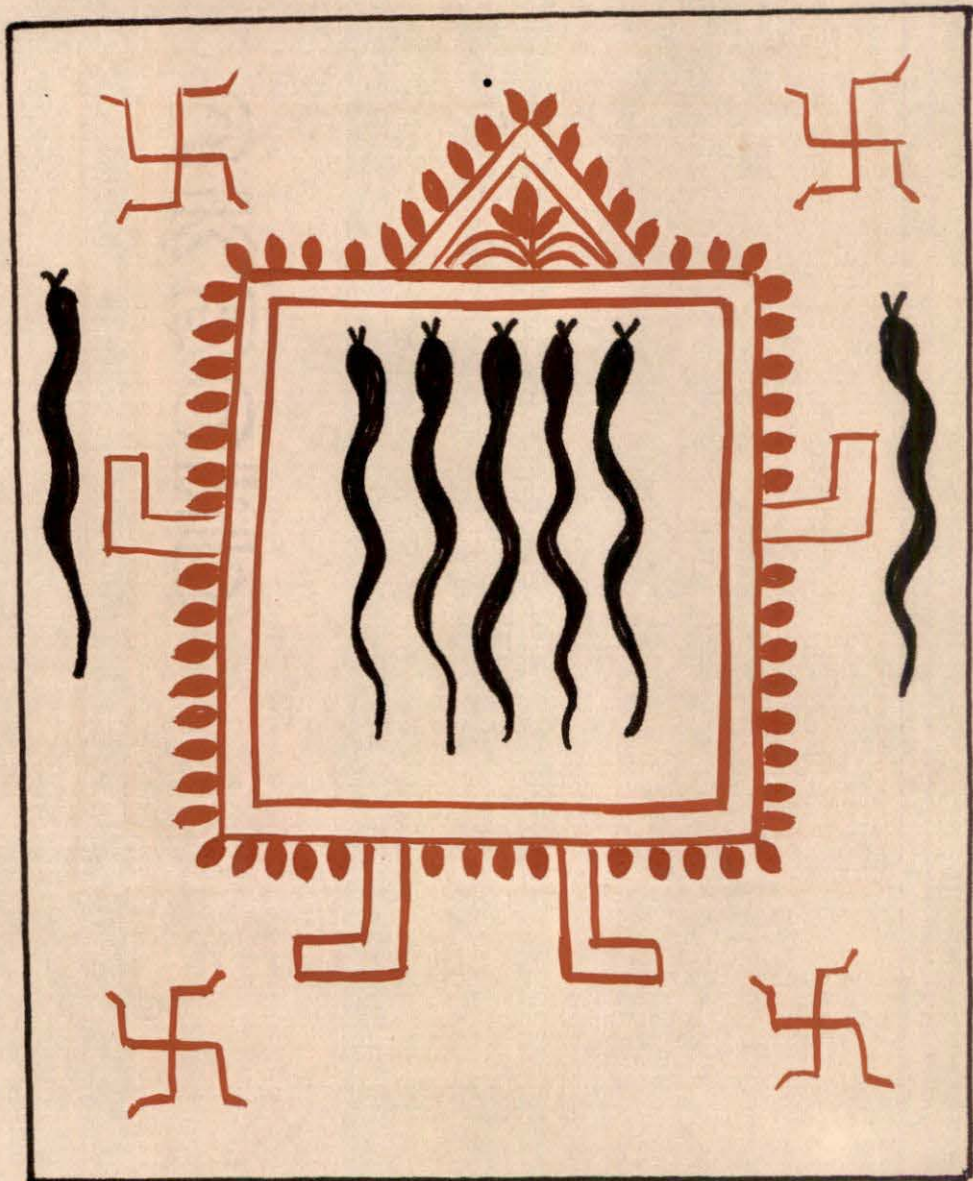
नाग पंचमी (गंगवा, हिसार)

चित्र संख्या 54(२)

नाग पंचमी (डाबड़ा, हिसार)

चित्र संख्या 55

प्रदेशों में सांझी का आनुष्ठानिक व्रत रखा जाता है जिसे कुंवारी कन्यायें विशेष रूप से मानती हैं । इन भोली भाली साधिकाओं के गीतों का पट घरेलू वातावरण से ऊपर नहीं उठ पाता है । जागरण गीत व आरती गीत कन्याओं की मनौतियों से भरपूर है । नित्य प्रात: सूर्योदय से पूर्व तारों की छाया में ही बालिकायें सांझी माई पर मिट्टी की गौर चढ़ाती हैं व जागरण गीत गाती है -

> उठ माई, बैठ माई खोल दे पाट
> मैं आई तने पूजण नै
> पूज पिछोकड़ के फल लागे
> भाई भतीजे पूरे पचास
> कड़वी ककड़ी कड़वी बेल
> पूत फलिगाँ तेरी बेल

हरियाणा में सांझी का उत्सव कई रूपों में मिलता है । जैसे - बालिकाओं के खेल के रूप में लोक कला के रूप में तथा आनुष्ठानिक बाल - गीतों के रूप में ।[1]

चित्ररचना विधि :-

दीवार के गोबर या मिट्टी से लीप पोत कर गेरु ऐपन और रंगों द्वारा भी सांझी बनाई जाती है । शहरों में अब कागज की बाजार से छपी हुई सांझी का चित्र लाकर चिपका कर भी पूजा की जाती है । परन्तु गांवों में विशेषकर जाट स्त्रियाँ आश्विन मास में सांझी स्थापना से पूर्व

1- डा० शंकर लाल यादव - हरियाणा संवाद पृ 47-48 । फरवरी,1983

हो मिट्टी से देवी के अंग प्रत्यंग बनाकर सुखा लिये जाते हैं फिर उन्हें गोबर की सहायता से दीवार पर स्थापित कर दिया जाता है । कौड़ी व चूड़ियों से उन्हें सजाया जाता है । तथा खड़िया व पेवड़ी के रंगों से उन्हें सुनहरा बनाया जाता है । इसके दायें बायें बहुत सी चित्रकारी की जाती है । दाहिनी ओर ही एक बाग बनाया जाता है जिसमें एक चिड़िया बैठी दिखाई जाती है । दो व्यक्ति डोम - डोमनियों के रूप में तथा दो बामन बामनी के रूप में चित्रित किये जाते हैं । बाईं ओर ऊपर एक मोर तथा नीचे ल्हैकड़ बनाया जाता है । यही सांझी सन्ध्या देवी है । लोक कला का यह परम्परा प्राप्त रूप देखते ही बनता है जिसमें गीत का भी भी संयोग रहता है -

> जाग सांझी जाग तेरे माल्थे लाग्या भाग
> पीली पीली पटिया सदा सुहाग
> मेरी सांझी के औरे धौरे चाल्याँ की मुठी है
> मैं तनै बूझूं संझा तेरी के तोल्यां की गुठी है ।
> है तेरे बाप दादाई बहना वीरणा
> मोल चुकाई बेब्बे ना तोल्या की गुठी है ।[1]
> मेरी सांझी खोल किवाड़ पूजण आये तेरे बार
> पूज पुजापा क्या होगा ?
> सांझी री मांगे हरा हरा गोब्बर कहाँ ते ल्याऊँ हरा हरा गोबर
> मेरा री बीरा लैहड़े में बैठ्या, वहीं ते ल्याऊँ सांझी हरा-2गोबर[2]

1-2, डा० शंकर लाल यादव- नोरता सांझी के हरियाणा सम्वाद फरवरी अंक पृ 47-48

इसी प्रकार सांझी माई की मांग पर हरा चुड़ा, पानीपत का बिछुवा, मड़कम चड़कम, जूता और हाथ पर गहना भेंट किया जाता है। सांझी स्थापना से लेकर नौ दिन तक बालिकायें सन्ध्या के समय थाली में तेल का दीपक रखकर सांझी माई की आरती उतारती हैं। और खीलें, बताशों का भोग लगाती हैं। प्रसिद्ध आरती है -

आरता ए आरता सांझी माई आरता,
आरता के फूल चमेली की डाली ना ना नारते दुरगा माई के
सांझी ए के आठेगी के पहरेगी काहे की मांग भरावेगी -1
स्याल ओढ़गी मिसरा पहरूँगी - मोतिया की मांग भराऊँगी
लाडू जीमूंगी पेड़ा झूलूंगी, हमरत की चूयें भरावेगी[2]
आरता है आरता -

देवी आद्या शक्ति है जिससे सरल हृदया कन्यायें प्रार्थना करती हैं कि उनका सम्पूर्ण परिवार सम्पन्न हो। भाइयों का कल्याण हो तथा वंश बेल बढ़े - गीत का मार्मिक पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

पूज पुजन्ती का फल पाये
भइया भतिज्जे गोद खिलाये, मांई हे मेरे नौ दस बीस
भतिजे मेरे पाँच पचीस।

सांझी की आरती, गुणगान तथा वरयाचना के बाद बालिकायें बेलबूटों से सज्जित और अनेक छेदवाली हांडियों के भीतर दीपक रखकर टोलियाँ बनाकर आस पड़ौस में सांझी माँगने निकलती हैं तथा गीत गाती हैं।

1-2 - डा० शंकरलाल यादव- नौरता सांझी के हरियाणा संवाद पर्व अंक, पृ 47-48

इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत नन्द भौजाई की ईर्ष्या स्पर्धा तथा नोंक झोंक से पूर्ण होते हैं -

हल्दो गाँठ ए गंठोलो, भइया बहू है हठोलो
मांगे सोने का बिन्दा, बिन्दा बैठ घड़ाइयो, उप्पर मोरनो बठाइयो
तले घूघरू लटकाइयो, ऊ ते झमस केडे, उसका मुखड़िया मुंह तोडे

इस अवसर पर बहन मायके जाने की कहती है और भाई को प्रोत्साहित करती है -

भाई रे तू भाण बुला, तेरा कुच्छ ना मांगतो
माँगू तोहल पचास ओग्गो ओढणो ओर सठ सो -----[1]
गाड्डो भर कै बोज्झा ला, हरो हरो दिसावरो
भैंसा म्हें की झोटटोला, गाया म्हें को ओसरला
तले बछड़वा चूंखातो - भाई रेतू माण बुला तेरा कुछ न मांगतो-2

साँझो के विवाह का वर्णन इन गीतों में आता है -
जाग सांझो जाग, तेरा वणा ए सुहाग
दिल्लो सहर तैं ब्याहण आये, भर गाड़ो गहणां लाये
अणक गणक का जुत्ता लाये, हात्य रचावण मेंहदा लाये -3
जाग सांझो जाग -

इस पूजा पर्व का समापन विजय दशमी के दिन मनाया जाता है। सांझो को दीवार पर से उतार लिया जाता है। बालिकायें मिलकर, टोलियाँ

1-2-3 डा०शंकर लाल यादव-नोरता सांझी के हरियाणा संवाद पृ० 48

में गीत गाती किसी जलाशय नदी या तालाब में सांझी को प्रवाहित करती है और एक कुल्हिया में शरबत दूसरी में खील भर कर साथ में रख देती है। मिलान की क्रिया समाप्त होने पर प्रसाद के रूप में खील बताशे बाँटे जाते हैं।

साँझी में निहित भावनायें :-

सांझी के गीतों में अबोध बालिकाओं की खेल मनोवृत्ति की झलक मिलती है। हास्य - विनोद का ताना - बाना सर्वदा दिखाई देता है। वास्तव में सांझी एक धार्मिक उत्सव भी है और भोली बालिकाओं का खेल भी। सांझी पूजन शक्ति पूजा या दुर्गा पूजा का ही एक रूप है। दुर्गा पूजा की यह परम्परा धीरे धीरे जन जीवन के इतने समीप आ गई है कि माँ ' शक्ति ' सांझी का साधारण कार लोक जीवन का ही एक अंग बन गई है। ग्राम्य रमणियों के सरल स्वभाव ने उसे ऊपर रहने वाली देवी न समझकर अपना ही रूप बना लिया है। वे सांझी की प्रिय सखी - 'घूंघां' से हास - परिहास करने में नहीं चूकती -

> मेरी धूंधां है, के खावेगी, के ओढेगी,
> खीचड़ खाऊँगी, गूदड ओढूगी।

दुर्गा अष्टमी को कई जगह देवी के बड़े बडे मेले भरते हैं और देवी की कढाई की जाती है। एक लोक विश्वास के अनुसार सांझले रूप से, तथा सांझ के समय पूजा होने के कारण इसका नाम ' सांझी ' है। साँझी के चित्र विवरण इस प्रकार हैं :-

चित्र/फलक नं० 56 अम्बाला

1- देवीशंकर प्रभाकर - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ 137

चित्र/फलक नं०	57	हिसार डाबड़ा
..	58	प्रसगढ़ झोमर
..	59	करनाल कम्बोज
..	60	फरीदाबाद - जाट
..	61	शाम गढ़ - जाट
..	62	करनाल - राजपूत
..	63	अम्बेदकर नगर - हरिजन
..	64	तरावड़ी - झोमर
..	65	किशनगढ़ मिस्त्री
..	66	सिरसा
..	67	तरावड़ी झोमर निसंग
..	68	सांझी करनाल
..	69	गोल
..	70	गोल

गूँगा नवमी :-

भादों बदी अष्टमी को कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत रखा जाता है और कृष्ण जन्म के लोक गीत गाये जाते हैं। दूसरे दिन गूँगा नवमी का त्योहार मनाया जाता है। गूँगा राजस्थान का एक प्रबल वीर हुआ है जिसे पीर, जाहर पीर, गूँगा पीर आदि नामों से स्मरण किया गया है। ऐसी मान्यता है कि बीकानेर राज्य के ददेरा नामक गाँव में गूँगा ने भूसमाधि ली थी। लोक गीतों में भू समाधि के विषय में कहा जाता है कि जब माँ की लताड खाकर गूँगा ने भू समाधि की कामना की तो पृथ्वी माता ने कहा कि तू हिन्दू है या मुसलमान ? तात्पर्य यह कि भू समाधि मुसलमान को दी जाती है। तब उत्तर में गूँगा ने कहा कि आज तक तो मैं हिन्दू था

सांझी (अम्बाला)
चित्र संख्या 56

सांझी (डाबड़ा)

चित्र संख्या 57

सांझी

फूसगढ़
चित्र संख्या 58

सांझी (करनाल)
चित्र संख्या 59

सांझी

(फरीदाबाद)
चित्र संख्या 60

सांझी (शामगढ़)

चित्र संख्या 61

सांझी

(करनाल)

चित्र संख्या 62

फलक 69

सांझी
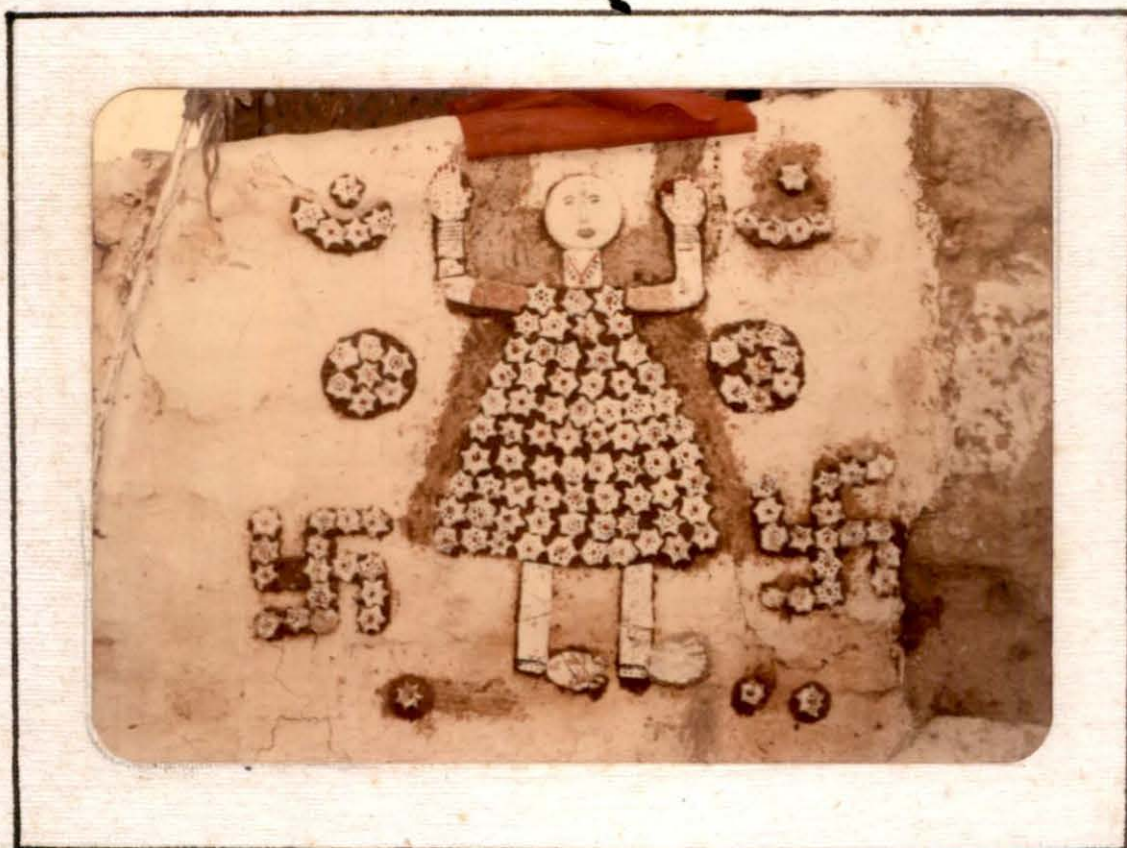
अम्बेदकर नगर, करनाल

चित्र संख्या 63

फलक 70

सांझी (तरावड़ी)
चित्र संख्या 64

सांझी

किशनगढ़
चित्र संख्या 65

सांझी (सिरसा)

चित्र संख्या 66

(निसंग)

चित्रसंख्या 67

सांझी
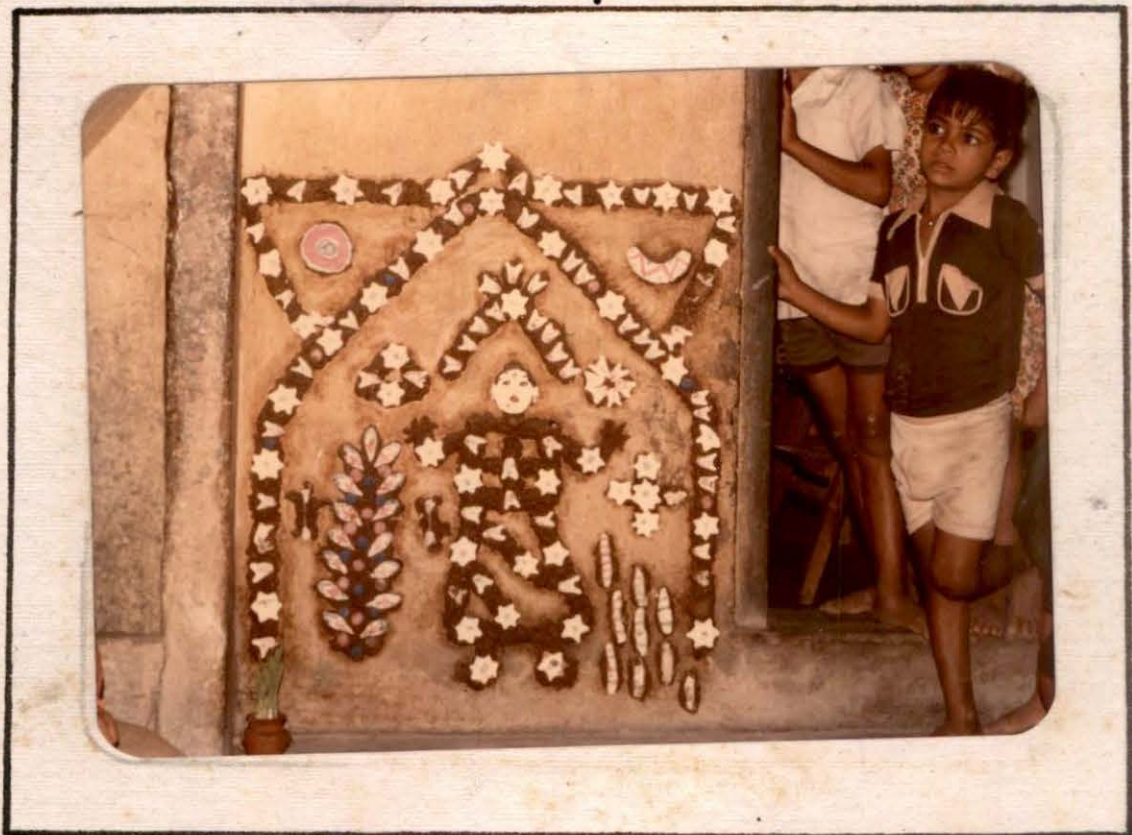
करनाल
चित्र संख्या 68

गोलू
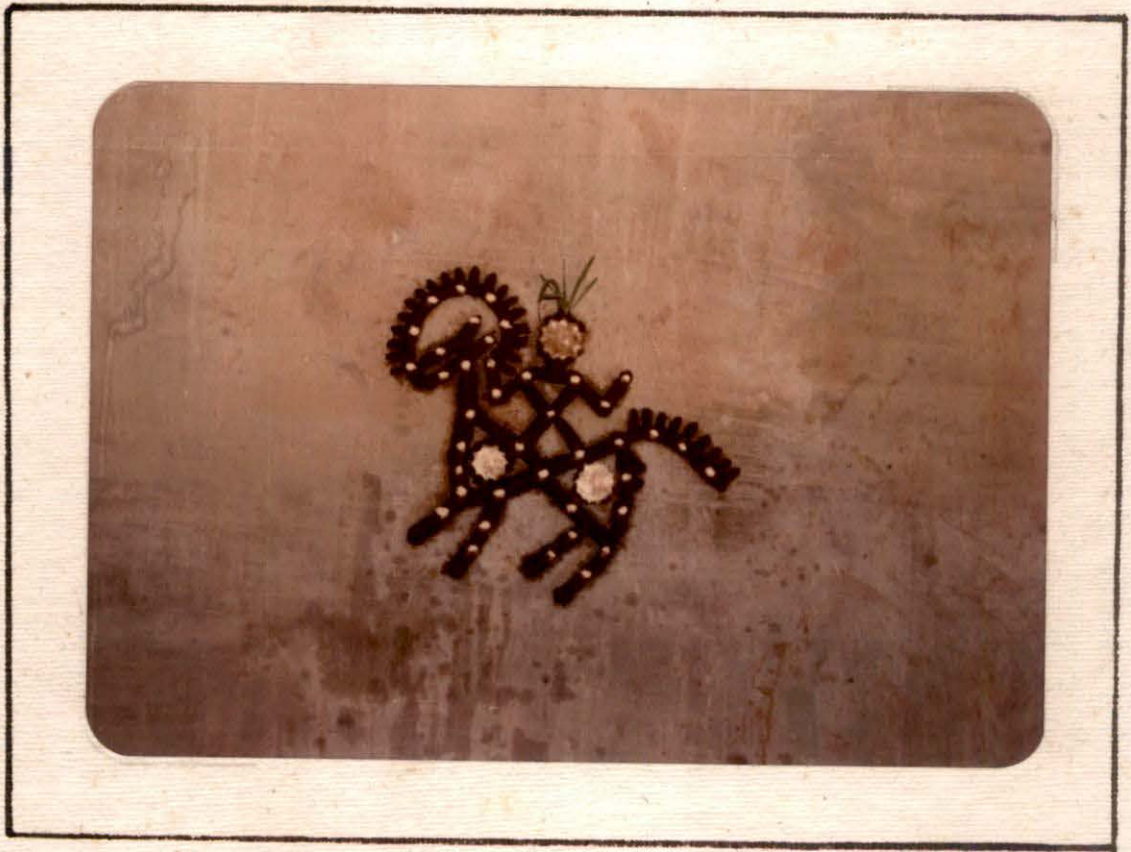
शामगढ़

चित्र संख्या 69

गोदू (फरल)

चित्र संख्या 70

किन्तु आज मैं मुसलमान हो गया हूँ -

धरती माता लेखा माँगे के हिन्दू के मुसलमान

गूंगे का उत्तर है कि -

आज लग तो मेरा हिन्दू जनम था, आज हुआ मुसलमान ।[1]

शायद यही कारण है कि गूगा की मान्यता हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों में समान रूप से है ।

प्रत्येक वर्ष भाद्रपद बदी नवमी को गूँगा पीर प्रकट होते हैं ऐसा लोक प्रवाद है । अतः इसकी इस दिन मान्यता है । इस विश्वास का कारण वह लोक गीत है जिसमें गूँगा द्वारा अपनी पत्नी से कहा गया था कि - तू मत जिखे गोरी मेरी मैं आऊँगा तेरा लनिहार

साढ़ न आऊं, साम्भण न आऊँ, आऊँ भादुँड मास ।

सात्तम न आऊँ, आठम न आऊँ, आऊँगा नौम्मी की रात।।[2]

वे सर्पदंश के उपचार के लिये विख्यात थे । अतः सर्पों के बादशाह कहलाते थे । गूगा की मान्यता प्रायः सारे हरियाणा में है । उस दिन छड़ियाँ निकलती हैं । भक्तों में गूँगे का आवेश आता है । किसी 'जाल वृक्ष ' के नीचे छड़ी खड़ी कर दी जाती है और सभी लोग वहाँ 'प्रजने' (लोक गाने) जाते हैं । शक्कर व बताशे का प्रसाद चढ़ाया जाता है । इस अवसर पर अनेक स्थानों पर मेले लगते हैं और कुश्तियों के दंगल होते हैं ।

1- राजाराम शास्त्री - हरियाणा का लोक साहित्य पृ 37

2- " " पृ 37

गूंगा को सर्पों का राजा माना जाता है ।

पूजा विधि :-

हरियाणा में इस दिन एक कटोरी या मिट्टी के सकोरे में कच्चा दूध लेकर सर्पों को पिलाया जाता है - अथवा उनके बिलों में डाल दिया जाता है । फिर घर जाकर दीवारों को गेरु से पोत कर थोड़े से दूध में कोयला डालकर दोनों को मिलाकर एक करने के बाद उससे एक चौरस खाना बनाकर उसमें पाँच सर्पों को चित्रित किया जाता है । इन सांपों को घी के दिये से आरती उतारी जाती है । फिर शुद्ध जल, कच्चा दूध - रोली बाजरा, चावल, आटा , घी तथा चीनी मिलाकर चढ़ाया जाता है । साथ में दक्षिणा दी जाती है । कहानी सुनने के बाद बाजरा - मोठ भीगे चने का बायना सास को देते हैं ।

इस पर्व में निहित भावनायें :-

यह सौभाग्यवती स्त्रियों का व्रत है । इसके करने से सौभाग्य में वृद्धि होती है । उनके पतियों का अरिष्ट नाश होता है । दीर्घायु तथा सुख सौभाग्य प्राप्त होता है । देवता होने के साथ साथ गूंगापीर हरियाणवी लोक साहित्य का एक लोक प्रिय पात्र भी हैं ।

खबड़ा (हिसार) ब्राह्मण परिवार में गूँगा नवमी के दिन घर व पूजा स्थान लीपा जाता है । खड़िया व चावल के घोल से । फिर गेरु से चौरस खाना बनाया जाता है । उसे टेढ़ी लाइनों तथा पत्तियाँ बना कर सजाया जाता है । दूध में कोयला मिलाकर कलम से पांच्य नाग तथा नागों का देवता गूँगा घोड़े पर गेरु से बैठा बनाया जाता है । चित्र/फलक नं०- 55/61

इसी प्रकार जींद में जाट परिवार में दीवार को लीप पोत कर उसे

गेरु से एक चोरस आकृति बनाकर उसमें नो चारों ओर सांप बनाये जाते हैं। तथा बीच में गेरु से सुर्पो का बादशाह घोड़े की आकृति पर बैठा हुआ बनाया जाता है। चारों ओर बेल व चोरस के बाहर हाथ व पैर बनाये जाते हैं। चित्र/फलक नं० 71/77

सिरसा, हिसार (डाबड़ा गाँव) के हरिजन परिवार में दीवार पर नौ साँप व गूँगा का चित्र अंकित किया जाता है तथा पूजा स्थान पर नारियल की ज्योत के सामने फोड़ते हैं। नारियल के नौ टुकड़े व नौ छोटी छोटी पूरियाँ अग्नि में चढ़ाई जाती हैं। उस दिन खाना नहीं बनाते। चित्र एवं फलक नं० - 72/78

करनाल में गूँगा नवमी के दिन एक स्थान पर जहाँ छड़ियों का जलूस छड़ी गाड़ देता है जा कर स्त्रियाँ धोक मारती हैं। पूरी गुड़, घी व बताशे चढ़ाये जाते हैं तथा भोग बाँटा जाता है।

फरीदाबाद में गूँगा नवमी को चोरस के बीच में पाँच साँप, हाथ पैर तथा चारों कोनों में चार स्वास्तिक बनाये जाते हैं। दोनों हाथों के पास एक एक साप गेरु से बनाया जाता है और सर्पों को कलस से चित्रित किया जाता है। चित्र एवं फलक नं० - 73/79

करवा चौथ :-

हरियाणा में पति की दीर्घायु की कामना के लिये कार्तिक शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को यह व्रत किया जाता है। पुराणों में इसे करक चतुर्थी कहा गया है। अवध की लोक कथाओं में वामन पुराण में इस व्रत के बारे में विस्तार से बताया गया है कि 'करक' का अर्थ करवा होता है जिसका इस व्रत में विशेष महत्व है। करवा व्रती स्त्री का माना जाता है। यह व्रत
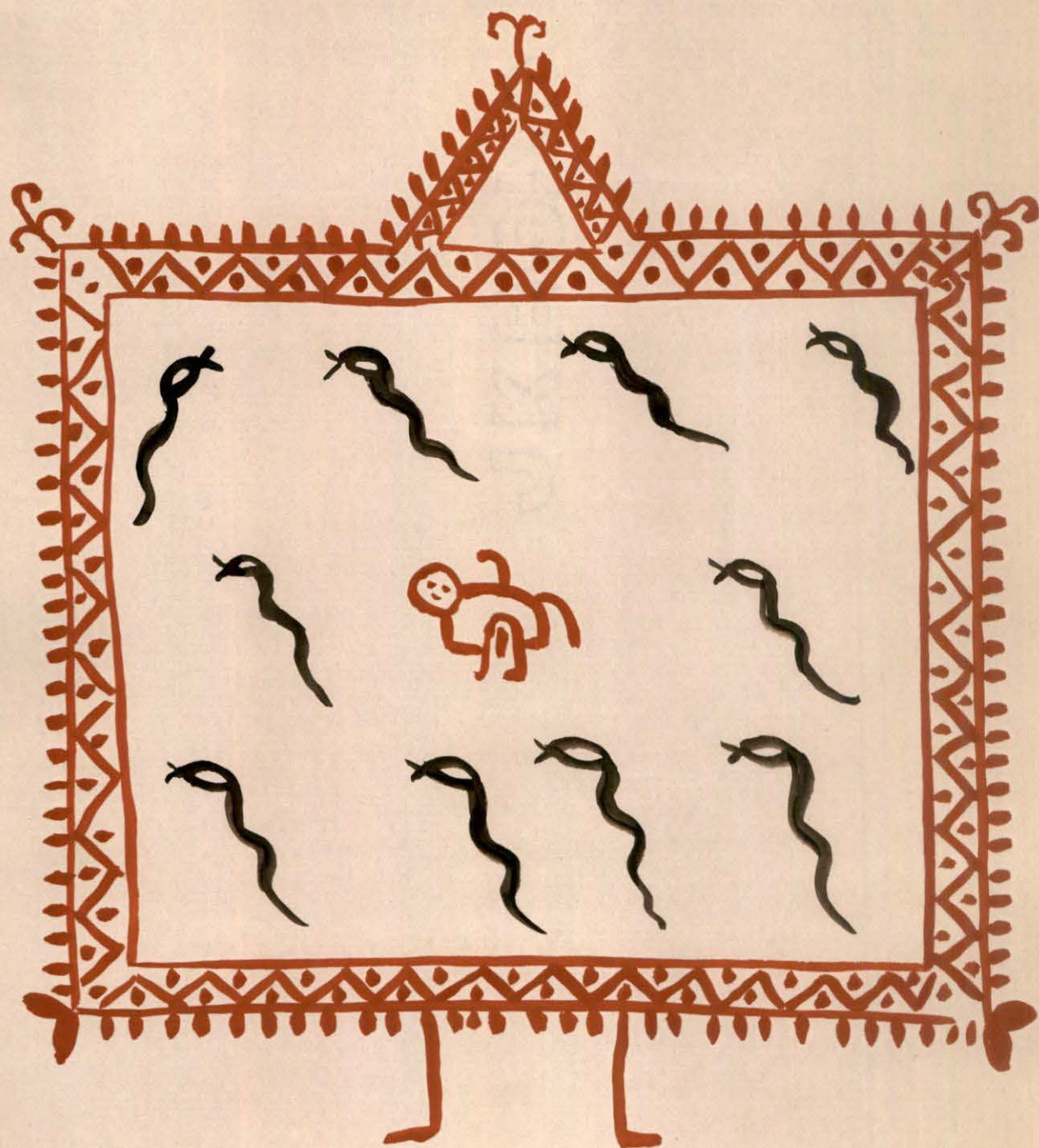
गुगा नवमी (जींद)
चित्र संख्या 71

गूगा नवमी (सिरसा, हिसार)

चित्र संख्या 72
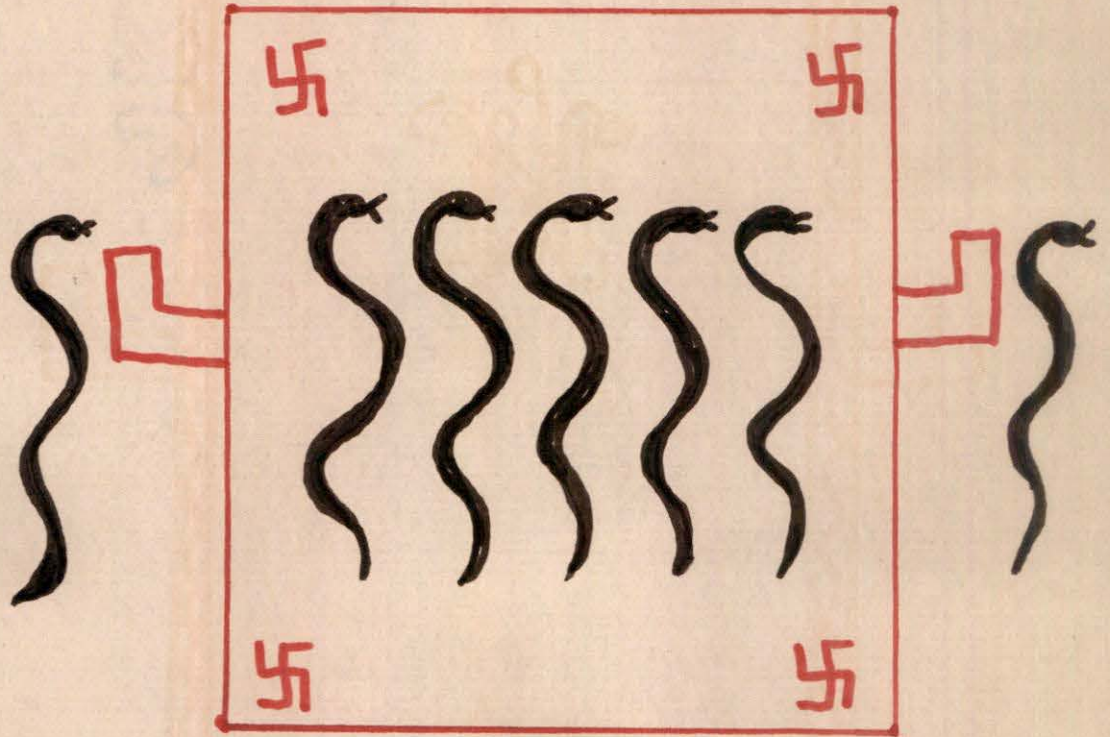
गूगा नवमी (फरीदाबाद)
चित्र संख्या ७३

सौभाग्य व शुभ सन्तान देने वाला होता है । लोक में इसे करवा या करुवा चौथ कहा जाता है ।

इस दिन प्रातः काल स्त्रियाँ सिर से नहाकर व्रत करती हैं । रात्रि को पूजा के समय स्त्रियाँ अपना पूरा श्रृंगार करती हैं तथा जेवर पहनती हैं । मेंहदी महावर बिन्दी सब लगाती हैं ।

पूजा विधि :-

शाम को खूब श्रृंगार करके करवा चौथ की पूजा के लिए दीवार पर चित्र बनाती हैं तथा एक विशेष प्रकार का मिट्टी का बरतन जिसे करवा कहते हैं, उससे रात को चन्द्रमा को अर्घ्य देकर उपवास खोलती हैं । एक करवे पर नैवद्य रखा जाता है । दूसरे में पानी रहता है । कहीं कहीं नैवद्य वाला करवा खांड का भी होता है । करवे में गेहूँ तथा ढक्कन में चीनी भर ली जाती है । रुपया नकद रक्खा जाता है । रोली, चावल, गुड़ आदि से पूजा की जाती है । करवे पर रोली ऐपन से सतिया बनाया जाता है । गेहूं के तेरह दाने हाथ में लेकर कथा सुनी जाती है तथा फिर गेहूँ पानी वाले करवे में डालकर रात को जल चाँद को चढ़ाया जाता है ।

करवा चौथ चावल पीस कर लिखी जाती है जिसे वर कहा जाता है । पति के विभिन्न रूप तथा सुहाग के चिन्ह बनाये जाते हैं ।

हरियाणा में कहीं कहीं पर शाम के समय तैयार होकर थाली में बायने का सामान जिसमें मट्ठे, मिठाई, बादाम, सुहाग का श्रृंगार का सामान रुपये आदि रखकर एक जगह एकत्रित हो जाती हैं । पंडितानी से कथा सुनती हैं फिर गोलाई में घूमते हुए एक दूसरे से थालियाँ बदलती हैं । बाद में थाली को सास को दिया जाता है । रात को चन्द्रमा को अर्घ्य देती हुई

चित्र में कृत्रिम चन्द्रमा को देखकर भाइयों को प्यारी बहिन अर्घ्य देती दिखाई जाती है। स्वास्तिक का चिन्ह कल्याण कामना से चित्रित किया जाता है। सूर्य चन्द्रमा को देवता के रूप में बनाया जाता है। चन्द्रमा अमृत देने वाला तथा सूर्य जीवन प्रदान करता है। अतः जीवन को सुखमय बनाने के लिये दोनों आवश्यक हैं। इस लोक चित्रकला में रेखा चित्रण का क्रम बराबर चलता है। यद्यपि यथार्थ की अभिव्यक्ति न करके प्रतीकात्मक चित्रण भी होता है। कुछ आकृतियाँ मनोरंजन के लिये भी बनाई जाती हैं। तुलसी का पेड, प्याउ, कुम्हारिन, पशु - पक्षी - अलंकरण के लिये किये जाते हैं।

चित्र रचना विधि :-

हरियाणा में चित्र कहीं कहीं पर ही बनता है। चित्र सफेद पृष्ठ भूमि पर गेरु से व और अन्य रंग लगाकर बनाते हैं। चित्र में सीढी पर चढ कर अर्घ्य देती स्त्री, भाइयों के चित्र, पशु, स्वास्तिक, सूरज चांद, कन्धारी और एक पीढ़ा बनाया जाता है। फरीदाबाद - चित्र एवं फलक नं० 74

कुछ स्थानों पर करवे को ही पूजा जाता है। ज्यादातर थालियाँ बदल कर तथा कहानी सुनकर व्रत खोल लिया जाता है। करवा चौथ के बाजार में बने बनाये चित्र भी मिलते हैं जिनमें रंग भर कर दीवार पर लगा लिये जाते हैं। तथा शाम को धोक मारते हैं। डाबडा में हरिजन परिवार में करवा चौथ पर दो आकृतियों के बीच ⊙ बनाया जाता है। गोबर से बनाते हैं। गोला उठाकर गउ के खूंटे पर रखकर जल चढाती हैं तथा कहानी कहती हैं। चित्र नं० 75 फलक नं० - 81

करनाल में करवा चौथ पर दीवार पर गेरु से आकृति बनाई जाती है। 7 भाई, 7 बहिन, सीढी पर चढकर अर्क देती हुई गहना, चाँद - सूरज,
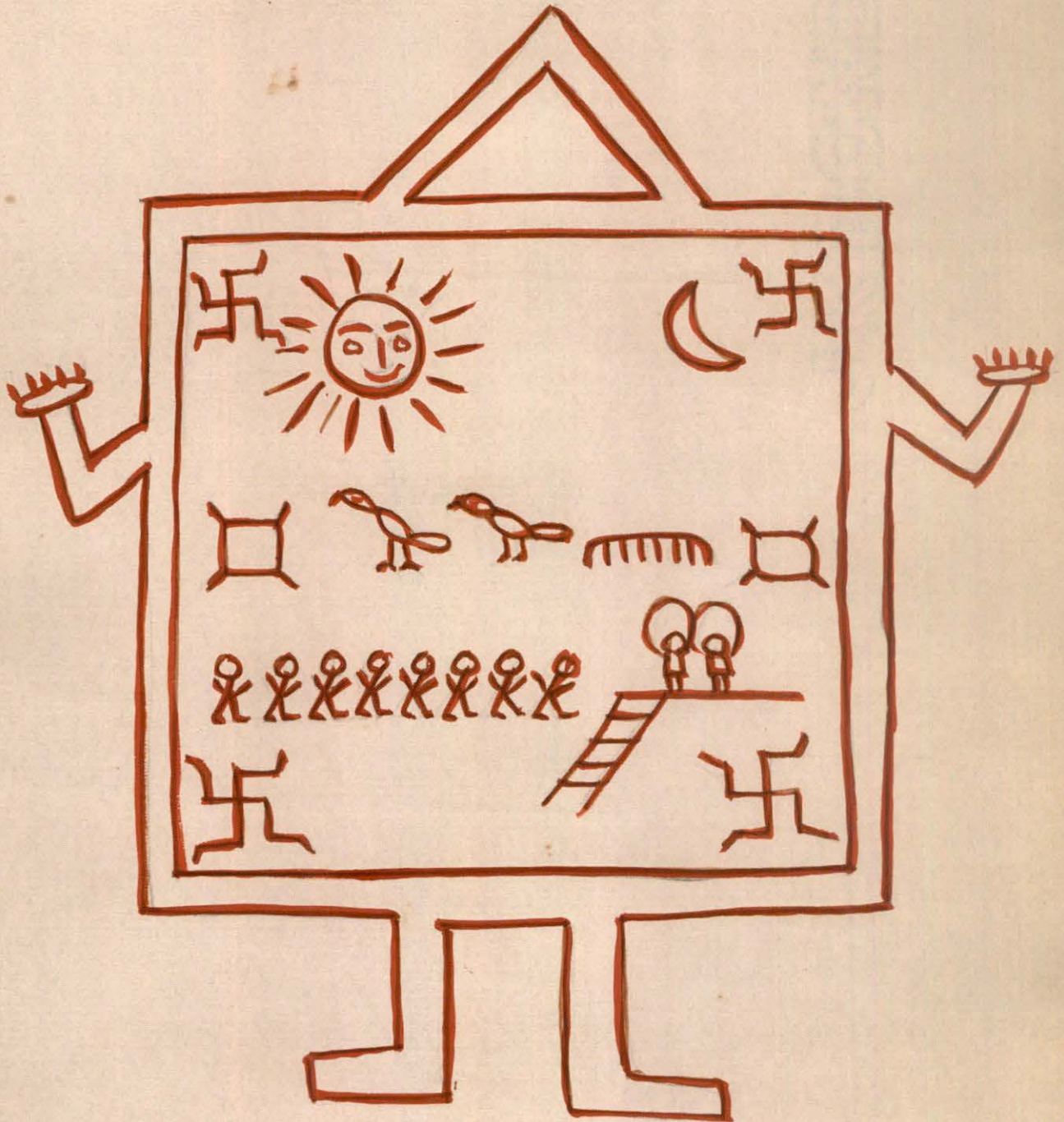
करवाचौथ (फरीदाबाद)
चित्र संख्या 75

फलकां 8।
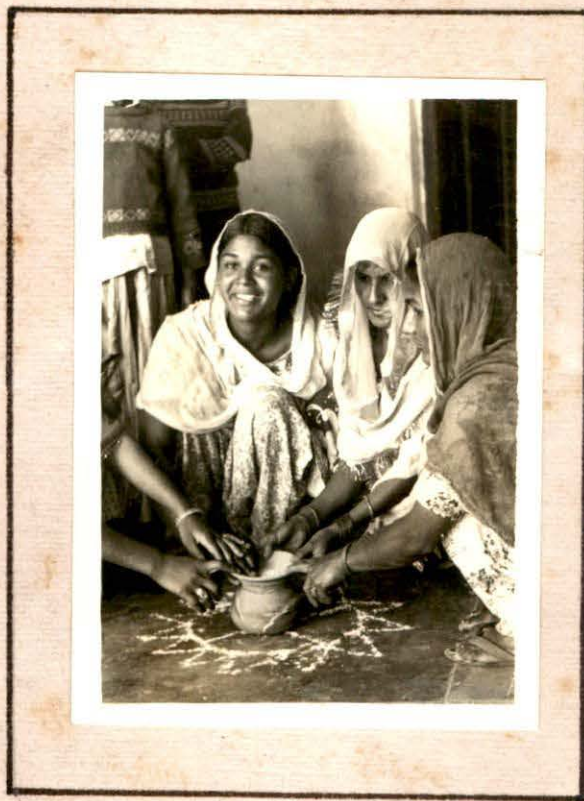
करवा चौथ (डाबड़ा, फरल)
चित्र संख्या 75

कहती हैं -

चार पहर का दिन, चार पहर की रात

बाल चन्द्रमा को अर्क दूं, आज करवा चौथ की रात"

अथवा

सोवती पे सोवन्दोयाँ, सोवन्दोयाँ पर वार

वाल चन्दा अर्क दे, नांडा दरबार

हाथ मेंहदी - बाहें चूड़ा, खड़ी सुहागन अर्घ दें ''

करवे की प्रमुखता के कारण इस पर्व का नाम करवा चौथ पड़ा। जिन परिवारों में चित्र नहीं बनाया जाता करवे पर स्वास्तिक चिन्ह बना कर मोली (कलावा) बाँध कर करवे की पूजा की जाती है और इसी से चन्द्रमा को अर्घ्य दिया जाता है। करवा रखकर चित्र के सामने बैठकर घर की बड़ी इस दिन की महत्ता बताने के लिये कथा कहती हैं।

करवा चौथ के विषय में अनेक लोक कथायें प्रचलित हैं। कथा व पूजन विधि में भिन्नता होते हुये भी भाव सभी समान हैं। सभी कथाओं में पतिव्रत धर्म की महत्ता बताई जाती है। इस त्योहार का पूर्ण श्रेय स्त्री समाज को ही है। कथाओं से सम्बन्धित चित्र भी बनाये जाते हैं। यद्यपि कहा नहीं जा सकता कि इन लोक कथाओं में कुछ सत्यता भी है या नहीं परन्तु आज भी स्त्रियों के मन में इस त्योहार के प्रति इतनी श्रद्धा है कि सारे दिन भूख प्यास की वेदना को सहकर भी समस्त उपकरणों सहित प्रसन्नता पूर्वक इस त्योहार को धूमधाम से मनाया जाता है।

चित्र निहित अभिप्राय :-

करवा चौथ के चित्रों में प्रायः विषय एक सा ही रहता है।

पेड़ तथा छड़ी ले जाता आदमी बनाया जाता है। चारों ओर बेल तथा देवी के एक हाथ में फूल दूसरे में दो करवे बनाये जाते हैं। चित्र नं० 76/82

दुर्गा अष्टमी, सीली साते :-

वैसे तो चैत का सारा महीना ही माता पूजन का महीना है। चैत की शुक्ला अष्टमी दुर्गाष्टमी का दिन है। इस दिन देवी की चढ़ाई की जाती है। कई स्थानों पर मेले लगते हैं। सबसे प्रमुख मेला ' बेरी ' कसबे में लगता है।

चैत्र कृष्णा सप्तमी सीली साते के रूप में मनाई जाती है। सीली साते शीतला सप्तमी का बिगड़ा हुआ रूप है। सीली साते के दिन कितनी ही जगहों पर ' माता ' के मेले लगते हैं। बासोड़ा रंध कर पूजन किया जाता है। इस दिन साहा (विवाह की लग्न) का भी जोर होता है। हर सोमवार माता के पूजन के लिये शुभ समझा जाता है। बुध्ध को बुध्धी माता का पूजन करते हैं। शीतला की पूजा सीली साते को तथा चैत्र की शुक्ला सप्तमी को भी होती है।

देवी की पूजा हरियाणा में नौ माताओं के रूप में की जाती है। आम तौर पर देवी के मन्दिर हर गाँव में नहीं मिलते। ऐसे मन्दिर केवल देवी स्थानों पर ही बने हैं, जहाँ बड़े बड़े मेले लगते हैं। बेरी, रोहतक, नरेला, गुड़गांव और लाडवा करनाल के देवी मन्दिर बहुत प्रसिध्ध हैं। वैसे हर गाँव में पक्की ईंटों से छोटी मढ़ीया बना ली जाती है, जिसमें मूर्ति के स्थान पर केवल दीपक रखने की जगह होती है। वही पर ज्योत जला कर स्त्रियाँ पूजा कर लेती हैं। यह ज्योत ही देवी अथवा ' माता ' की प्रतीक होती है।

करवा चौथ (करनाल)
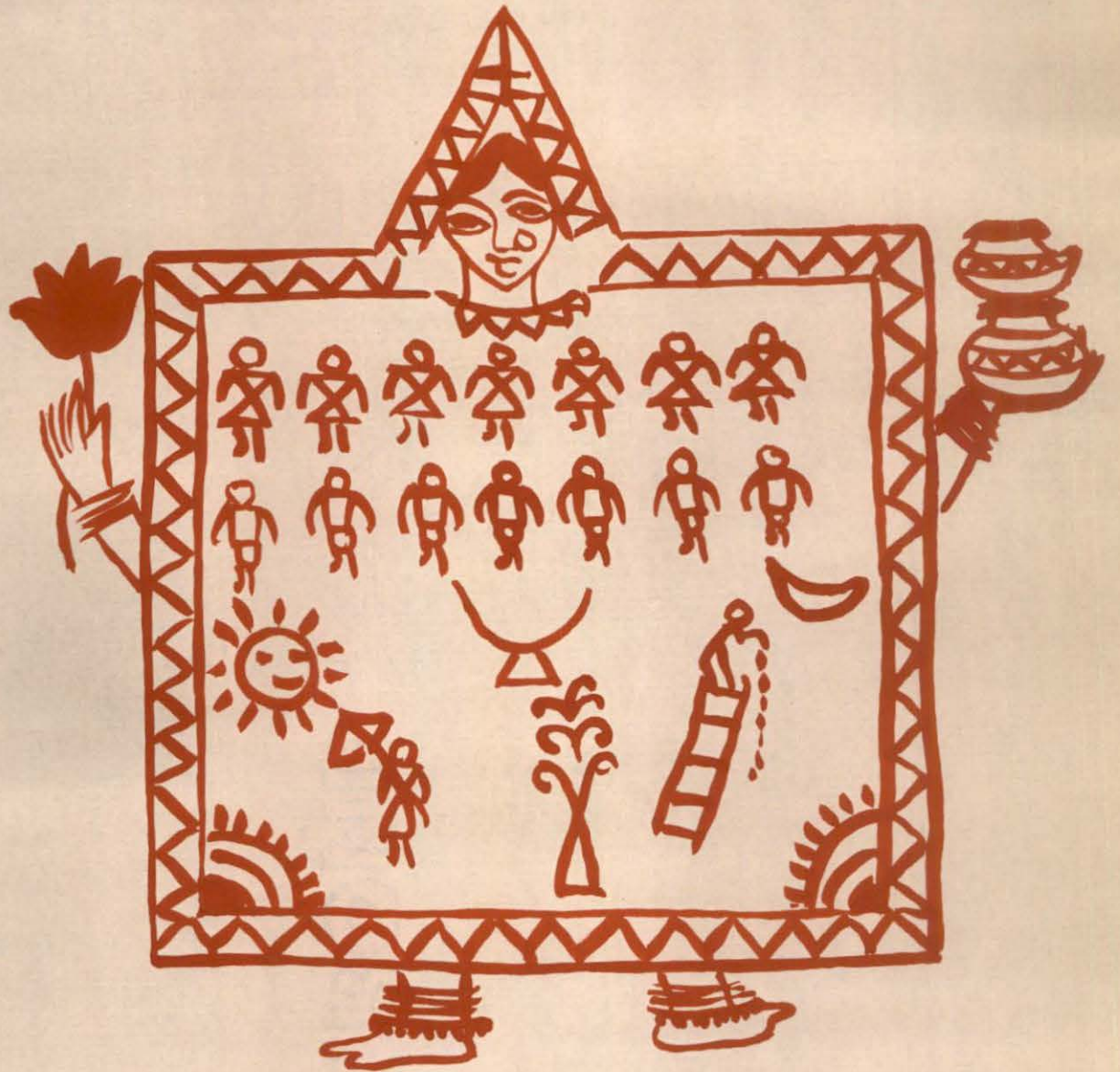
चित्र संख्या 76

चैत्र मास के पहले पक्ष में प्रथमा से सप्तमी तक माता पूजन होता है। रोज शाम को मीठे चावल पकाकर अगले दिन के लिये रख दिये जाते हैं। इसे बासोहड़ा रखना कहा जाता है। इस बासोहडे को अगली सुबह देवी पर चढाया जाता है। स्त्रियाँ आटे के फल, पूड़े व गुलगुले बनाती हैं। सारे पकवान को छोटे- छोटे ढेरों में ' माता ' के आंगन में ' पूरा ' जाता है, जिसे औरतें माता की ' बाड़ी बोना ' या बाग लगाना कहती हैं। इस अवसर पर वे गाती हैं -

'' मैया किन्हें तेरे बाग लगाईयाँ
किन्हें तेरे कुएं चिणाइयां।''

सातवें दिन के पूजन को ' सीली साते ' भी कहते हैं। ऐसे अवसरों पर कुछ लोग जेठे बच्चे के बाल भी उतारते हैं। कुछ जगह जोड़े की जात ' दी जाया करती है।

चेचक को माता का कोप मानने का अन्धविश्वास इस क्षेत्र में भी छाया रहा है। किन्तु अब यह कुहरा छंटता जा रहा है। लगता है कि चेचक के विभिन्न रूपों के अनुसार ही उसके ' मोटटी माता ' 'फुलकिया माता ' और ' कण्ठी वाली माता ' नाम पडे होंगे।[1] सम्भव है शक्ति के प्रति अगाध श्रद्धा होने से ही इस अन्ध विश्वास ने घर कर लिया हो। शक्ति पूजा का विशुद्ध रूप गुड़गांव की ' काली ' और रोहतक में झज्जर के पास ' बेरी ' की दुर्गा का पूजन हरियाणा की प्राचीन परम्परा का प्रतीक है।

1- देवी शंकर प्रभाकर -हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ ।13

देवी की मानता अष्टमी के त्यौहार पक्का कर की जाती है। देवी के श्रद्धालु इस दिन दूध नहीं जमाते। लोक विश्वास है कि जिन घरों में देवी की मान्यता है, यदि वहाँ अष्टमी के दूध - बिलोने के लिये जमा दिया जाये तो उनकी भैंस अथवा गौ का दूध सूख जायेगा। (गूँगा पीर के मानने वाले घरों में भी ऐसा ही विश्वास प्रचलित है)

कार्तिक की शुक्ला अष्टमी के तो कई स्थानों पर बड़े बड़े मेले लगते हैं और घर घर में देवी की कड़ाई की जाती है। कई जगह देवी - मन्दिरों में पहले मेंढ़े और मुर्गे चढ़ाये जाते थे किन्तु अब इनका लगभग बहिष्कार सा कर दिया गया है। काली अथवा दुर्गा के मन्दिरों में तो हर पखवाड़े की अष्टमी तथा शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी एवं अमावस्या के भी पूजन किया जाता है।

कार्तिक में दशहरे से दो दिन पूर्व और चैत्र में नवमी से एक दिन पहले दुर्गाष्टमी मनाई जाती है। प्रथमा से अष्टमी तक के दिन नवरात्र कहलाते हैं। दुर्गा के भक्त जन व्रत व पूजन करते हैं। कई जगह रतजगा भी किया जाता है। अष्टमी के हरियाणा के विभिन्न भागों में बड़े बड़े मेले लगते हैं और दुर्गा पूजन किया जाता है। कई जगह प्रथमा के जौ भी बोये जाते हैं, जिन्हें अष्टमी के दुर्गा के पूजन के लिये बधाया जाता है।

कई गाँवों में सतियों की पूजा भी की जाती है। जिस स्थान पर कोई स्त्री अपने पति के साथ सती हुई हो अथवा पति के युद्ध में काम आ जाने पर किसी स्त्री ने पीला परिधान पहन कर अग्नि - प्रवेश किया हो वहाँ 'सत्ती की मढ़ी' स्थापित है।[1] इन मढ़ियों पर भी

1- व्यक्तियों के साक्षात्कार के आधार पर
रामसरन द्वारा साक्षात्कार के आधार पर दि० 5-2-85

शुभ अवसर पर दीपक जलाने की प्रथा है । पशु - पक्षियों के चुगने के लिए मढ़ी के आस पास अन्न बिखेर दिया जाता है । करनाल जिले का सत्तियों का मन्दिर प्रसिद्ध है ।

पूजा विधि :-

हिसार के झाबड़ा गांव में हरिजन परिवार में नौरात्रों में कलश रखे जाते हैं तथा देवी माता का चित्र दोनों हाथों में त्रिशूल लिये सिन्दूर से बनाते हैं । अगर देवी की आकृति बनानी नहीं आती तब खाली त्रिशूल ही बनाकर उसकी पूजा की जाती है । चित्र नं० - 77/83

गंगवा गांव (हिसार) में बनिये परिवार में होली के आठ दिन बाद देवी माता का बसौड़ा किया जाता है । स्त्रियाँ सुबह नहा धो कर कुम्हार की मिट्टी से गौर बनाती हैं । पट्टे पर स्थापना करके 4 दिन दूब से पूजती हैं । आखिरी दिन पूजा कैर से करते हैं - गौर का मेला भरता है । आखिरी दिन ' गौर माता ' को कुयें में डालते हैं । इस विश्वास से कि गौर माता ससुराल गई ।[2]

फरीदाबाद में दुर्गा अष्टमी के दिन देवी माता की चौरस आकृति बनाकर चारों कोनों में स्वास्तिक चिन्ह तथा बीच में दो थापे एक घी का एक हल्दी का लगाया जाता है । चित्र/फलक नं० - 78/84

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर दि० - 5-2-85

2- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर 14-6-84 सन्तोष रानी से साक्षात्कार के द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर ।

फलक #83
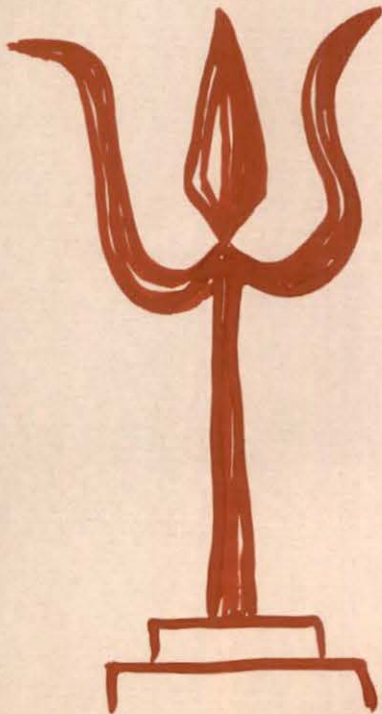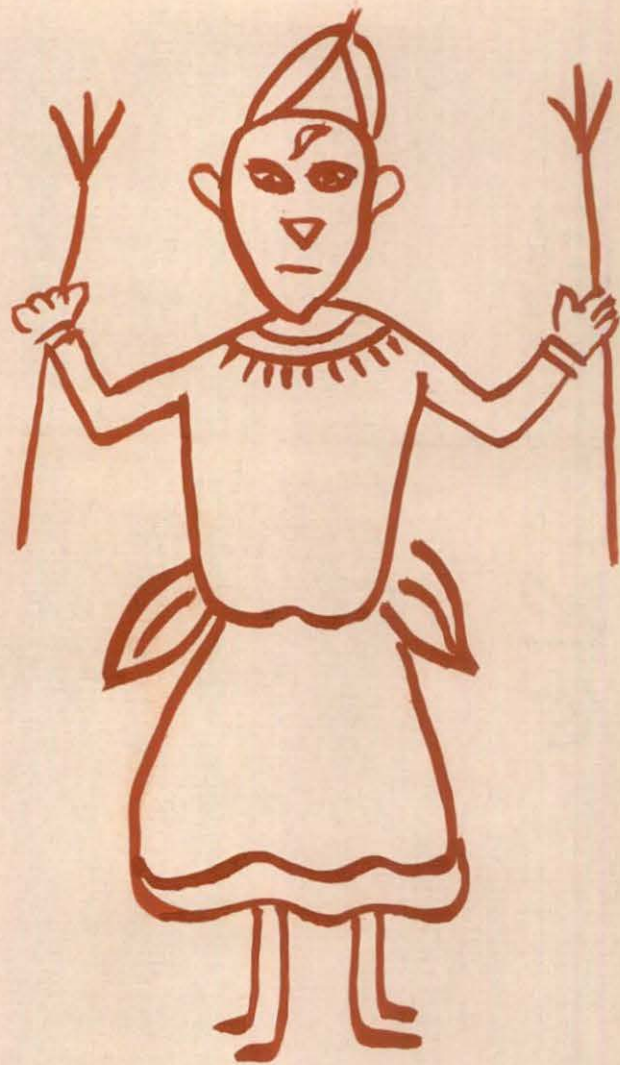
देवी, नवरात्रे (डाबड़ा)
चित्र संख्या 17

थापे

दुर्गा अष्टमी / रामनौमी पर घी हल्दी के थापे
(फरीदाबाद) चित्र संख्या 78

ज्यादातर और स्थानों पर भी देवी के छापे ही लगाये जाते हैं। जैसे करनाल में गेरु से छापा देवी को चौरस आकृति बना कर लगाया जाता है। 79/85

हिसार भिवानी आदि जगह पर भी छापे लगाने का ही प्रचलन है जो कि देवी के प्रतीक हैं। हिसार में शादी पर बनाया जाने वाला (घरव) छापा का रूप भिन्न है। चित्र नं० 79 (1) फलक 86 (1) शादी पर घर की दीवारें व द्वार पर गेरु व रंगों से फूल पत्ते बनाकर सजाया जाता है। हिसार डाबडा गाँव में शादी पर घर के बाहर 'बारना चौता' जाता है जिन्हें फलियाँ चौतना भी कहते हैं। कुछ चित्र इस प्रकार हैं। चित्र नं० 79 (2) 87 (3)

विवेचनात्मक विश्लेषण :-

हरियाणा के लोगों की कुछ विशेषताओं के कारण इस प्रदेश का अपना एक अलग ही व्यक्तित्व विकसित हो गया है। हरियाणा का स्वरूप अधिकतर ग्रामीण है। गाँवों का गठन और आकार स्थान स्थान पर भिन्न है जो स्थिति विशेष पर आधारित है। खादर, बागड या नरदक हर स्थान की अपनी मौलिकता है। लोक चित्रकला एक ऐसा दर्पण है जो किसी स्थान विशेष व देश विशेष की संस्कृति का पूर्ण प्रतिबिम्ब प्रस्तुत कर देता है। लोक चित्र कला संस्कृति का श्रृंगार है जिसके प्रयोग से वहाँ के रहने वालों के जीवन में सजीवता और स्फूर्ति का संचार हो जाता है। प्रतिदिन की लोक चित्रकला से वहाँ के रहने सहने का ढंग पता लगता है। अतः हरियाणवी कला को देखने से हरियाणा का जीवन दर्शन निकट से देखने परखने का अवसर प्राप्त हुआ।

हरियाणा के लोग अधिकतर आस्तिक हैं। जिनका 'राम' में

'थापा'
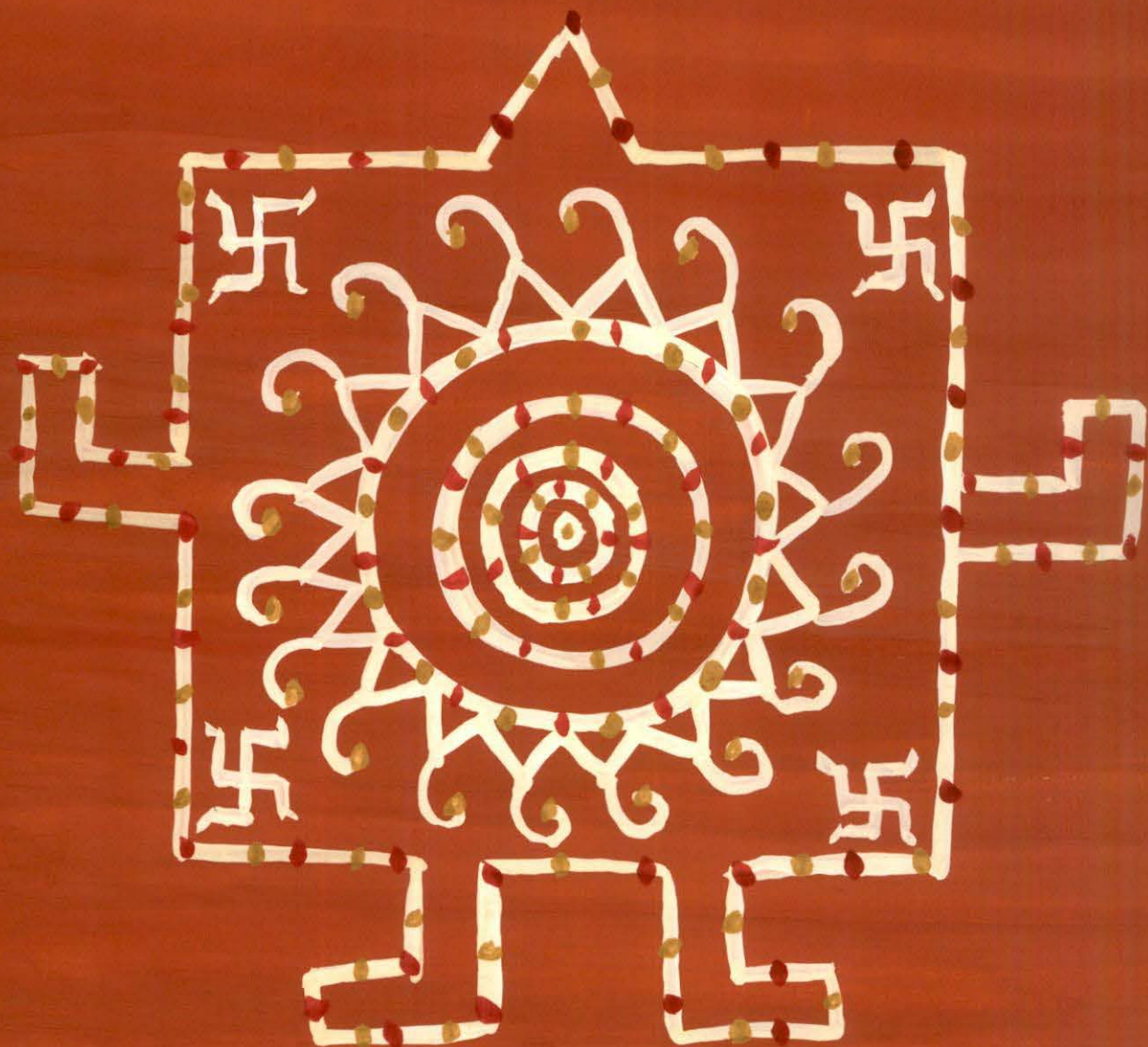
चित्र संख्या 19

घरवा थापा (हिसार)
चित्र संख्या 79 (2)

'फालियाँ'
शादी में बारना चीतना (गंगवा)
चित्र संख्या 19 (2)

अटूट विश्वास है । राम बणावै काम किसे के माँह के '' इस लोकोक्ति में आस्तिक भाव ही विद्यमान है । क्योंकि यहाँ राम का सगुण रूप अर्थात अवतार वाद ही प्रतीयमान है । ' कर ले सो काम, भज ले सो नाम ' मे निर्गुण राम की ओर संकेत है जो सभी जगह विद्यमान है । इस प्रकार हरियाणवी लोगों की आस्तिकता में राम के साथ अन्य देवी - देवताओं का भी स्थान है । ' मान्ने ते दे, ना भीत का ले' । यहाँ के लोग भाग्यवादी के साथ साथ आशावादी भी हैं । जैसे '' चाँच दी जिसने चोह चुग्गर बी देगा ' । इन सब मान्यताओं का रूप यहाँ पर मनाये जाने वाले तीज - त्यौहारों तथा रीति रिवाजों से प्रगट होता है । इन तीज - त्यौहारों पर बनाये जाने वाले चित्र इन सब मान्यताओं के प्रतीक होते हैं । अतः यदि हम इन चित्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करें तो हमें हरियाणवी संस्कृति को समझने में कठिनाई नहीं रहेगी । यह त्यौहार पर बनाये जाने वाले चित्र ही हैं जो हमें यहाँ के अन्ध विश्वास, आहार, वेश भूषा, देवी - देवता, पशु - पक्षी, जीवन दर्शन, परम्परावादिता, शिष्टाचार तथा नीति आदि के बारे में जानकारी करवाते हैं । इन चित्रों के विश्लेषण से ही हम जान पाते हैं कि हरियाणवी संस्कृति में धार्मिक आस्था प्रबल रूप से विद्यमान है ।

हरियाणवी संस्कृति पर आस पास के अन्य प्रदेशों का भी काफी प्रभाव है । हरियाणवी संस्कृति एक जीवन्त संस्कृति है । यहाँ के लोग साधारण जीवन व्यतीत करते हैं तथा यह आर्य भूमि मुख्यतः कृषकों एवं

1- जगन्नारायण वर्मा - हरियाणवी लोकोक्तियाँ शा विश्लेषण पृ 23

पशु पालकों को भूमि है । हरियानवी लोग प्रायः परिश्रमशील एवं भोले भाले व्यक्ति होते हैं । हरियाणवी संस्कृति का आदर्श सादा जीवन व उच्च विचार तथा पुरानी मान्यताओं व धर्म में आस्था है ।

सर्वेक्षण द्वारा पता लगा कि गाँवों में लोक चित्रकला का प्रचलन शहरों के मुकाबले अधिक है परन्तु वहाँ की स्त्रियां चित्रकला में ज्यादा निपुण न होने के कारण चित्रों का अधिकतर प्रतीक रूप ही अपनाती हैं । तथा शहरों में आधुनिकता का रंग धीरे धीरे इस लोकतत्व को नष्ट कर रहा है । इसका कारण पढ़ाई के कारण चेतना अन्ध विश्वासों का कम होना तथा वैज्ञानिक प्रगति के कारण देवी - देवताओं पर से विश्वास उठना आदि हैं । परन्तु हमें इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि यह हमारी अतीत से चली आ रही संस्कृति के ऐसे कुछ मूल प्रेरणा स्रोत हैं कि इनके नष्ट होने पर अपनी संस्कृति के मूल रूप को ढूँढना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव हो जायेगा ।
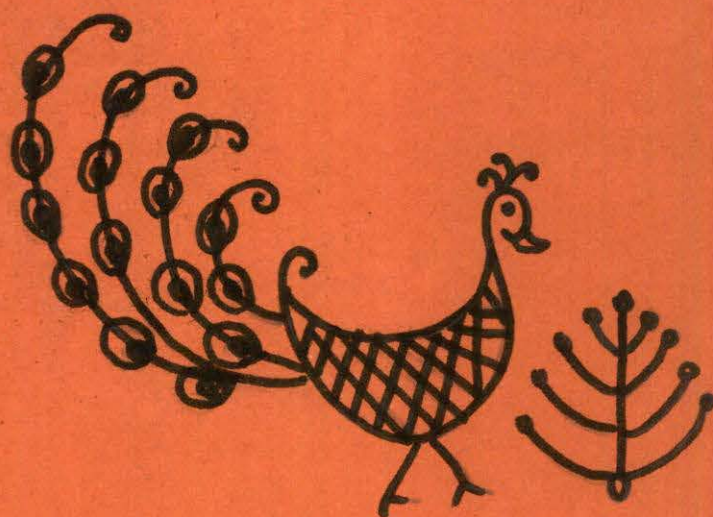
अध्याय षष्ठम

हरियाणा की लोक चित्रकला में गोदने की प्रक्रिया, सर्वेक्षण एवं उसका विवेचनात्मक विश्लेषण

अध्याय - षष्ठम

हरियाणा की लोक चित्रकला में गोदने, भरने व खोदने की प्रक्रिया एवं सर्वेक्षण, उसका विवेचनात्मक विश्लेषण :

प्रत्येक मनुष्य व समाज में सभ्यता के विचार तथा भाव पृथक रूप में मिलते हैं । प्रतीकों के अध्ययन से पता लगता है कि विचार तथा प्रतीकों का घनिष्ठ सम्बन्ध है । प्रतीकों से सभ्यता का अध्ययन हो सकता है । इसलिये एक ही बात के लिए भिन्न-2 सभ्यताओं में भिन्न प्रतीक बन जाते हैं । उदाहरणार्थ हाथ - पैर, मुँह में गुदना गोदवाने की बड़ी प्राचीन प्रथा है । जंगली लोगों तथा सभ्य समाज में भी

यही प्रथा है ।

गोदने की चित्रकला का सम्बन्ध अलंकरण से होता है । यह अलंकरण शारीरिक सुन्दरता वृद्धि के लिये किया जाता है । इसे श्रृंगार का प्रतीक भी माना जाता है । हरियाणा में लीला गुदवाने की बहुत प्राचीन प्रथा है । स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य वृद्धि के लिये नाक- गाल, ठुड्डी माथे पर एक से तीन बिन्दु तक गुदवाती हैं । हरियाणा की महिलाओं से साक्षात्कार करने पर ज्ञात हुआ कि ये बिन्दुओं का एक समूह अपने ठुड्डी पर टोने टोटके से निवारणार्थ अंकित कराती हैं । ताकि उनकी सुन्दरता को नजर न लगे । बच्चों को भी नजर से बचाने को माथे पर बिन्दु लगवा दिया जाता है । स्त्रियाँ जो गहनों से अपना श्रृंगार नहीं करतीं वे उस स्थान पर गोदना गोदवा कर सौन्दर्य वृद्धि करती हैं । कुछ क्षेत्रों में स्त्रियाँ इसे अलंकरण के रूप में मानती हैं । चाँदी सोने के अलंकरण मृत्यु के उपरान्त उतार लिये जाते हैं । पर ये गोदना के आभूषण उनके शरीर के साथ जाते हैं । यही इसका दर्शन है ।

गोदवाने में उनकी धार्मिक भावना भी निहित रहती है । राम तथा कृष्ण के भक्त भक्ति के कारण उनका नाम गुदवाते हैं कि सारा समय दिखाई देता रहे और अन्तिम समय में भी साथ ही जाये । 'सीता राम', 'राम- राम', 'राधेश्याम', 'हरे राम', 'हरे कृष्ण', 'जय बजरंग बली', 'ॐ' आदि गुदवाते हैं । कुछ पुरुष अपना नाम भी गुदवाते हैं क्योंकि युद्ध में मारे जाने पर उनको पहचानना आसान हो जाता था । स्त्रियाँ अपने पति का नाम क्योंकि वे ले नहीं सकतीं, गुदवाती हैं । स्त्री के सुहाग के रूप में मृत्यु होने पर उनके पति का नाम उनके साथ जाता है ।

इसमें धार्मिक भाव के साथ सामाजिक भाव जैसे जादू टोने -

टोटके की भावना भी रहती है । इसको बीमारी दूर करने का कारण भी माना जाता है । रोग के स्थान पर गोदना कराने से रोग बढ़ता नहीं है । इच्छित कार्य की पूर्ति जैसे सन्तान के पैदा होने पर शरीर गुदवाया जाता है । जो स्त्री जितना अधिक गोदना गुदवाती है, उतनी वीर व साहसी मानी जाती है । यद्यपि गुदवाने में बहुत कष्ट होता है फिर भी सौन्दर्य के प्रति आसक्ति तथा धार्मिक या सामाजिक आस्था उन्हें इसे करवाने को प्रेरित करती है ।

6 इसे कहीं भी कभी भी गुदवाया जा सकता है । कोई प्रतिबन्ध नहीं है । विशेष प्रकार की सुइयों द्वारा चुभो कर लीला गोदी जाती है । लीला गोदने का काम स्त्री पुरुष दोनों ही करते हैं । जिन्हें लिलिहारी कहते हैं ।[1]

चित्र रचना :-

इसमें सब प्रकार की आकृतियाँ चित्रित की जा सकती हैं । इसमें लोक चित्रकला की आकृतियों को भी चित्रित किया जाता है । भिन्न-2 आलेखन फूल पत्ती, चटकी मटकी, सीता रामनी, राम लक्ष्मण, सीता, चलनी - पहुचारी, घड़ी, आम, मोरनी, पाँची, स्वास्तिक, खाप्पर, बिच्छू, बूटा, फूल गमला, बबूल, आरसी तथा मोर मोरनी के विभिन्न रूप । चित्र नं० 80, 81, 82, 83/ 88, 89, 90, 91.

गोदने को हरियाणा में खिषना भी कहा जाता है । यह प्रथा भारत के आदिवासी लोक जीवन में बहुत मिलती है । विशेषकर मध्यभारत

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर-(रामकली)-12 अगस्त, 1984

गुदना के रूप आकार
चित्र संख्या 40
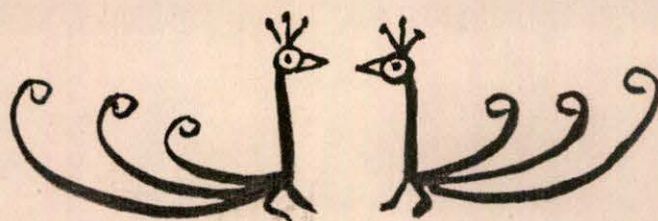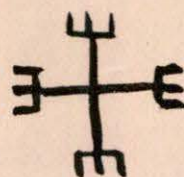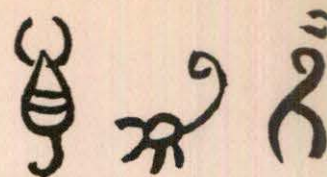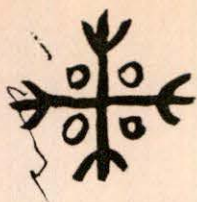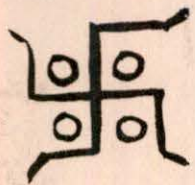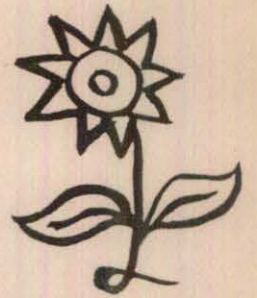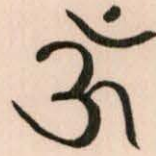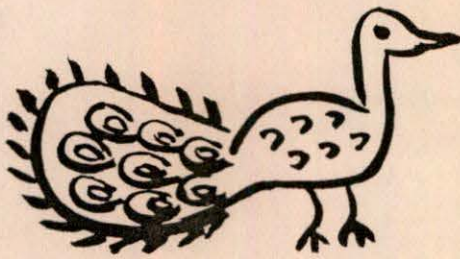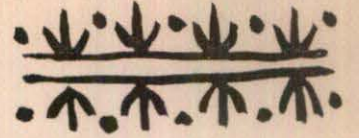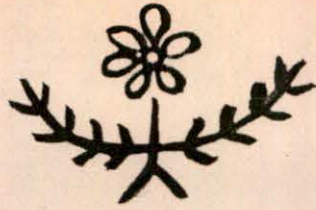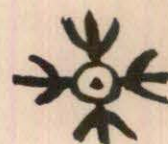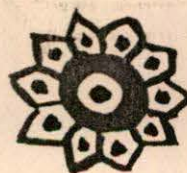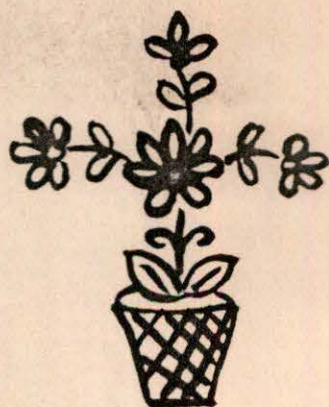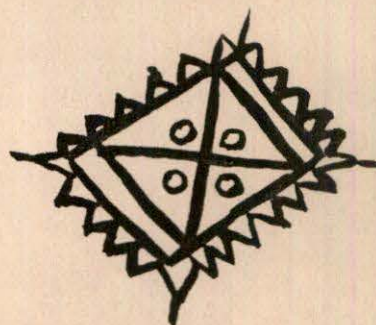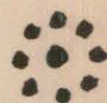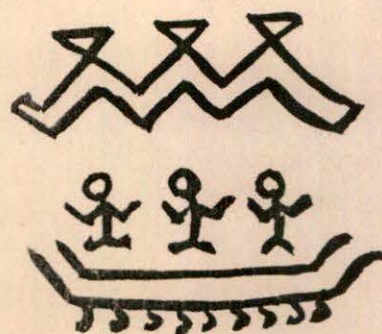
गुदना के रूप आकार
चित्र संख्या ४।

गुदना के रूप आकार
चित्र संख्या ४२
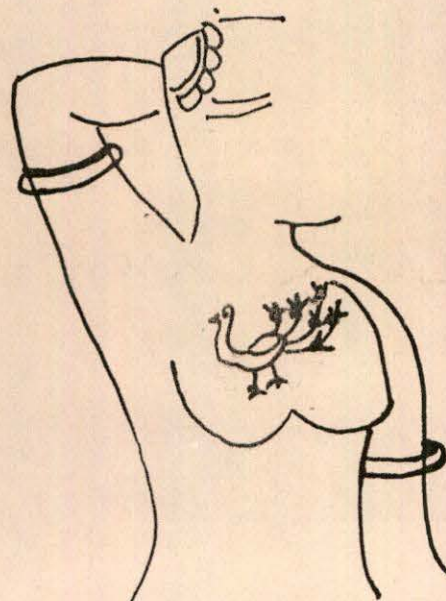
टांगों व छाती पर मोर गोदना
चित्र नं० 83

के ' बैगा ' व ' गोण ' जाति में यह अधिक प्रचलित है । उत्तरप्रदेश व यहाँ के धारु आदि वासियों में इसका प्रचलन है । राजस्थान व हरियाणा में इसका महत्व आज भी बना हुआ है । गुदना दिखाई दिये जाने वाले स्थानों पर ही होता है । गोदने का मुख्य आधार पवित्रता, धार्मिकता एवम आधिपत्य से सम्बन्धित रहा है । आजकल विदेशों में भी इसका प्रचलन बढ़ रहा है । यह पाप आर्ट के रूप में ' जाज' व बोटल गायेमा में लोक प्रिय हो रहा है ।

करनाल, हिसार, भिवानी, फरीदाबाद, जींद, सिरसा, कुरु-क्षेत्र, अम्बाला करल पूंडो कैथल आदि सब स्थानों पर सर्वेक्षण में प्राप्त कुछ चित्र दिये जा रहे हैं :-

चित्र रचना अभिप्राय :-

लीला गुदवाना कोई अनुष्ठान नहीं होता यह केवल मनोविनोद के लिए होता है । इस रचना के साथ कोई लोक कथा साहित्य नहीं है । जिस समय लिलिहारी गोदना कर रहा होता है तो दर्द होता है परन्तु स्त्री समुदाय भजन, गीत आदि गाने लगता है जिससे गुदवाने वाली का ध्यान इस ओर बँट जाता है ।

'' अच्छे लीला गोद मेरो सोक लिलिहारो ''
तथा
" गोदो गोदनहरो रे, गोदनवा बनाय के ''

हरियाणा में गोदना शहरी क्षेत्र की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में

1- डा० उमेश मिश्रा - लीला गोदना बैगा - गोंड़ जाति - लेखा

निम्न वर्ग में ज्यादा प्रचलित है । धीरे धीरे इसका प्रचलन कम होता जा रहा है जिसका कारण समाजिक गठन में परिवर्तन तथा शिक्षा का प्रचार है । जिससे पुरानी मान्यताएँ तथा लोला गोदने की प्रथा एवं अन्ध-विश्वास समाप्त होता जा रहा है । गाँवों में भी बड़ी - बूढ़ी स्त्रियों के शरीर पर ही गोदना देखा गया । स्त्रियों व छोटी लड़कियों में यह कम लोक प्रिय है ।[1]

हरियाणे के अतिरिक्त गोदना विभिन्न प्रदेशों की आदिवासी जातियों में अधिक प्रचलित है । स्त्री - पुरुष अलग अलग भागों पर गुदवाते हैं । कभी कभी भावावेश में सारा शरीर ही गुदवा लिया जाता है । बुन्देलखण्ड की आदिवासी महिलाएं चोली नहीं पहनतीं । अतः यहाँ स्त्रियाँ सारे शरीर को गोदने से ढकती हैं । अंकरण युक्त गोदना मुख, गाल, ठोढ़ी, कपाल, वक्ष, पीठ, हाथ, पिण्डलियाँ, नाभि स्थान, जांघों आदि पर किया जाता है ।[2]

अवध में भी विशेष रूप से गोदना, अंकरण भावना से, धार्मिक भावना से मनोविनोद की भावना से करवाया जाता है ।

कुछ समाजों में यह एक निषेध या ' आहार्यता ' के रूप में चित्रित होता है । भीलों में लड़की बगैर गुदने के मण्डप में नहीं बैठ सकती ।[3] मध्य -

---

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर - 14-5-84

2- कु0 रेनू धवन-बुंदेलखंड की लोक चित्रकला का समीक्षात्मक अध्ययन पृ0 216

3- डा0 जय सिंह प्रदीप - फैशन की माँग बन रही है आलेखन या गोदना- साप्ताहिक हिन्दुस्तान 25-11-84 पृ0 - 23

भारत व राजस्थान की भीलों में भी यह प्रथा है । यहाँ आँखों के दोनों ओर भी आड़ी - लकीरें गोदी जाती हैं । बस्तर, संथाल व गोंड जन - जातियों में इसका बहुत अधिक प्रचलन है । इसके अतिरिक्त बिहार में यह साहस व आकर्षण का प्रतीक माना जाता है । एक भोजपुरी गीत में है -

सासु के दांत रे बतीसी
बहू के बांहें गोदना,
ससुर जेवना ना जेवले
मोर निहारे ला गोदना ।
जाहु हम जानिती ससुर
नीहरब तू गोदना
ससुर नाही रे गोदइती
अपने बांही गोदना ।।

पश्चिमांचल प्रदेश में सुन्दर स्त्रियाँ अपनी शील रक्षा के लिये मुख को आड़ी तिरछी बेढंगी रेखाओं से कुरूप करवा लेती हैं[1]।

महाराष्ट्र व गुजरात में शिव सेना अपनी रक्षा के लिये कोबरा की आकृति हाथ पर गुदवाते हैं ।[1]

हिन्दुस्तान के अतिरिक्त दूसरे देशों जैसे चीन, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका इटली आदि में गुदना उत्कृष्ट कलाओं की श्रेणी में मान्यता प्राप्त कर रहा है । चीन में ' एक्यूपंचर ' की प्रक्रिया गुदने से मिलती जुलती है जो अब सारे विश्व में लोक प्रिय हो रही है ।

1- जयसिंह प्रदीप- आलेखान या गोदना-सा हिन्दु0 25-9-85, पृ0-24
2- वही

" गोदने का प्रचार ग्रेट ब्रिटेन में भी बहुत अधिक हो रहा है। यहाँ पर एक गोदना क्लब भी है जहाँ प्रतिवर्ष गोदना प्रतियोगिता होती है। जहाँ स्त्रियाँ व पुरुष अपने ज्यादा से ज्यादा कठिन नमूनों में गुदे शरीरों का प्रदर्शन करते हैं। इसमें इंग्लैंड के एक व्यक्ति विलफर्ड हार्डी का केवल चार प्रतिशत शरीर बिना गुदा था। गालों के अन्दर, जिहवा, मसूढे तथा भवें भी गुदी हुई थीं।"[1] अत: गोदना जो भारत की एक पुरानी कला थी आज विदेशों में अधिक लोक प्रिय होती जा रही है।

हरियाणा में प्रत्येक पर्व मनाने में आस्था है। यहाँ धार्मिक अनुष्ठानों व संस्कारों आदि पर सूखे रंगों से भरने की परम्परा पुरानी चली आ रही है। कोई भी पर्व या त्योहार हो कच्चे घर में गोबर से लिपे फर्श या पूजा के स्थान पर चौक अवश्य पूरा जाता है। या सबका प्रतीक स्वास्तिक चिन्ह ही बनाया जाता है। ऐसे अवसरों पर विशेषकर दीवाली आदि पर घर के सभी स्थानों, आंगन, चूल्हा, चक्की-कोठी (अनाज व और सामान रखने का स्थान) घर के बाहर चबूतरों को अच्छी प्रकार लीपा पोता जाता है। फिर रंगों से डिजाइन बनाकर सजाया जाता है क्योंकि गोबर से लिपे कच्चे फर्श को सूना छोड देना अपशकुन माना जाता है।[2] विशेषकर राजस्थान में बनाये जाने वाले कलात्मक माण्डनों में

1- संजय सयानी - साइंस आफ दि टाइम्स - इंडियन एक्सप्रेस- 2-12-84

2- जोगेन्द्र सक्सेना - " माण्डना, मेंहदी और रंगोली क्या इसका सम्बन्ध तन्त्र से है ? " - साप्ताहिक हिन्दुस्तान - 28 अक्टूबर, 1984 पृ० 43

भिन्न भिन्न प्रतीकों की अति सुन्दर रचना होते हैं । यहाँ की स्त्रियाँ पूरना पूरने में दक्ष होती हैं । इसके लिये उन्हें किसी भी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती ।

डा० सत्येन्द्र ने[1] भरने की लोक चित्रकला की परिभाषा निम्न शब्दों में की हैं - भरना कोई पारिभाषिक शब्द नहीं है, पर यह चौतने की विशेष क्रिया अवश्य है । जब कोई चित्र रंगों से भरकर बनाया जाता है तो उसे भरने की क्रिया के अन्तर्गत रखा जाता है । भरने की कला का उपयोग उत्सवों, व्रतों और अनुष्ठानों पर तो होता ही है, इसके अतिरिक्त अलंकरण व मनोविनोद के लिये भी किया जाता है । यह क्रिया निम्नलिखित त्योहारों पर हरियाणा में की जाती है । -

भैया दूज, सलोमणा, विवाह, बच्चा होने पर, देवी पूजन, देव-उठणी ग्यारस, सतनारायण की कथा, करवा चौथ, विवाह इत्यादि ।

भैया दूज पर शामगढ के जाट परिवार में पहले धरती को गोबर से लीपा जाता है । तब उस पर एक पटडा रखा जाता है । पटडे को गोबर से लीप कर उस पर हल्दी व आटे से चौक लगाया जाता है । फिर भाई को पटडे पर खड़ा करके टीका किया जाता है । खोपा (गरी का गोला) तथा पिसा लड्डू भाई के हाथ में दिया जाता है । चित्र/फलक नं० 84/92

हिसार में पटडे को धोकर हल्दी, चावल के घोल से पटडे पर चारों ओर दो - दो लाइनें (हाथ की दो उंगलियों से) लगाई जाती हैं तथा

1- भारतीय साहित्य - अक्टूबर - 1960 पृ 332

'चौक'
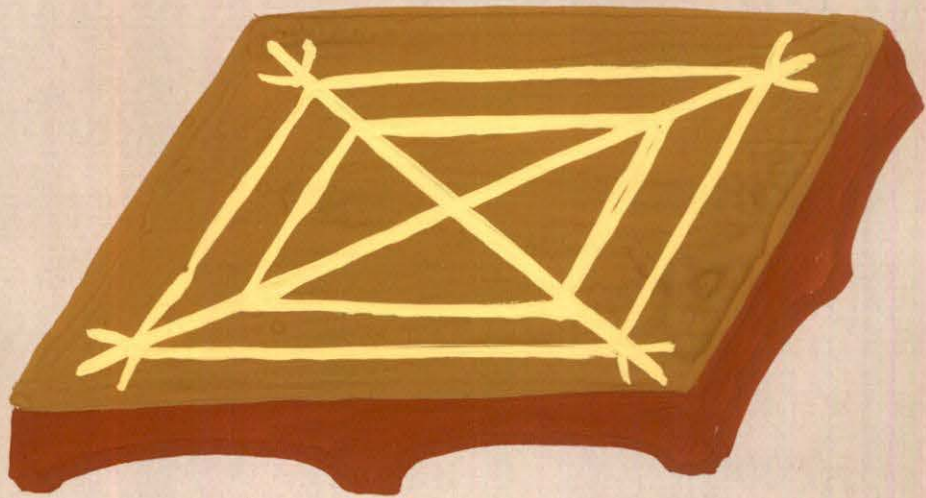
भाई दूज (शामगढ़)

चित्र संख्या ८५

बीच में स्वास्तिक बनाया जाता है । चित्र / फलक नं० - 85/93

मद्मुरी गाँव में ब्राह्मण परिवार में फर्श के लीप पोत कर आटे रोली से दो वर्ग बनाये जाते हैं । एक पर राधेश्याम दूसरे में सीताराम लिखकर पूजा करते हैं । चित्र/फलक नं० 86/94

विवाह में लड़का लड़की के पट्टे के नीचे चौक आटे से लगाया जाता है । चित्र/फलक नं० - 87/95

पट्टे के नीचे शादी में डाबड़ा गाँव हिसार में बहिन आटे रोली का चौक लगाती है । फिर उसके ऊपर पट्टा रखा जाता है । चित्र एवम फलक नं० - 88/96

भिवानी में भातियों के पट्टे के नीचे चौक लगाया जाता है तथा पट्टे पर उनको बैठाया जाता है । चौक आटे व रोली से लगाते हैं। चित्र/फ89/97

फरल गाँव में बहू के गृह प्रवेश के समय बामन द्वार पर आटे रोली व हल्दी से चौक लगाता है । चित्र/फलक नं० 90/98

किशनपुरा हरिजन परिवार में शादी पर गेरु से दीवार पर चौरस आकार में ऊपर मुह जैसी शक्ल का देवता बनाया जाता है । बीच में बिन्दिये चारों ओर लकीरें खींची जाती हैं जो कुल देवता का प्रतीक बन जाता है । चित्र एवं फलक नं० - 91/99

बच्चा होने पर :- गंगवा हिसार में बच्चा होने पर 10 दिन बाद जच्चा को कमरे से बाहर निकाला जाता है । नाम निकलवाया जाता है । हवन करते हैं तथा थापा मांडते हैं । फर्श चौक रोली से लगाया जाता है तथा उस पर तिउल रखने जाती है । औरतें गीत गाती हैं तथा जच्चा धोक मारती है । चित्र 92/100

'चौक'

भाई दूज (हिसार)

चित्र संख्या ८५

- चौक, भाई दूज (मदपुरी)

चित्र संख्या ४६
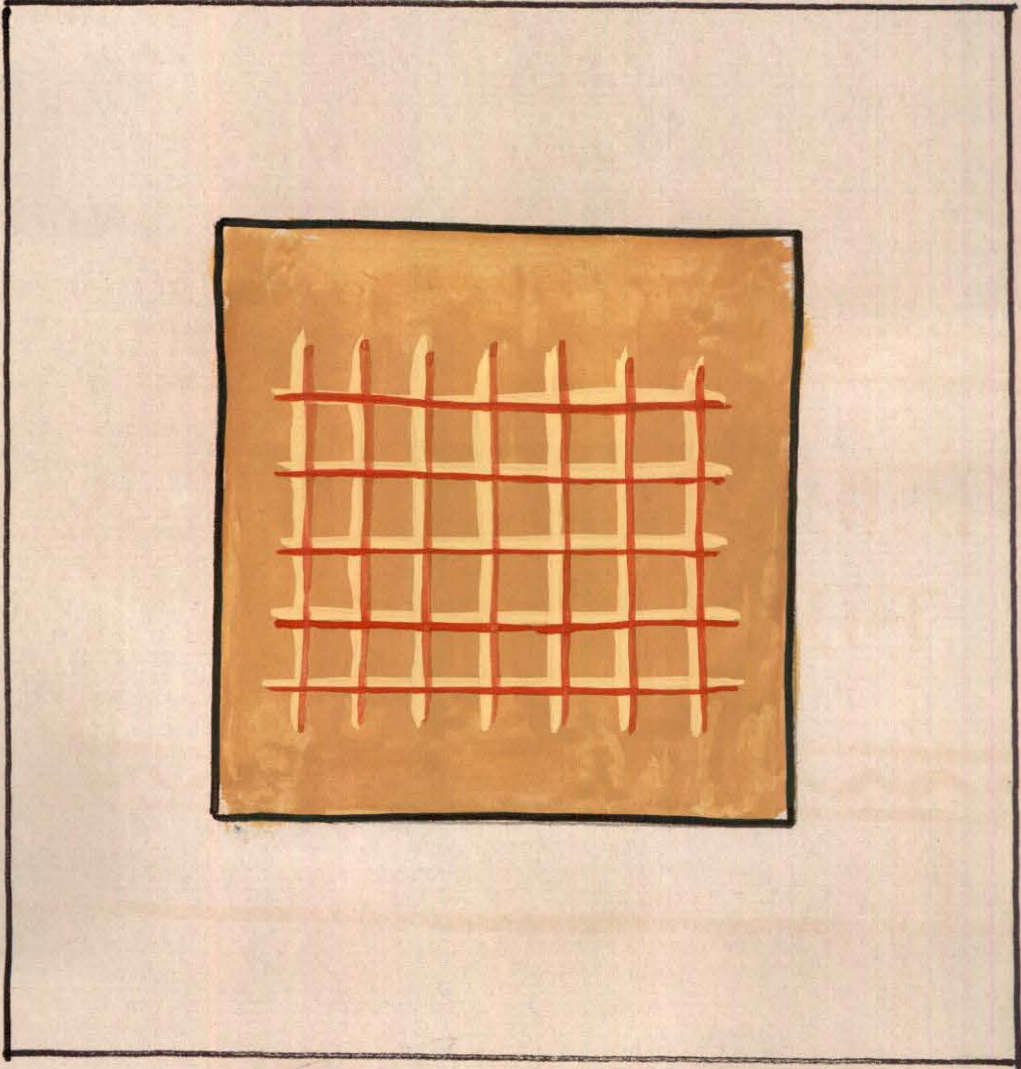
शादी व
चौक – भाई दूज (डाबड़ा)
चित्र संख्या 87

चौकं – विवाह परं (डाबड़ा)
चित्र संख्या ४४

चौक विवाह पर (भिवानी)
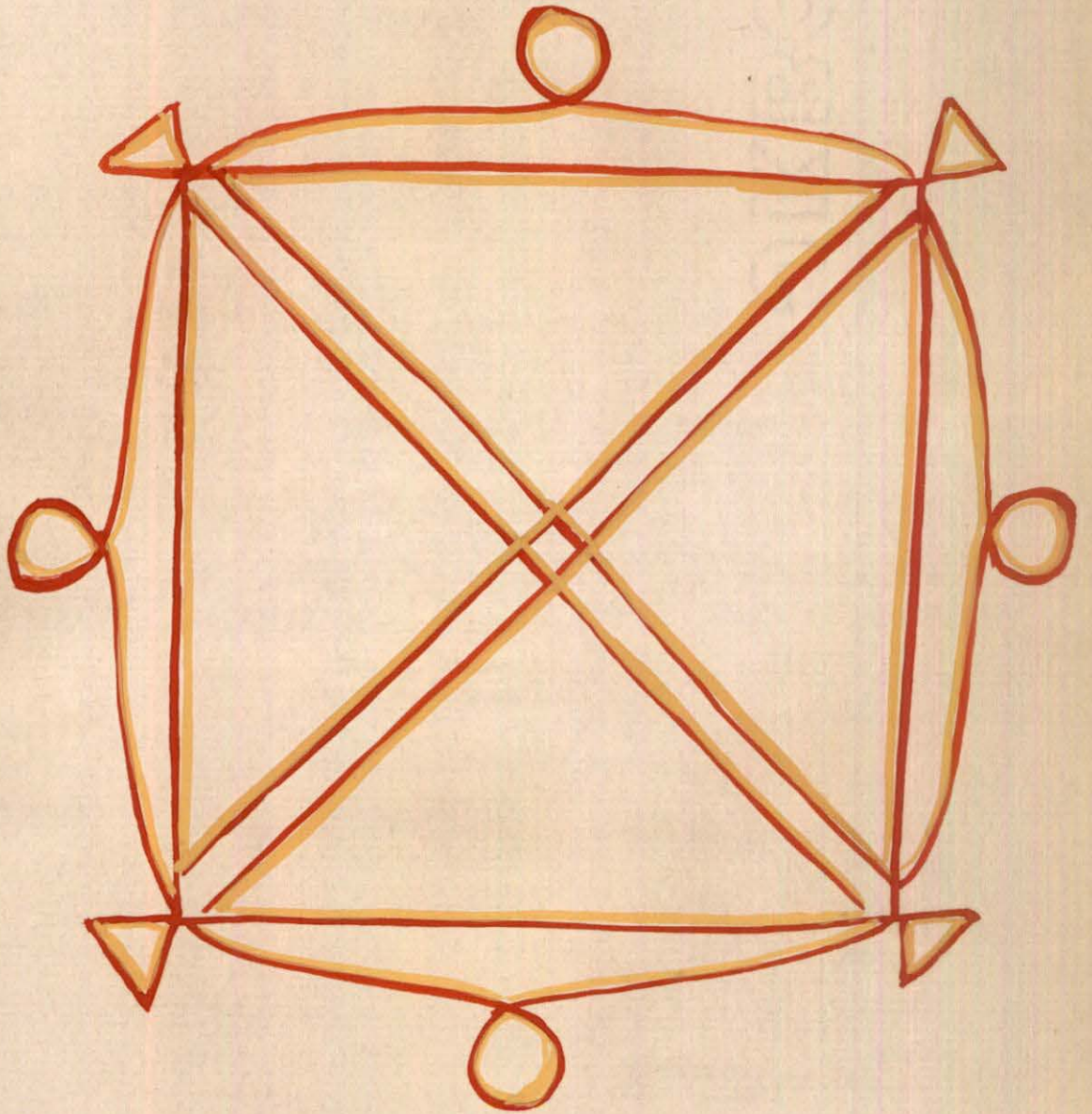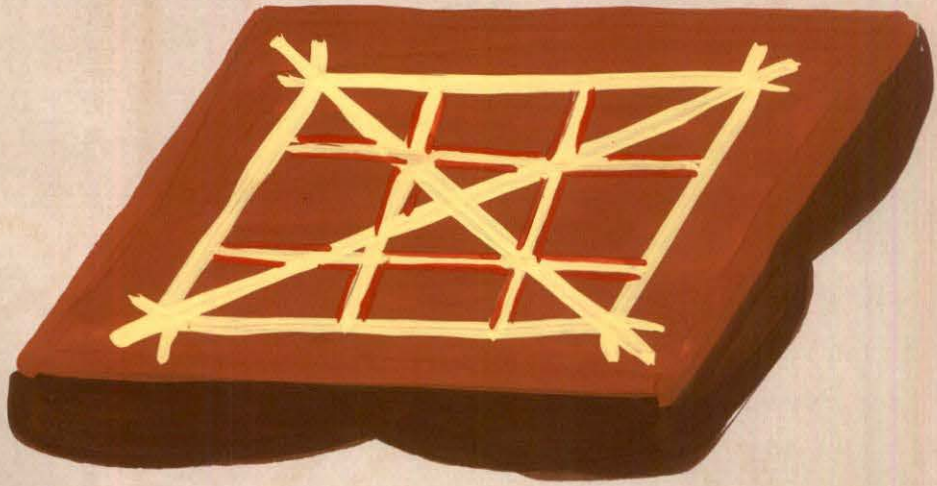
चित्र संख्या 41

'चौक'
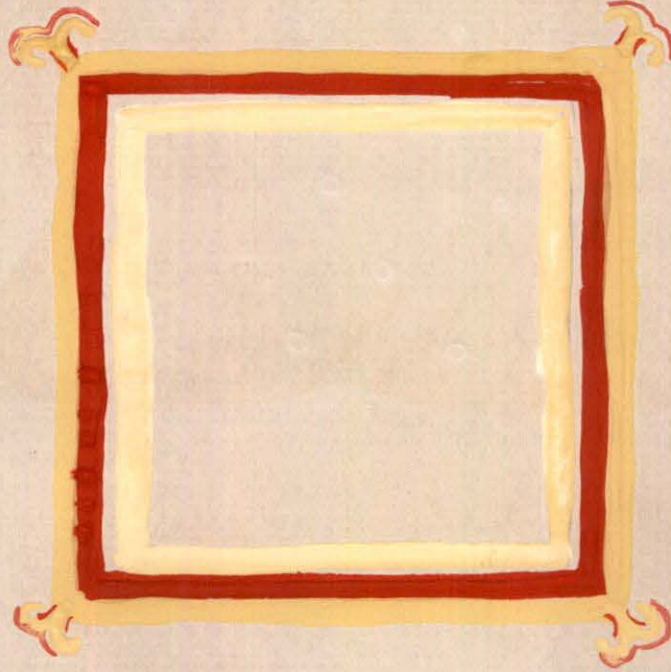
गृह प्रवेश (फरल)

चित्र संख्या १०

शादी (किशनपुरा)

चित्र संख्या ९१

फलक नं 100
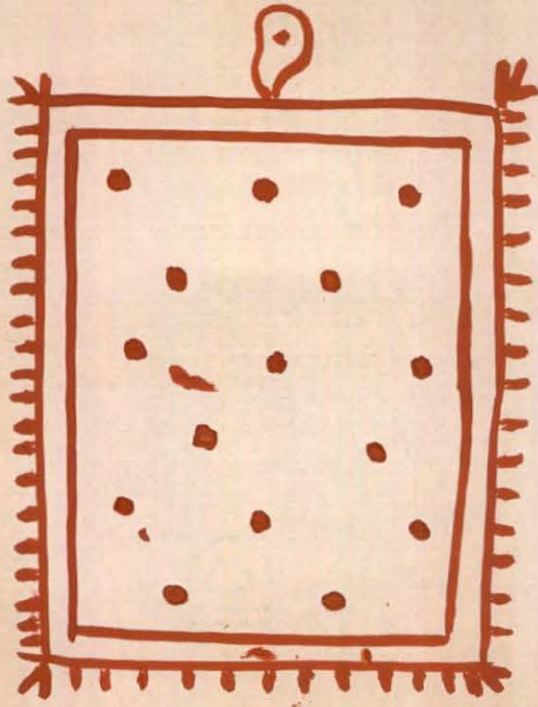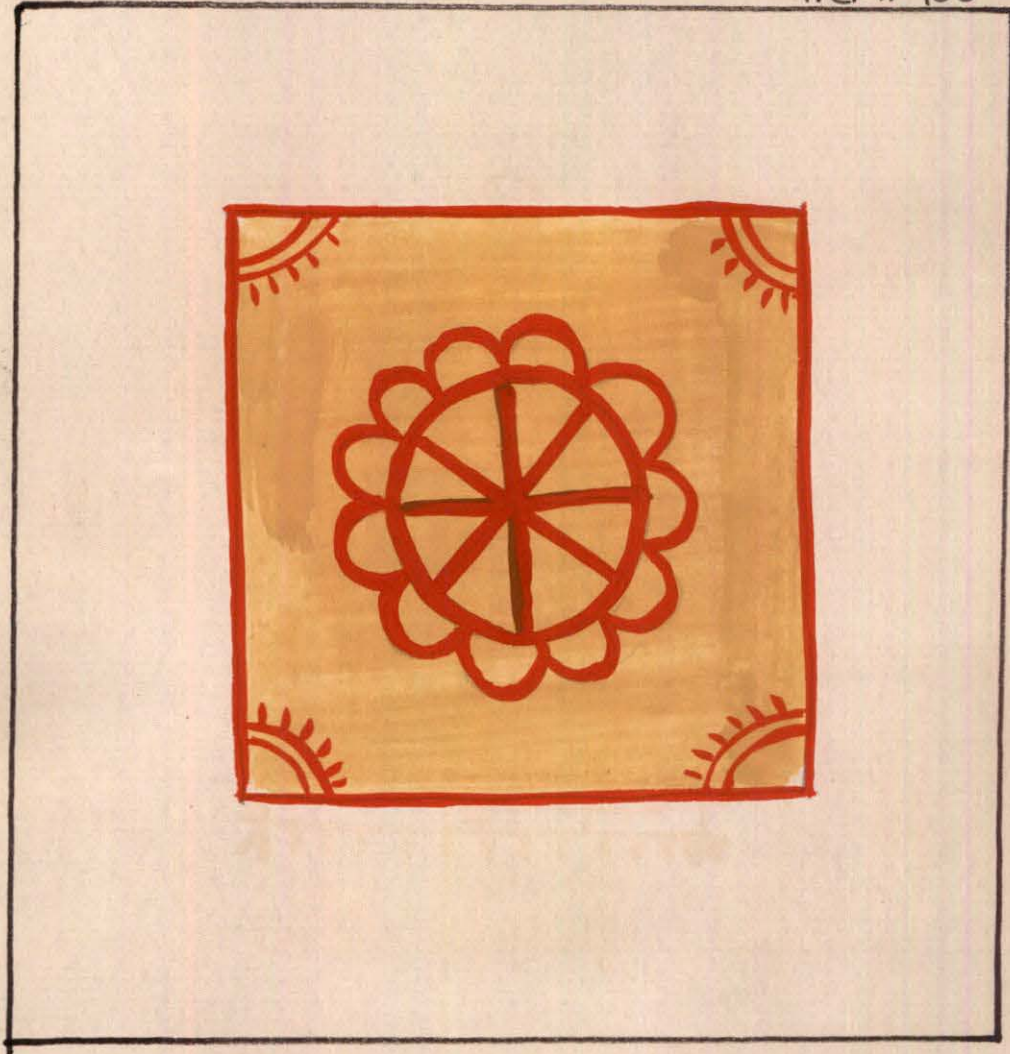
चौक - बच्चा होने पर (गंगवा)

चित्र संख्या १२

देवी पूजन पर जमीन को पीत लीप कर देवी की फोटो या थापी के नीचे आटे से स्वास्तिक का चौक लगाया जाता है तथा उसमें हल्दी भी भरी जाती है । चित्र/फलक नं० 93/101

देवउठणी ग्यारस :-

ग्यारस पर फरल गाँव में बनिये परिवार में बड़ चूल्हे पर तथा कमरों में फर्श के साथ साथ दीवार को चार पाँच इन्च गेरु से लाल लाइन लगाई जाती है । थोड़ी थोड़ी दूरी पर पिसे चावल के आटे के घोट से या सूखी लाड़िया से 'डोरे' डाले जाते हैं । ऊपर एक बिन्दु लगाकर नीचे एक लाइन कमरे के चारों ओर लगाये जाते हैं जो देखने में अति सुन्दर प्रतीत होते हैं । चित्र / फलक नं० - 94/102

फरल गाँव में बनिये आदती फर्श व दीवार पर होई व साँझी पर सुन्दर सुन्दर फूल बनाते हैं तथा उसमें रंग भी भरते हैं । चित्र/फलक नं० 95/103

फरल में राजपूत परिवार में देव उठणी ग्यारस पर चावल पीस कर फर्श को गोबर मिट्टी से लीप कर चौक लगाया जाता है । जिसमें देवता का चित्र बनाया जाता है । चित्र/ फलक नं० - 96/104

करवा चौथ :-
----------- स्थान को गोबर से लीप कर आटे से चौक लगा कर उस पर करवा रखा जाता है । चित्र/ फलक नं० - 96 (1) 105

सतनारायण की कथा में :-

सतनारायण की कथा में नवग्रह पट्टे पर आटे, रोली, हल्दी, चावल फूलपत्ती, सुपारी आदि से बनाये जाते हैं । नवग्रह जहाँ भी सत्यनारायण की कथा होती है, एक जैसे ही बनाये जाते हैं । हवन की वेदी को भी आटे हल्दी - रोली आदि से सजाया जाता है ।
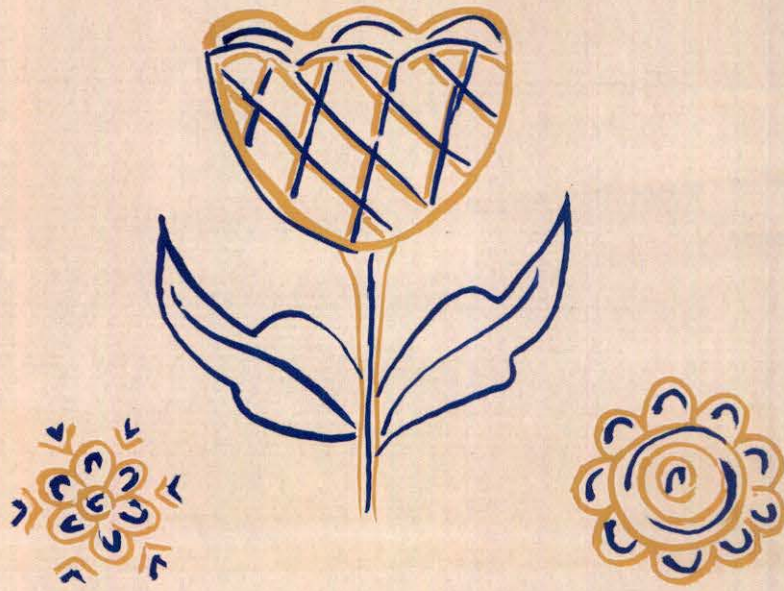
'थापा'
चित्र संख्या ९३

'चौक'

'डोरे' देउठणी ग्यास (फरल)

चित्र संख्या १५

अहोई व सांझी पर चित्रित फूल व पक्षी
(फसल)

चित्र संख्या 95

देउठणी ग्यायस (फरल)
चित्र संख्या ९८

चौक — करवाचौथ

चित्र संख्या 96 (i)
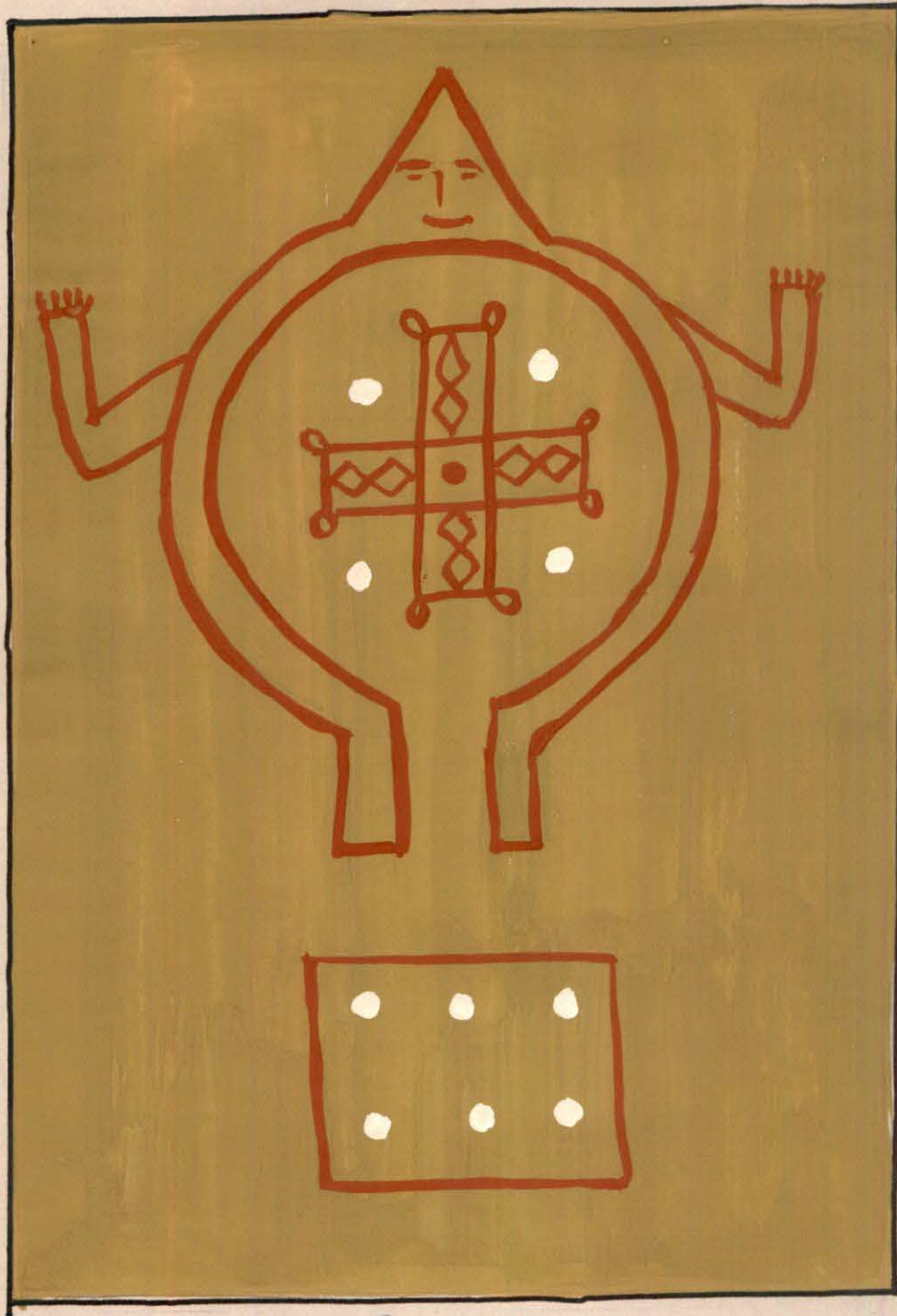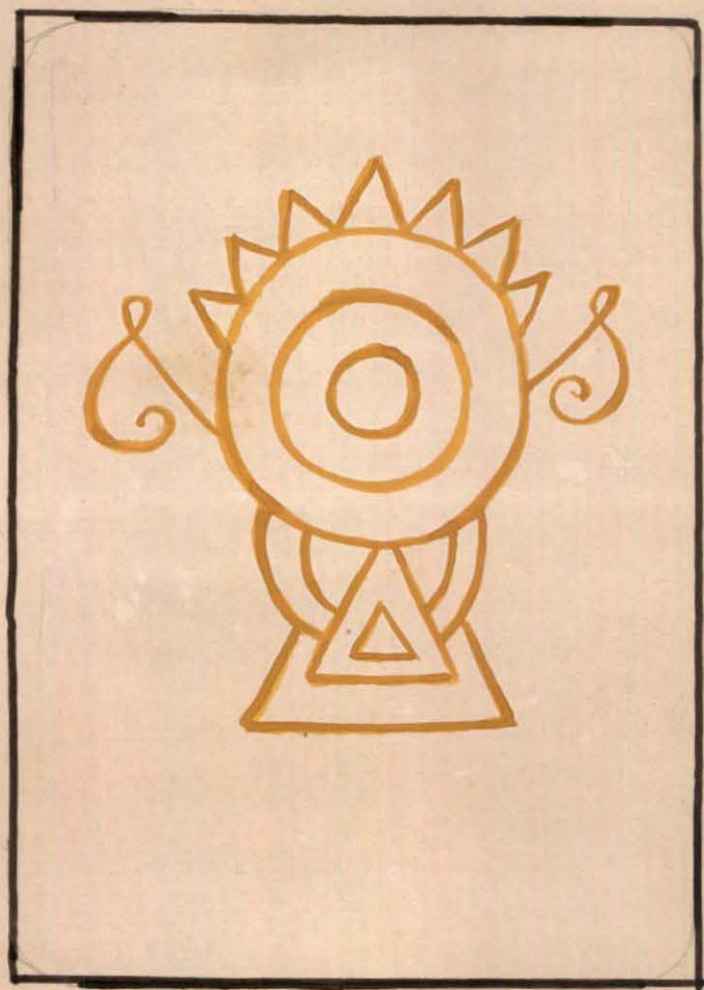
विभिन्न प्रकार के चौक :- हरियाणा में ही नहीं सम्पूर्ण भारत में संस्कारों व्रत कथाओं आदि पर ' पूरणा ' पूरने का या चौक पूरने की प्रथा है । चौक आटे, हल्दी से भूमि पर घर की स्त्रियाँ या पण्डित व कभी कभी बहिनें लगाती हैं ।

चौक में निहित अभिप्राय :-

शुभ कार्य करते समय देवी देवता या पूज्य अतिथि के स्वागत में चौक लगाया जाता है अर्थात ज्यादा मान सम्मान देने को चौक लगाते हैं या शुभ कार्य करते समय विघ्न के भय से बचने के लिए चौकों की रचना की जाती है । 16 संस्कारों में अन्त्येष्ठि संस्कार ही अशुभ है । अशुभ संस्कार पर चौक नहीं लगाया जाता । चौक पूरने का उद्देश्य चारों दिशाओं के देवताओं से शुभ कार्य सम्पन्न करने हेतु प्रार्थना की जाती है । देवताओं के प्रसन्न होने में ही मनुष्यों का कल्याण है । ऐसा यहाँ के निवासियों का दृढ़ विश्वास है । यह इस विश्वास का प्रयोगात्मक रूप है । चौक आटे से पूरा जाता है । क्योंकि ये शुभ माना जाता है । रोली और हल्दी से चौक लगाया जाता है क्योंकि ये आकर्षक व शुभ रंग माने जाते हैं । चौक में ज्यादातर स्वास्तिक का प्रयोग किया जाता है । चौक का प्रचलन उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा सबसे ज्यादा बंगाल व दक्षिणी भारत में है जहाँ प्रतिदिन सुबह सुबह घर के बाहर प्रत्येक स्त्री अल्पना लगाती है । यहाँ इसके लगाने का उद्देश्य घर को कुदृष्टि से बचाना होता है । घर आने वाले अतिथि के स्वागत के लिए तथा सौंदर्य बढ़ाने के लिए अल्पना या पूरत पूरी जाती है । देवताओं के आह्वान पर उनके स्वागत के लिये पूजा स्थल पर अल्पना या चौक लगाया जाता है ।

खोदने की चित्रकारी :-

खोदने की चित्रकारी बहुत प्राचीन है । पृथ्वी को खोदकर भिन्न

भिन्न प्रकार के आलेखान बनाये जाते हैं । प्राचीन काल में मानव जिस समय बिलकुल असभ्य अवस्था में जंगलों में रहता था, उस समय उसका काम केवल पेट भरना था । वह जंगली पशुओं का शिकार करके पेट भरता था । खाली समय में उन जानवरों के विभिन्न रूपों में तथा अपने भावों की अभिव्यक्ति के अपनी गुफाओं व कंदराओं की भित्ति पर रंगीन मिट्टी व नुकीले पत्थरों की सहायता से खोदकर सजाता था । तथा उन शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिये उनकी पूजा किया करता था । प्रागैतिहासिक युग की ऐसी अनेक गुफाएँ और चट्टानें उपलब्ध हुई हैं जिन पर खुदे हुए चित्रों के देखकर आदिम मानव की कलाभिरुचि का सहज ही परिचय मिलता है ।

खोदने की कला का धार्मिक महत्व इतना नहीं है जितना मनो-विनोदार्थ रचना का है । हरियाणा में भी भी आलेखान व भूमि चित्र खोदकर या उभार देकर भी बनाये जाते हैं । गाँवों के मकानों के चौक आंगन प्रायः कच्चे होते हैं जिसमें भी भी खोद कर गोबर से लिपाई करते समय उभार कर आलेखान बनाये जाते हैं । लीपने में गोबर की सहायता से हाथ के ऐसे वक्र दिये जाते हैं कि लोक कलाकार की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते । ग्राम्य जीवन में इसका महत्व अद्वितीय माना जाता है । गाँवों के मकान कच्चे होते हैं । उन्हें गोबर से लीप कर सुन्दर बनाया जाता है । आले, खिड़की आदि के किनारे खोद कर बहुत सुन्दर आकृतियाँ बनाई जाती हैं । इसके अतिरिक्त पहले घर के अन्दर कमरों में तथा बाहर खूब फूल बूटे बनवाने का प्रचलन था । लकड़ी पर भी खुदाई का काम अति सुन्दर होता था । घर के दरवाजों की चौखटों पर विशेषकर मुख्य द्वार तथा चौखट पर सुन्दर खुदाई का काम देखने के मिलता है । लकड़ी पर खुदाई का काम अति कठिन होते हुए भी लोग खूब पैसा लगा कर जतन से

करवाया करते थे। खुदाई का काम मुगलों के समय में काफी हुआ क्योंकि मुसलिम कलाकार बड़े परिश्रमी तथा मेहनती कलाकार होते थे तथा बड़े-बड़े राजाओं नवाबों के पास पैसे की कमी भी नहीं होती थी।

सर्वेक्षण के मध्य देखा गया कि आज भी पुराने पुराने करीब डेढ़ सौ, दो वर्ष पुराने मकानों पर सुन्दर चित्रकारी व लकड़ी पर खुदाई का प्रशंसनीय काम हुआ है। चित्र - 97/106

फरल में कपूरी कढ़ाराम बनिये का मकान जो करीब 82 वर्ष पुराना है, दो मंजिल का है। बाहर दो तरफ पूरे मकान पर इतनी अच्छी चित्रकारी (हाथ से) तथा दरवाजे व चोखटों पर खुदाई का काम हुआ है, जिसकी जितनी प्रशंसा की जाये कम है। सर्वेक्षण में साक्षातकार के मध्य पता लगा कि ये मकान हिन्दू कारीगरों द्वारा बनाये गये हैं जिनमें भरे गये रंग भी आज वैसे के वैसे हैं और चित्रकला का अनोखा नमूना है। दीवारों पर पौराणिक कथाओं पर आधारित चित्र चित्रित हैं। चित्र/फलक नं० 98/107

इसी प्रकार सतनारायण - रामस्वरुप का मकान भी अनोखी चित्रकारी से भरपूर है।

फरल में ही दुलिये सलिये का मकान भी अपनी चित्रकारी के लिए प्रसिद्ध है। चित्र/ फलक नं० - 99/108

पून्डरी में श्री ज्योति प्रसाद के मकान पर भी सुन्दर चित्रकारी

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर - फरल गाँव 11-2-85

खुदाई व चित्रकारी
चित्र संख्या 97

मकान पर चित्रकारी (फरलं)
चित्र संख्या ९९

देखने को मिली। चित्र/ फलक नं० - 100/109

इसी प्रकार श्री रघुवीर के मकान की चित्रकारी भी सुन्दर देखने को मिली। इन्हें और फरल के मकानों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही कलाकारों ने यह चित्रकारी की है। परन्तु फरल के मकान पूड़ी के मकानों से ज्यादा पुराने बने लगे।

पूड़ी में एक मकान में जिसका केवल बाहर का दरवाजा ही रह गया है - कला का अद्‌भुत नमूना है। भग्नावस्था में भी शान से खड़ा प्रशंसा का पात्र है। चित्र / फलक नं० - 101/110

घर के बाहर चित्रकारी (पुट्टी)

चित्र संख्या 100

लकड़ी पर खुदाई का काम (पुंडरी)
चित्र संख्या 101
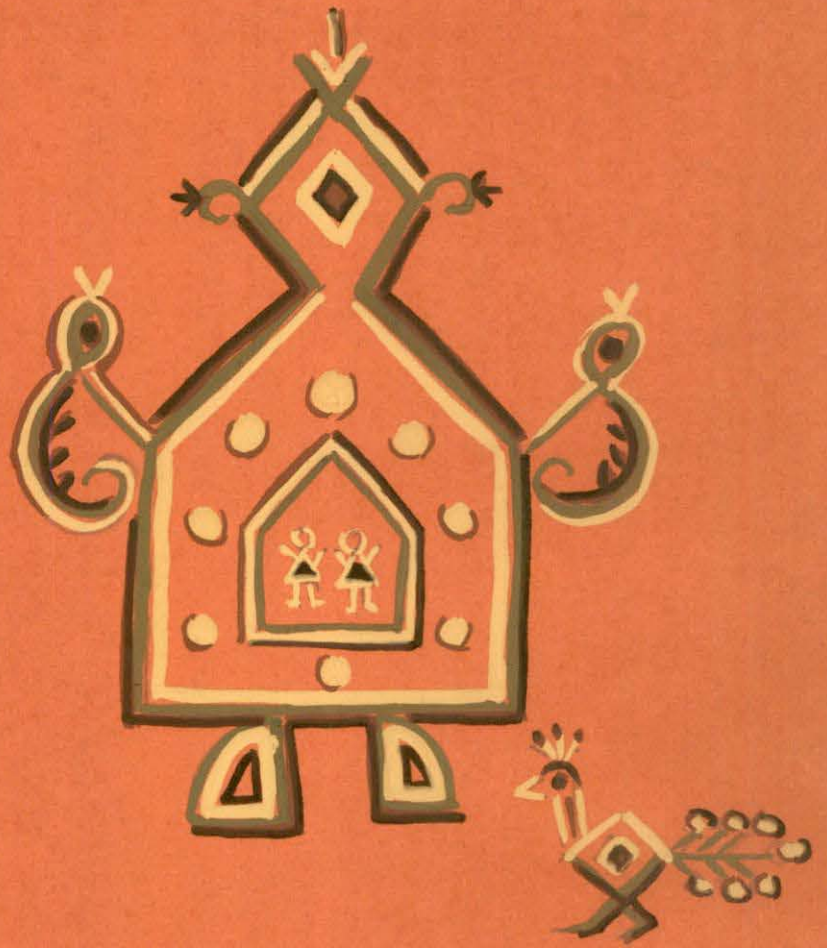
अध्याय सप्तम

हरियाणा की लोक चित्रकला में चिपकाने व अन्य प्रकार की कला की प्रक्रिया, सर्वेक्षण एवं उसका विवेचनात्मक विश्लेषण

अध्याय - सप्तम

हरियाणा प्रदेश की लोक चित्रकला में चिपकाने व अन्य प्रकार की कला की प्रक्रिया एवं सर्वेक्षण, उसका विवेचनात्मक विश्लेषण :

बहुत से पर्व, अनुष्ठानों आदि पर दीवार पर या फर्श पर चित्र बनाने की अपेक्षा चित्रों को या विभिन्न वस्तुओं को चिपका कर भी बनाया जाता है। इसमें धार्मिक तथा मनोविनोदार्थ दोनों ही तत्वों की पुष्टि होती है।

चिपकाने की कला निम्न त्योहारों या अनुष्ठानों से सम्बन्ध है :-

1- साँझी, सथिया, गोबरधन, छठी, जन्माष्टमी,

दशहरा, विवाह, दीवाली, होली आदि।

1- साँझी :-

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष के आरम्भ में पहले नौ दिन अर्थात नव रात्रों के दिनों में देवी की विशेष रूप से पूजा होती है। इसकी स्थापना घर की किसी दीवार पर की जाती है। स्थापना से पूर्व ही मिट्टी से देवी के सभी अंग प्रत्यंग जेवर बना लिये जाते हैं। उन पर रंग लगाकर सुन्दर बना लिया जाता है। रंगने में खड़िया, या पेवड़ी आदि का प्रयोग किया जाता है। फिर गोबर से दीवार पर चिपकाया जाता है। इसका खूब श्रृंगार किया जाता है। श्रृंगार करने में टटी, चमकीली, चूड़ियाँ, कौड़ी, सितारे, प्लास्टिक के फूल आदि बड़ी कलात्मकता के साथ इसे और सुन्दर बनाने के लिए चिपकाये जाते हैं। मिट्टी के बने फूल जिन पर सफेद रंग किया गया होता है, हरे गोबर पर खूब ही फबते हैं। ओढ़नी के लिए कागज अथवा कपड़ा, जिस पर खूब किनारी या सुनहरी - रूपहरी पन्नी लगाई जाती है। साँझी के साथ बनने वाली दूसरी आकृतियाँ उसकी नायन जिसका नाम धूंधा और काला चोर आदि भी मिट्टी के फूल, गोबर पर चिपका कर बनाये जाते। सादे गोबर की विभिन्न आकृतियाँ भी दिखाई देती हैं कि वे चिपकाई गई हैं। इनकी नौ दिन पूजा करने के बाद उन्हें उतार कर नदी जोहड़ आदि में प्रवाहित कर दिया जाता है तथा उसके स्थान पर साँझी का भाई गोद्ध बनाया जाता है। इसमें गोबर से ही घोड़े पर सवार एक आकृति बनाई जाती है। जिस पर वही मिट्टी के फूलों बने रखी फूल , हरी घास चिपका कर सुन्दर बनाया जाता है। इसे भी किसी दूसरी जगह आंगन की दीवार पर बना दिया जाता है जो साल भर बना रहता है। कहीं कहीं मिट्टी से बनाते हैं और ऊपर से सफेदी कर दी जाती है। यह चित्र बने बड़े ही सुन्दर लगते हैं।

हरियाणा के प्रत्येक गांव के प्रत्येक घर में साँझी माता की स्थापना की जाती है । इसको कन्यायें ही बनाती हैं तथा उनमें अपनी साँझी सुन्दर से सुन्दर बनाने की खूब होड़ भी लगी रहती है ।

पूजा के अवसर पर गाये जाने वाला गीत में देवी के श्रृंगार का वर्णन है :-

म्हारी साँझी ए के ओढेगी, के पहरेगी क्याहे की मांग भरविगी
क्याहे की पहीए झुकावेगी
च्रदड ओढगी, दाम्मण पहरूंगी, रोली की मांग भराऊँगी
मोतियाँ की पहीए झुकावेगी
च्रदड ओढँगी दाम्मण पहरगी रोली की माँग भराऊँगी
मोत्तियाँ की पहीए झुकाऊँगी
म्हारी धाँधा ए, के ओढ़ेगी के पहरेगी काहे की माँग भरावेगी
क्याहे की पहीए झुकावेगी
चूदड़ ओढ़गी खांदड़ पहरूँगी, देरया की माँग भराऊँगी
लोख्या की पट्टी झुकाऊँगी

साँझी जिसे हरियाणा की लड़कियाँ अपनी सहेली जैसा मानती हैं, गीतों में साँझी के रूप का उसके कपड़ों का, आभूषणों का तथा साज-श्रृंगार का वर्णन करती हैं । देवी के रूप में उसकी आराधना तथा आरती गाती हैं । सांझी के चित्र विभिन्न स्थानों व जातियों से लिये गये हैं । इनको देखने पर इनके बनाने के ढंग में एकता होते हुए भी थोड़ी थोड़ी स्थान स्थान पर भिन्नता आ गई है । कहीं सिर्फ मिट्टी के बनाये रंग-बिरंगे फूलों को तथा हाथ पैर जेवरों आदि को गोबर पर चिपकाया जाता है तथा कहीं कहीं बाजार से बना प्लास्टर आफ पेरिस का मुख लगाकर नीचे

कागज पर किनारी पन्नी आदि लगाकर साड़ी पहनाई जाती है। कहीं-कहीं केवल गेरु, खड़िया, मिट्टी आदि से ही चित्र बनाए जाते हैं।

अतः साँझी के अनेक रुप होते हुए भी भावना, श्रद्धा तथा आशय एक ही होता है।

सांझी विसर्जन के बाद गोत्र का रुप भी भिन्न भिन्न स्थान पर भिन्न भिन्न है। जैसा कि चित्रों से स्पष्ट है।

सथिया :- हरियाणा में हर संस्कार और शुभ अवसर पर स्वास्तिक का अपना विशिष्ट स्थान रहता है। विवाह, पुत्र जन्म, टेवा लिखा जाये या सगाई की जाती, स्वास्तिक हर स्थान पर बनाया जाता है। कहीं हल्दी या रोली का तो कहीं गऊ के गोबर से बनाया जाता है।

शुभावसरों पर भूमियाँ के द्वार पर गऊ के गोबर से स्वास्तिक तथा उसके दाहिनी ओर एक चक्र भी बनाया जाता है। जिसके आर-पार सात सीखें लगा दी जाती हैं। इसे सथिया कहा जाता है।[1]

गोबरधन :-

गिरड़ी के अगले दिन दीवाली का दिन आता है और स्थानों पर इसे गोवर्धन पूजा का त्योहार कहते हैं। प्रातः काल ही पशुओं के 'ठान' का गोबर सकट्ठा करके मनुष्य की आकृति का रुप दिया जाता है। बड़े सुन्दर

1- देवी शंकर प्रभाकर - 'लोक विश्वास' - 'हरियाणा' एक सांस्कृतिक अध्ययन से उद्धृत पृ० - 123

सुन्दर ढंग से इसे बनाते व सजाते हैं । मुख हाथ - पैरों के स्थान पर गोबर के बड़े बड़े गोले रखे जाते हैं । उसमें सीखें , लाल कपड़ा व रुई चिपकाई जाती है । उसके बीच के स्थान पेट में ग्वाले, दूध बिलोती हुई स्त्रियाँ, मोर, गाय आदि गोबर के ही बनाये जाते हैं । उसमें इन्हीं कपड़े की कतरने आदि लगाकर वास्तविक रूप दिया जाता है और सजावट का सामान जैसे कृष्ण की मिट्टी की मूर्ति, मुर्गा, बारह सिंहा तथा रात को पूजा के समय दिये तथा मोमबत्ती लगाकर जलाते हैं । ये बने बहुत ही सुन्दर लगते हैं । यह गोवरधन प्रायः प्रत्येक घर में बनाया जाता है । इसे कच्ची लस्सी से पूजा जाता है । फिर उस पर खाट बिछा दी जाती है । सांझ को खीर, हलवा, पूरी आदि का भोग लगाया जाता है । गोबरधन की पूजा के समय उस पर खील बिखेरी जाती है । गोबर पर खील के दाने चिपका कर भी उसे सुन्दर बनाते हैं । पूजन के बाद उस गोबर से गोसे व थेपड़ी थाप दी जाती है । आम तौर पर यह 5 - 7 9 ।। की संख्या में होते हैं । बिटोड़ा (उपलों को सुरक्षित रखने के लिए घास - फूस व गोबर से बनाया स्थान) रखते समय यही उपले नींव के रूप में रखे जाते हैं ।

गोवरधन के गोबर से ही दो पिण्डियाँ भी बनाकर सुखा ली जाती हैं । जिन्हें घर पर रखना शुभ माना जाता है । इसके दीपक पर बनाया काजल शुभ माना जाता है ।

गोवरधन हरियाणा में चिपका कर बनाने की कला का अपने में

1- स्वयं सर्वेक्षण के आधार पर - करनाल में - झीमर - जाट - ब्राह्मण आदि परिवार से

कला का सुन्दर नमूना है ।

चित्र - 102 - 103 - 104/फलक 111, 112, 113

छटी :- छटी की रात को रतजगा होता है । औरतें घर के द्वार खोल कर सारी रात जागती हैं । लोक विश्वास के अनुसार बेह माता इसी रात बच्चे का भाग्य लिखने आती हैं । कमरे के द्वार की दोनों दीवारों पर गोबर से गोल गोल आकृति बनाई जाती है । मिट्टी तथा गोबर से सतिये भी बनाये जाते हैं । उन पर जौ लगाते हैं । घी, मेंहदी के थापे भी लगाये जाते हैं । चित्र - 105 / 114 फलक

जन्माष्टमी :- भादों के पहले पखवाड़े की अष्टमी को कृष्ण भगवान का जन्म दिन धूमधाम से मनाया जाता है । इस दिन घर घर में कृष्ण - भगवान की झाँकियाँ सजाई जाती हैं । कृष्ण के भिन्न भिन्न रूप दिखाये जाते हैं । खूब सुन्दर सुन्दर कागज पन्नी आदि चिपका कर कृष्ण भगवान का झूला व उनकी तस्वीर सजाई जाती है । झाँकियों में बन्दनवारे झंडिये, अलंकारिक बेलें आदि कागज को चिपका बनाकर फूल आदि लगाये जाते हैं जो कला का सुन्दर नमूना होती है । चित्र - 106, 107 / 115, 116 फलक

दशहरा :- हरियाणा में दशहरे का पर्व बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है । दशहरे के दिन पूजा के लिये गोबर से भूमि को लीप पोत कर इस गोबर के गोल गोल सिर बनाकर रखे जाते हैं । उसमें जौ लगाये जाते हैं ।[1] फरल गांव में राजपूत परिवार में गोबर व आटे से एक चौरस बड़ी आकृति और

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर 19-7-84 लक्ष्मण सिंह से साक्षात्कार के आधार पर ।

गोबरधन (शामगढ़)
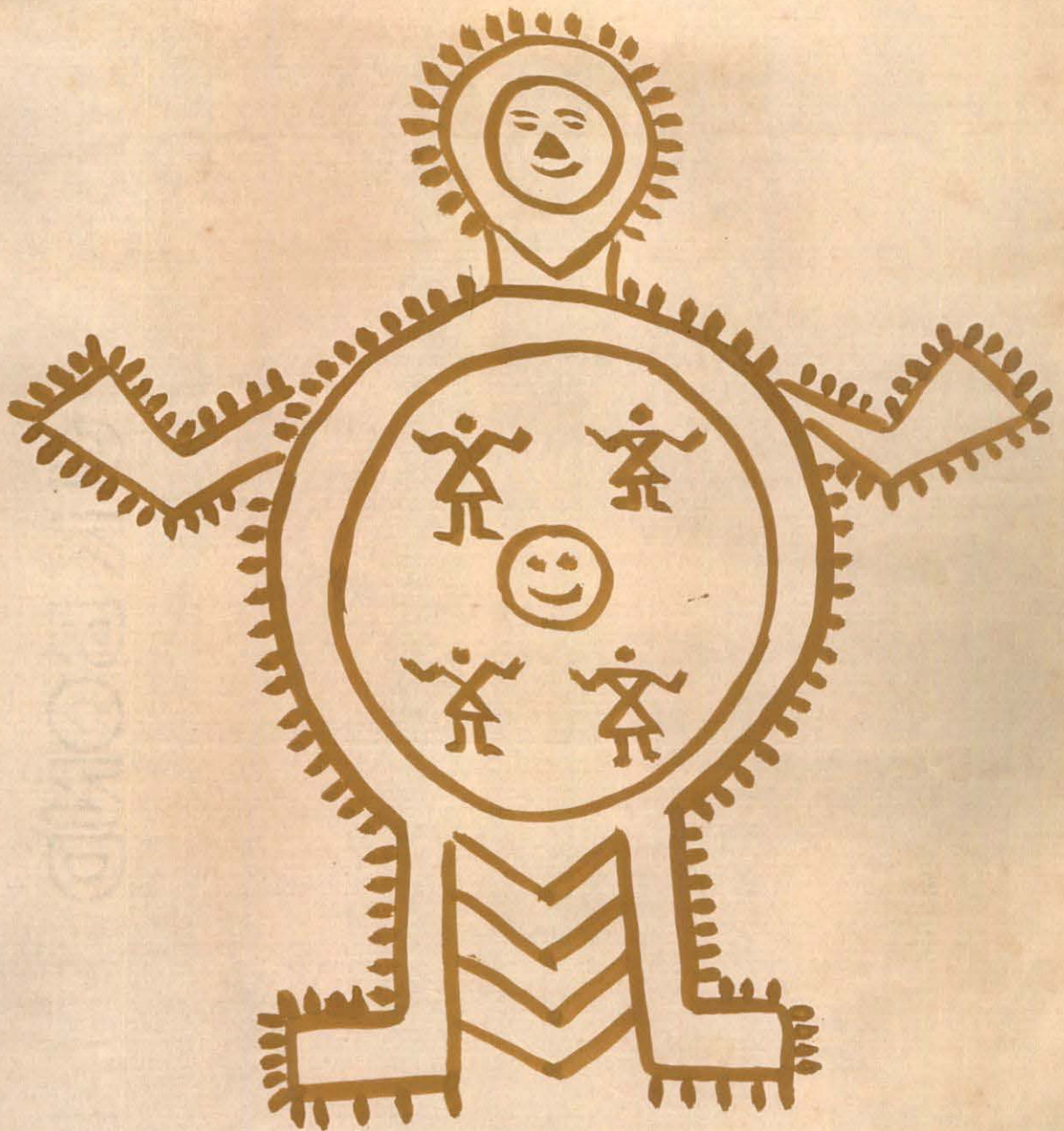
चित्र संख्या 102

'गोबरधन'

स्थान - (पुट्ठी)
चित्र संख्या 103

स्थान - (फरल)
चित्र संख्या 104

गोबरधन (रोहतक)
चित्र संख्या 105

छटी पर सातिया
चित्र संख्या 105
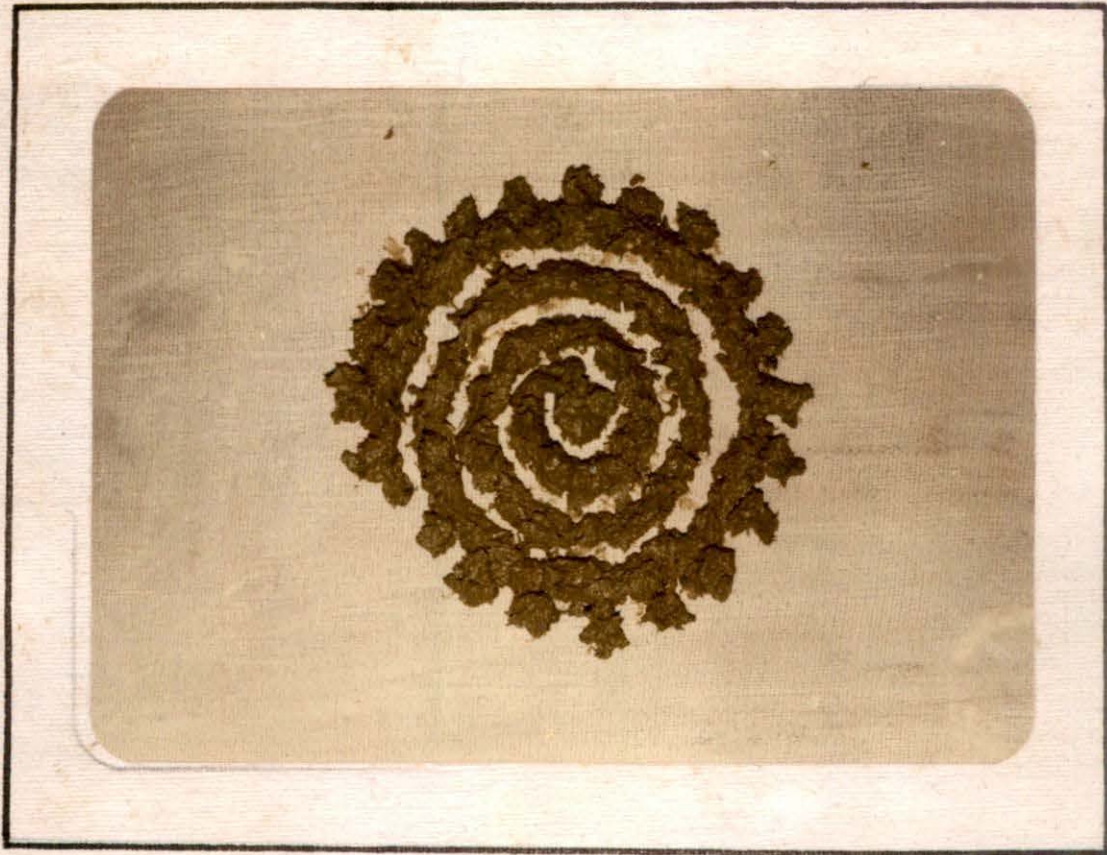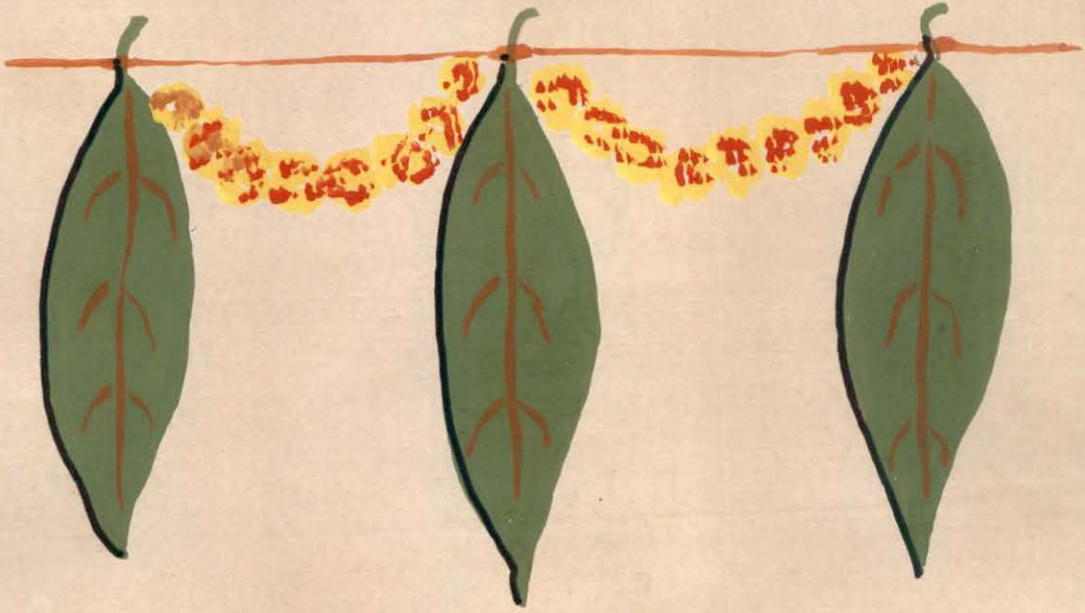
बन्दनवार
चित्र संख्या 106

बन्दनवार
चित्र संख्या 107

उसमें दो ओर आकृतियाँ बनाई जाती हैं। फिर चावल से धोक मारते हैं।

हरियाणा में रावण, कुम्भकरण, मेघनाथ के बांसों के बड़े-बड़े पुतले बनाये जाते हैं तथा इनको रंग-बिरंगे कागज पन्नी आदि से चिपका कर सजाया जाता है। जिनका रंग रूप उनका कद कलात्मक रूप देखते ही बनता है।

कैथल हिन्दू परिवार में दशहरे के दिन गोबर के दस सिर बनाये जाते हैं जिनको तीन तीन तथा चार की क्रमशः कतारें लगाई जाती हैं। पहली कतार पर दूब रखी जाती है - दूसरी पर दही रखा जाता है तथा तीसरे पर पोके चावल व चीनी रखकर पूजा की जाती है।

कैथल में दशहरा लिखते भी हैं उसमें उस समय की सदस्यों की उपस्थिति, रोज की चीजों के भाव, तथा धार्मिक स्थिति भी लिखते हैं।

विवाह :- हरियाणा में विवाह के मण्डप की सजावट तरह तरह के फूल-पत्तियों (कागज के) झंडियों आदि से की जाती है। यहाँ की वेदी रचना की सुन्दरता प्रसिद्ध है।

डाबड़ा हरिजन परिवार में शादी कागज पर लिखकर पूजा के स्थान पर चिपकाई जाती है। चित्र - 108 / 117 [illegible]

विवाह के शुभ अवसर पर द्वार पर सुन्दर सुन्दर बन्दनवारें बनाकर लगाई जाती है। रंग-बिरंगी फूलों की अलंकारिक बेलें व झंडियें बनाकर लगाई जाती हैं।

हिसार में विवाह के घर के तोरण पर मोर की आकृति का तोरण बनाकर लगाया जाता है।

विवाह (डाबड़ा)

चित्र संख्या 108

विवाह में वर के सिर पर पहनने के लिये ' मौड़ ' भी (लड़के) बनड़े का मामा लाता है । पहले बांस की खपच से ढांचा तैयार किया जाता है फिर उसके ऊपर विभिन्न रंगों का कागज, सुनहरी, रुपहरी, शीशे, फोटो, प्लास्टिक की गुड़िया आदि भी चिपकी होती है तथा मोती, गोटा किरन की लड़ियों से उसे खूब सुसज्जित किया जाता है । वर वधू के पहनने के लिये हार भी बड़े सुन्दर कागज, पानी, मोती, किरन, सलमा, सितारे आदि चिपका कर बनाये जाते हैं ।[1]

नई दुल्हन अपने घर से तरह तरह की बन्दरवार बनाकर लाती है । इनकी बनाई रंग बिरंगे कागजों की फुलझड़ी भी देखने योग्य होती है जो बहू के लाने पर बाहर दलान में टाँगी जाती है । बन्दनवार का चित्र शामगढ़ गाँव से जाट परिवार से लिया गया है । चित्र नं० - 109/118
फुलझड़ी कागज के रंगीन टुकड़ों से बनाई जाती है और पूरे हरियाणा में एक सरीखी ही होती है । चित्र नं० - 110/119

दीवाली :-

कहीं - कहीं हरियाणा में दीवाली को दीवार पर न लिखकर कागज पर लिख लेते हैं और फिर उसे दीवार पर चिपका दिया जाता है । दीवाली पर रंग लगाये जाते हैं तथा उसको और सुन्दर बनाने के लिये उस पर चमकी भी चिपकाई जाती है ।

दीवाली पर बनने वाली कण्डोले भी कला का अच्छा नमूना होती हैं । पहले बांस की खपच से ढांचा बना लिया जाता है फिर उसके ऊपर कागज,

---

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर - करनाल में - 12 अगस्त, 1984

बन्दनवार
चित्र संख्या 109

फलक 118

फूलझड़ी या बुगला
चित्र संख्या 110

कागज के तरह तरह के फूल पत्ती आदि चिपका कर उसे सुन्दर बनाते हैं। लड़कियों की ढ्रमड़ी पर भी बाहर की ओर से रंगीन कागज चिपका कर सुन्दर बनाया जाता है।

फरल गाँव में हटड़ियाँ भी कई प्रकार की देखी यहाँ हटड़ी मिट्टी की न होकर लोग लकड़ी की बनवा लेते हैं। जो हर दीवाली पर काम आ जाती है। लकड़ी की कटाई करके उसमें और रंग-विरंगा प्लास्टिक चिपका कर उसको खूबसूरत व कलात्मक रूप दिया जाता है।

कागज व कागज के फूलों को चिपका कर सुन्दर सुन्दर बिन्दनवारें भी दीवाली पर बनाई जाती हैं। झंडियों व फूलों (कागज के) से पूजा स्थान को खूब सजाया जाता है।

अम्बाला शहर में दीवाली को कागज पर बनाया जाता है। कागज पर सुनहरी रुपहरी किनारी के छोटे छोटे रूप काट कर गोंद से उसके ऊपर चिपकाये जाते हैं।

करनाल में लक्ष्मी जी की फोटो या कैलेन्डर ही दीवार पर चिपका कर उसका पूजन करते हैं। दीवाली पर लक्ष्मी जी के ऊपर पान का पत्ता व एक एक रुपया ऐपन से चिपकाया जाता है।[1]

अन्य प्रकार की कला :-

हरियाणा में विवाह के अवसर पर ' मेहड़ा ' बाँधा जाता है। उसके ऊपर चंदोवा बाँधा जाता है। चंदोवा भिन्न भिन्न कपड़ों के टुकड़े

1- स्वयम् सर्वेक्षण के आधार पर - 23-3-84

एक बड़े कपड़े पर चिपका कर बनाते हैं । उसके ऊपर गोटा किनारी आदि भी लगाई जाती है ।

'मेहड़ा' के पास मंगल कलश की स्थापना की जाती है जिस पर गोबर, ऐपन, घड़िया आदि से स्वास्तिक व फूल बूटे बनाये जाते हैं ।

नौरात्रों में भी कलश की स्थापना की जाती है तथा उस कलश को ऐपन रोली आदि से चित्रित किया जाता है । बच्चा होने पर भी करुआ पूजा जाता है । उसको भी सजाया जाता है । गोबर से स्वास्तिक व ऐपन से लाइनें लगाई जाती हैं ।

विवाह में आरते के भाल पर ऐपन रोली से स्वास्तिक बनाते हैं । विवाह में श्रृंगार के रूप में भी कला प्रदर्शित होती है । मेंहदी, महावर आदि में तो कलात्मक सौन्दर्य है ही, माथे पर चमकने वाली आकर्षित बिंदी के अनेक रूप हैं जो चित्र से स्पष्ट है । चित्र नं० - 27(2) / 28 फलक

हरियाणा के पर्यावलोकन के अन्तर यह ज्ञात हुआ कि इसी प्रकार दैनिक उपयोग की वस्तुओं पर भी लोक मानस चित्रांकन करते हैं । जैसे गाँव के प्रत्येक घर में अनाज व सामान रखने को मिट्टी का कोठा बनाया जाता है । इन पर अवश्य ही विभिन्न अलंकरण हेतु आकृतियाँ बना लेते हैं । मिट्टी की उभारी हुई मोर व अन्य जानवरों की आकृतियाँ बनाते हैं । उन पर रंग व रंग बिरंगी, पन्नी, कागज आदि भी लगाया जाता है । चित्र/ फलक नं० 6 एवम 6 (1) शामगढ़ के एक घर से लिया गया है । चक्की के पाटों पर भी खड़िया, गेरु से अलंकरण बना लिए जाते हैं ।

कुम्हार निकमी मिट्टी के घड़े व सुराहियों पर सुन्दर आलेखन (फूल पत्ती, पक्षी, अलंकारिक ज्यामितीय अलंकरण) उभार कर या खोदकर

बनाते हैं। जो देखने में सुन्दर तथा बनाने वाले की दक्षता को प्रदर्शित करते हैं। यह भी एक लोक चित्र कला का ही रूप है। इस प्रकार के चित्र रचना का उद्देश्य मनोविनोद होता है। कभी कभी कड़े पर काले रंग से भी अलंकरण किया जाता है जो बिना किसी त्रुटि के बिलकुल एक सा बनाया जाता है।

कुम्हार अपने लघु उद्योगों से स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति भी करते हैं। ये गमले, सकोरे, कुल्हड़, गुल्लक, दही जमाने के कूंडे, तम्बाकू पीने की चिलम, घड़े व सुराही आदि बनाते हैं। ये मिट्टी के पात्रों पर सामान्यतया एक ही प्रकार के ज्यामितीय आलेखन जो कड़ों के बीच में, चारों ओर रेखा द्वारा बनाये जाते हैं, साधारण होने पर भी महत्व - पूर्ण होते हैं। ये रेखायें इतनी साधारण ढंग से सरल रेखाओं के उतार - चढ़ाव से बनाये जाते हैं। जैसे -
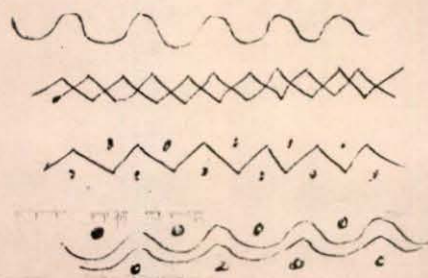
आदि।

खिलौने व मूर्तियाँ :-

हरियाणा में मिट्टी के खिलौने बनाने का भी काफी प्रचलन है। मेले - ठेलों में यह काफी मात्रा में दिखाई देते हैं। ये खिलौने बनाना यहाँ के वासियों का परम्परागत व्यवसाय है। ये खिलौने मिट्टी व तार की सहायता से बनाये जाते हैं। पशु - पक्षी तथा मानव आकृतियाँ भी बनाई

जाती है। जैसे गुड्डा, गुड़िया, सिपाही, बैंड बजाने वाले, गायकों का समूह, पनिहारिन, फल फूल लिये औरत आदि। साँझी के दिन लड़कियाँ मिट्टी की सुन्दर सुन्दर सांझियें भी लेती हैं। जो मिट्टी की सुन्दर जालियों वाली बनाई जाती हैं। इसी प्रकार लड़कों के लिए कहीं कहीं पर टेसू भी बनाये जाता हैं। मानव आकृति बनाकर दो हाथों के बीच एक दिया रक्खा जाता है तथा तीन लम्बे लम्बे सरकंडों की टांगे बनाई जाती हैं। जिस पर ये खड़ा हो जाता है। एक अच्छा लोक कला का नमूना है। मिट्टी से बनाकर सब को रंग से सुन्दर सुन्दर अपने ही रूप में रंगा भी जाता है। ऊपर से चमकाने को वार्निश लगाई जाती है। चित्र नं० 111/120

इनके अतिरिक्त फल सब्जी, मेवा आदि भी मिट्टी की बनाई जाती है। दीवार पर सजाने के लिए मिट्टी की प्लेट जिस पर चित्रकारी की जाती है। यह सब देखने में इतने सजीव होते हैं कि देखने वाला देखता ही रह जाय। 112 (2)/121

इसके अतिरिक्त हरियाणा में दीवाली पर तरह तरह के छोटे बड़े, खड़े, बैठे लक्ष्मी - गणेश बनाने की प्रथा भी है। दीवाली के दिन प्रत्येक घर में इनकी स्थापना की जाती है। दीवाली ही पर हटड़ी बनाने का भी प्रचलन है। सुन्दर सुन्दर रंगों में नई से नई तरह की हटड़ी मिट्टी से बनाई जाती है तथा उसके ऊपर रंग किया जाता है जो पूजा के स्थान पर हरियाणा में तक़रीबन प्रत्येक घर में रक्खी जाती है। लोक कला का अद्भुत रूप है। 111 (3)/122

पेहवा में एक द्लहेशाही के मन्दिर में घोड़ा चढ़ाने की प्रथा है। वहाँ पर मिट्टी के छोटे - बड़े घोड़े मिलते हैं जिन्हें रंगों से खूब सजाया जाता है। खरीद कर मन्दिर में चढ़ाये जाते हैं। चित्र - 112/123

'कलश''

शादी व बच्चा होने पर

चित्र संख्या 111

थाल
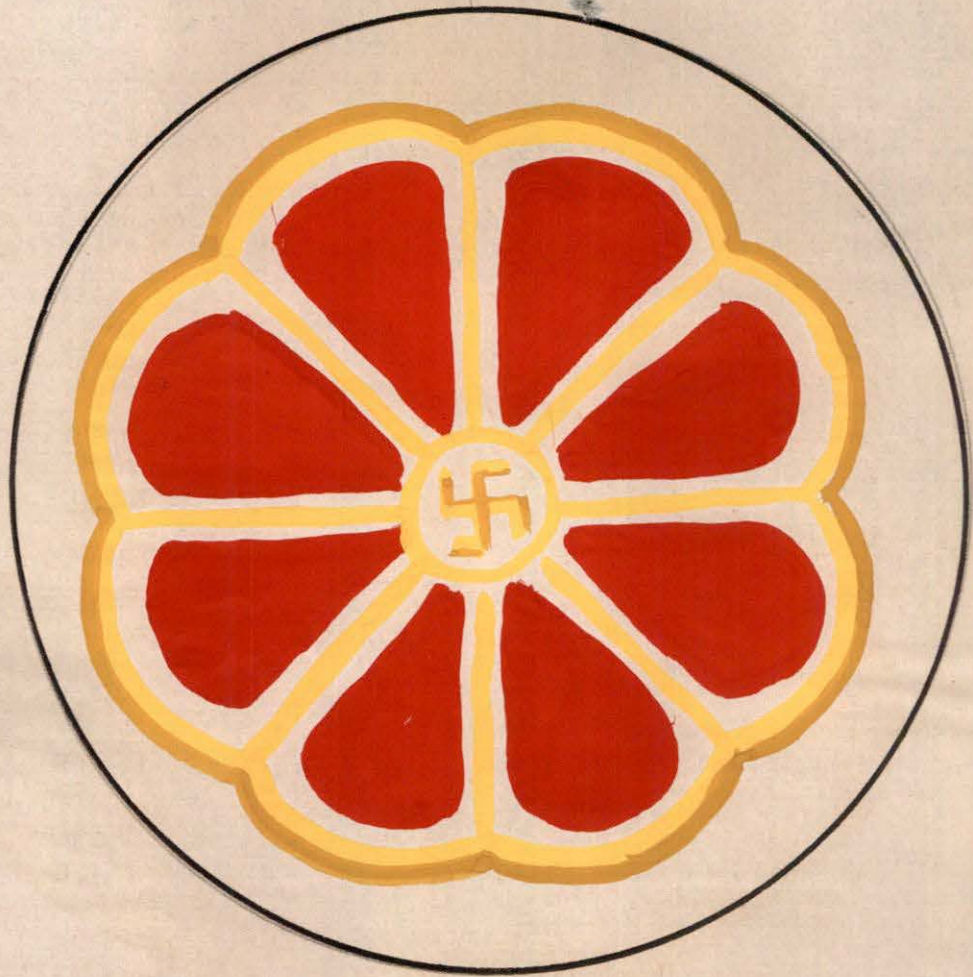
चित्र संख्या १११ (२)
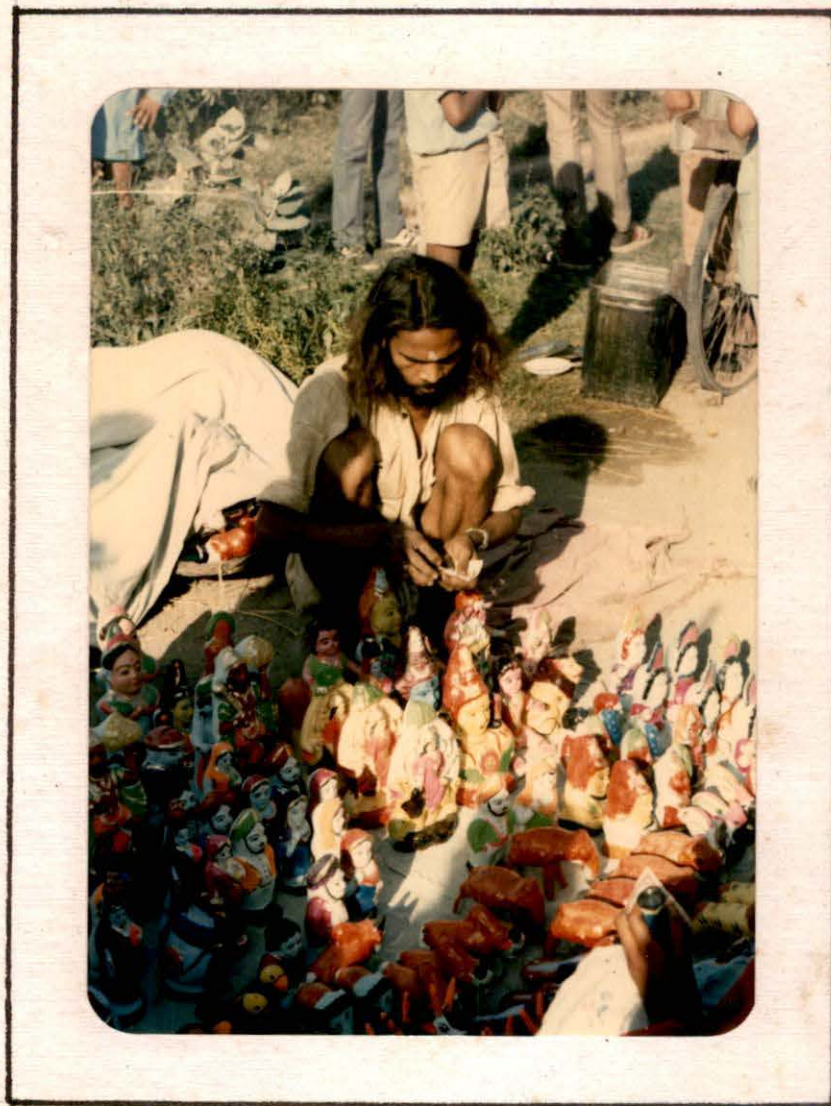
मेले में मिट्टी के कलात्मक खिलौने

चित्र संख्या ।।। (3)

दीवाली पर दिये भी भिन्न भिन्न प्रकार के मिलते हैं । गोल, एक बत्ती वाले, चार बत्तियों वाले चौ मुहे तथा काजल पारने का दिया अलग ही आकृति का बना होता है । जिसमें काजल पारने में सुभीता रहता है । दीवाली पर चौगडे भी मिलते हैं जिनमें चार कुलियों में एक हैन्डिल भी लगा होता है । जिसमें पूजा में खील खिलौने भर कर रखे जाते हैं । सफेद रंग की कुलियों का भी अपना अलग रूप होता है ।

पशुओं का श्रृंगार :-

हरियाणा में पशु अत्यधिक मात्रा में पाले जाते हैं । वे घर के सदस्यों की भाँति घर में रहते हैं । घर के लोग उन्हें देवता स्वरूप पूजते भी हैं । मिट्टी की गाय - भैंस, हाथी - घोड़े आदि को पूजा स्थल मे रख कर उनकी पूजा की जाती है । द वाली, गोबरधन आदि पर पूजा मे रखे जाते हैं । पशुओं के गले में पहनाने को घन्टियाँ , कौड़ियों बड़े बड़े मोतियों आदि की माला बनाई जाती है । उनके शरीर पर विभिन्न आलेखन बनाने का भी रिवाज है । बहुत सुन्दर गाय को नजर से तथा चिड़िया के ठोंग से बचाने को गेरु के छापे भी लगाये जाते हैं । गाय को उढ़ाने के कपड़े पर सुन्दर सुन्दर कसीदाकारी जिसमें बीच बीच में मोती - कौड़ी व शीशे भी लगाये जाते हैं । चित्र नं० ११३/ फलक १२५.

दीवाली वाले दिन गाय के छापे गेरु से तथा गेर में तेल मिलाकर उनके सींग भी रंगे जाते हैं । गाय के मस्तक पर तिलक तथा सींग में राखी भी बाँधी जाती है । विवाह के अवसर पर घोड़ी व हाथी का वस्त्र, जेवर तथा चित्रकारी देखकर ऐसा लगता है कि यहाँ के मानव समाज को अपने जानवरों से कितना प्यार है । कितनी श्रद्धा और लगाव है ।

पशुओं के कपड़े पर कलात्मक कढ़ाई

चित्र संख्या 113

विवेचनात्मक विश्लेषण :-

हरियाणा की प्रत्येक छोटी छोटी वस्तुओं में चित्रकारी देखने से ज्ञात होता है कि यहाँ के लोक मानस में कला को उपयोगिता से भिन्न कभी नहीं समझा. । दैनिक कार्यों की भाँति ही जब उनकी इच्छा होती है, घर में प्राप्त साधनों से ही वस्तुओं पर चित्रकारी कर लेते हैं । घडे, सुराहियों पर खुदे उभरे बने अलंकरण लोक चित्रकला का ही स्वरूप होते हैं ।

ज्यामितीय आलेखन तथा मनुष्याकृतियाँ प्रागैतिहासिक काल की गुफाओं में बने चित्रों से बहुत मिलते जुलते हैं । जिसकी आकृतियाँ साधारण होते हुए भी जीवन के मूल दर्शन को बताती हैं । इन पर बने स्वास्तिक व आगे ओउम के चिन्ह यहाँ के लोगों की धार्मिक प्रवृत्ति को दर्शाते हैं । बहुत से स्थानों पर भीति चित्रों में तथा दैनिक उपयोग की वस्तुओं में एक जैसे अलंकरणों का प्रयोग किया जाता है । जिससे सामान्य मनोवृत्ति का भाव मालूम पड़ता है । ऐसी कला जिसे परम्परागत ढंग से यहाँ के लोग अंकित किये जा रहे हैं । इसके पीछे केवल कलात्मक भावना ही नहीं जान पड़ती बल्कि इसके अंकन के पीछे कुछ गूढ रहस्य जिसका सम्बन्ध तान्त्रिक हो सकता है । यह भी सम्भव है कि इस प्रकार के अंकन का प्रयोजन खाद्य-वस्तु की शक्ति बढाने तथा उसमें बरकत बढाने के उददेश्य से की जाती हो । या उसे खाने व पीने वाले के लिए शक्तिशाली बनाना ही एक मात्र लक्ष्य हो । चाहे इसके मूल में किसी वस्तु को कोरे न छोडे जाने का उददेश्य हो । परन्तु सर्वेक्षण के अन्तर्गत पता लगा कि किसी भी विशेष प्रकार का अंकन चाहे कितना भी सरल क्यों न हो एक विशेषता रखता है तथा सामान्य होने पर भी गूढतम है ।

राजस्थान व उत्तर प्रदेश निकट होने के कारण हरियाणा में भी

वहाँ के रीति रिवाज व वहां के प्रचलन की छाया आई है । परन्तु उत्तर प्रदेश और राजस्थान जैसी बारीकी यहाँ के अलंकरणों में नहीं आ पाई है क्योंकि यहां मोट्टा खाणा अर मोट्टा पहरणा अच्छा हो से ' में विश्वास है । यहाँ ज्यादा तड़क भड़क मीन मेक पर ध्यान न देकर 'सीत निवारण कपड़ा, खुध्या निवारण टुकड़ा माना जाता है । फिर भी अन्दर की कलात्मकता यहाँ के वासियों के रहन सहन, दैनिक उपयोग में आने वाली चीजें, उनके आभूषणों, कपड़ों से झलकती हैं । इनके चूल्हे चक्की तथा आरे की बनावट मिट्टी के बरतनों में उपयोगी होने के साथ साथ कलात्मकता भी प्रगट होती है । चित्र नं - 7

हरियाणवी स्त्रियों के दामण, चोली, ओढनी की बनावट तथा सजावट देखते ही बनती है । चूंदड़ी पर छोटे छोटे शीशे टांकना - एक सामूहिक व्यापार है । कोई फुलकारी कोई शीशे व सितारे जड़ता है जो गीत से स्पष्ट भी होता है :-

> रे चूंदड़ी तेरा जुलम कसीददा
> कुंण से म्हीने बोल्ये मोर पपैइया
> कयब सी च्यंमके सीस्सा रे चूंदड़ी - ।
> साम्मण म्हीने बोल्यै मोर पपैया
> फागण च्यंमके सीस्सा रे चूंदड़ा - ।
> कोण सी ननद ने काढ़या कसीददा
> कोण सी ननद ने गोंद्या सीसा ?
> छोटली नंनद ने काढ़या कसीददा
> बड़ली ने गोंद्या सीस्सा - रे चूंदड़ी - ।[1]

1- डा0 भीमसिंह मलिक हरियाणा लोकसाहित्य- सांस्कृतिक संदर्भ पृ 37

चूदड़ी के अतिरिक्त चादर - ओढ़नी, टोपी तथा बैलों के पालों पर कसीदा निकाला जाता है । शीशी की रंगीन नलियों से बन्दनवार और फुलझड़ी बनाई जाती है । कपड़े के खिलौनों में उट, घोड़ा, हाथी, रथ, गेंदे, दियासलाइयों में चने डालकर झुनझुने आदि भी बनाये जाते हैं । कसीदा हरियाणा की स्त्रियों में सभ्यता का लक्षण माना जाता है । इसके अति - रिक्त स्त्रियाँ चरखा कातती हैं । फागुन में तो चरखा यज्ञ की भाँति चलता है । यहाँ के लोग ' चोसी ' तथा ' गाढा ' पहनते हैं जो अपनी कपास - कताई व गाँव के जुलाहे का बुना होता है । कताई में निपुणता बड़े घर की सुघड़ नारियों का गुण माना जाता है । कताई करते समय गाये जाने वाले गीतों को ' तीज्जण ' कहते हैं । धूप में कातते समय गाने को ' धूपिया ' व रात में कातते समय गाने को ' सरातिया ' कहते हैं । चरखी मेरे का ना टूटे तार, चरखा मेरा चलता रहे '' से घर आंगन गूँज उठते हैं ।

हिसार भिवानी की तरफ औरतों के जेवरों में मोतियों का बना बोरला व हड्वां यहाँ की स्त्रियों की कला के प्रति विशेष रुचि को दर्शाता है । चाँदी सोने के तरह तरह के डिजाइनों के जेवर इनकी कला प्रियता को बताते हैं । श्रृंगार में सिर में बारीक मीढ़ियाँ बनाना जिसे यहाँ पर सिर में `बाग पाना' कहा जाता है, कला का ही अनोखा रूप है । इतनी बारीक व इतनी सारी चोटियाँ बनाना, उनके सब्र और दक्षता को दर्शाता है । इनकी चुनरी में बने ' चिड़िया - मोर ' परम्परावादी होने के साथ उनके अन्ध विश्वास को भी बताता है । फिर भी यहाँ के प्रत्येक ग्राम वासी में

1- - वही - पृ० - 38

कला के प्रति इतनी अटूट श्रद्धा व लगाव है जो उनके प्रत्येक कार्य से फलता है । कला में सदैव नैतिक मूल्यों की श्रेष्ठता रहती है । यहाँ की लोक कला में यह सदैव से ही विद्यमान है । लोक कला यहाँ के जन मानस के लिये आनंद अनुभूति का अनुपम साधन रही है । आध्यात्मिक पक्ष भी होने के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी लोक संपूजित रही है ।

हरियाणा के लोक साहित्य के द्वारा भी यहाँ के जन जीवन का भावात्मक पक्ष स्पष्ट होता है कि यह कितना सम्पन्न और विविधतापूर्ण व कितना कलात्मक है - यहाँ की लोक कला व लोक साहित्य परम्परागत रूप से पोषित और परिरक्षित रहा है । और हमारी संस्कृति के अन्य पहलुओं की भाँति यह पीढ़ी दर पीढ़ी होता हुआ हम तक पहुँचा है तथा यह हरियाणा की जनता के पास एक अमूल्य धाती है । इसमें प्राचीन रीति - रिवाज और परम्पराएँ हैं जिनका अतीत से गहरा सम्बन्ध होने के कारण ग्राम् वासियों ने अपने संस्कार - मेले - ठेले , त्योहार विधि निषेध और अन्ध विश्वासों का मौलिक ढांचा बनाये रखा है । यहाँ के लोग अपने कुल, जाति, उपजाति को आदर मान की दृष्टि से देखते हैं । यहाँ सामाजिक सम्बन्ध विवाह , खान पान तथा लेन देन अपनी जाति में, जाति के अनु - कूल ही होते हैं । लोक तन्त्र, समाज वाद तथा धर्म निरपेक्षता का प्रभाव यहाँ के लोगों पर नहीं पड़ा है । परन्तु धीरे धीरे अपने महत्वपूर्ण होने के प्रति सजग होता जा रहा है । इसका ज्ञान करनाल गजेटियर पढ़ने पर स्पष्ट होता है । फिर भी यहाँ का ग्रामीण जीवन उतना निराशापूर्ण नहीं है । धार्मिक प्रवृत्ति के होने के कारण लोगों में सहनशीलता व धैर्य की भावना

1- एस पी आनन्द - अवध की लोक चित्रकला - पृ0 - 286
(अप्रकाशित शोध ग्रन्थ)

विद्यमान है । तीज - त्योहारों पर होने वाले मेलों का धार्मिक व कलात्मक दृष्टि से बड़ा महत्व है । इनके बिना जन साधारण का जीवन असह्य रूप से भयंकर हो जाता है । इसके अतिरिक्त लोक संस्कृति में भावनाओं गीत और नाटक , नृत्य तथा संगीत और वैयक्तिक तथा सामूहिक जीवन के अन्य सृजनात्मक रूपों की अभिव्यक्ति भी सम्मिलित है । जिसके कारण इसकी विशेषता और महत्व और भी बढ़ जाता है ।

अध्याय अष्टम

हरियाणा प्रदेश की लोक चित्रकला की उपयोगिता एवं महत्व

प्राचीन काल से चली आ रही परम्पराओं व रीति रिवाजों पर यहाँ के निवासियों का अटूट विश्वास बन गया है। अतीत से गहरा सम्बन्ध होने के कारण यहाँ के ग्राम वासियों ने अपने संस्कार, मेले, ठेले, त्योहार विधि निषेध और अन्ध विश्वासों का मौलिक ढांचा बनाये रखा है।

लोगों का अपने कुल जाति, उपजाति के प्रति भारी आकर्षण है। उनके सामाजिक सम्बन्ध विवाह, खान पान और अन्य लेन देन अब भी अधिकतर सजातीय ही होते हैं। लोक तन्त्र, धर्म निरपेक्षता या समाजवाद का कोई स्पष्ट प्रभाव उन पर नहीं दिखाई देता। परन्तु अब धीरे - धीरे वातावरण के अनुसार अपनी जाति व वर्ग के प्रति अधिक सचेत हो गये हैं। फिर भी और प्रदेशों की अपेक्षा यहाँ के ग्रामीण लोग अधिक सहिष्णु, उदार, सादे तथा सहजता से भरपूर हैं जिससे उनका ग्रामीण जीवन आनन्दमय तथा सुखी है। यहाँ के लोग सामूहिक जीवन यापन में विश्वास रखते हैं। जिसके कारण ग्रामीण प्रथायें अब भी जीवित हैं। लोगों में धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण वे विपत्तियों तथा विषम परि-स्थितियों को बड़े धैर्य व संयम के साथ सहन करते हैं। प्रत्येक त्योहारों पर उनमें देवी देवताओं के प्रति आस्था, त्योहारों पर फर्श, दीवार तथा पट्टों आदि पर बनने वाले चित्रों से आंकी जा सकती है। इन चित्रों में निहित भावनायें किसी एक व्यक्ति से सम्बन्धित न होकर समस्त परिवार तथा समाज से होती हैं।

लोक चित्र कला की रचना पर्व, त्योहारों तथा विवाह आदि पर दीवारों तथा आंगन की भूमि पर की जाती है। यह चलन अति प्राचीन है। आंगन तथा फर्श पर चित्रित धूलि चित्र व रंग चित्र प्रायः रंगोली तथा चौक की श्रेणी में आते हैं। दीवारों पर ठप्पों द्वारा अंकन छापा या ढापा

कहकर पुकारा जाता है जो अधिकतर पर्व, त्योहारों तथा मांगलिक अनुष्ठानों पर लगाये जाते हैं। इससे विभिन्न जातियों, जनपदों के रीति रिवाज विश्वास आदि पता लगते हैं।

लोक कला धार्मिक भावनाओं से ओत प्रोत होती है। अतः इसमें शुद्धता का विशेष ध्यान रखा जाता है। अधिकतर चित्र धरातल को व दीवार को धो तथा गोबर मिट्टी से लीप पोत कर अंकित किये जाते हैं। इनके अंकन में शुद्धता भावना का भी विशेष ध्यान रखा जाता है। यहाँ की लोक कला का धार्मिक व आध्यात्मिक अनुभवों से गहरा सम्बन्ध है।

त्योहारों पर बनने वाले चित्रों में परिवार की सुख - समृद्धि की कामना निहित होती है। अतः प्रत्येक मानव लोक कार्यों का अंकन बड़े शुद्ध मन व धार्मिक भावना से करता है। यही कारण है कि आज का शिक्षित समाज भी बड़ी श्रद्धा व विश्वास के साथ इन कार्यों का परम्परागत रीति से अनुसरण करता आया है।

लोक कला मनुष्य की कला भावना, कल्पना शक्ति सौन्दर्य और सृजन शक्ति का प्रतीक है तथा इसमें जन जीवन की समृद्धि की भावना भी निहित होती है। जीवन के सभी काम इसके बिना अधूरे हैं। सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक सभी क्षेत्रों में लोक कला के दर्शन होते हैं।

वास्तव में लोक कला कला के लिए न होकर जीवन के लिये होती है। यहाँ के लोगों का विश्वास है कि त्योहारों पर बनाये जाने वाले चित्र बनाने से जीवन की रक्षा होती है। जीवन पवित्र होता है तथा सन्तान की

वृद्धि एवम् रक्षा होती है । यही कारण है कि इन चित्रों में प्राय परिवार के सदस्यों के नाम दीवार पर लिखे जाते हैं ।

' लोक कला ' कला का एक अंग है तथा लोक चित्रकला का इसमें विशिष्ट स्थान है ।

कला हमारी संस्कृति का मूल है । संस्कृति की झलक दैनिक जीवन से प्राप्त होती है । हरियाणा का दैनिक जीवन यहाँ की संस्कृति का सूचक है । तथा लोक चित्र कला उसकी अभिव्यक्ति है । कला की अभिव्यक्ति मुख्यतया चार रूपों में होती है -

1- धर्मानुप्राणित
2- उपयोगितावादी
3- व्यक्ति वादी
4- मनोविनोदार्थ

धर्मानुप्राणित :- लोक कला में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है । ईश्वर और उसकी शक्तियों की पूजा अर्चना, व्रत आदि धार्मिक विश्वास है जैसे देवी - देवताओं के चित्र, स्वास्तिक चिन्ह अथवा थापे आदि । भारत के सभी त्योहारों में जहाँ कला का थोड़ा मात्र भी स्थान है, धर्म अपना विशेष महत्व रखता है । दीवाली, अहोई, करवा चौथ आदि पर ' पूरत पूरना - गेरु - खड़िया से फर्श पर चित्र बनाना, आदि सब का धर्म में महत्वपूर्ण स्थान है । कोई नारी इसका उल्लंघन करने का साहस नहीं करती । क्योंकि इसमें सर्वहित के साथ साथ अपने घर , परिवार तथा अपना स्वयम का हित भी शामिल होता है ।

उपयोगितावादी :- जो कला सत्य तथा सुन्दर होने के साथ साथ जीवन - चर्या में काम आने वाली होती है, उपयोगी कला कहलाती है । जैसे बर्तनों,

वस्त्रों तथा हथियार आदि पर होने वाला अलंकरण ।

व्यक्तिवादी :- जो कला मनुष्य की व्यक्तिगत भावनाओं को अभिव्यक्ति करती है तथा जिसमें निजी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, वह कला व्यक्तिवादी कहलाती है । जैसे शोभा बढ़ाने के लिये किये गये आलेखन - जूड़े, हाथ व गले के लिये बनाये गये हार व गजरे पूजा स्थल को सजाने के लिये फूलों के सुन्दर अलंकरण, स्त्रियों का कसीदाकारी करना, दरी बुनना तथा नीला गुदवाना, बिन्दी, महावर, मेंहदी आदि लगाने इस कला के अन्तर्गत आते हैं ।

बिन्दी :- मुख का प्रसाधन तथा सौभाग्य व सुहाग का चिन्ह बिन्दी सबसे स्त्री समाज में लोक प्रिय रही है । बिन्दी भिन्न भिन्न अवसरों पर भिन्न भिन्न रूप में तथा अलग अलग चीजों से लगाई जाती है । जैसे - सिन्दूर की बिन्दी, चन्दन की रोली की बिन्दी, गोली बिन्दी, सूखी बिन्दी व चिपकाने वाली प्लास्टिक की बिन्दी । सम्भव है बिन्दी लगाने का उद्देश्य मानव का ध्यान इस ओर आकर्षित करना होता है । विधवाओं के लिए निषेध है । आजकल यह फैशन में हैं - कुँवारी लड़कियाँ भी लगाती हैं । हरियाणा में ज्यादातर तीज - त्योहारों तथा ब्याह शादी पर बिन्दी के विभिन्न रूप लगाने का प्रचलन है । यहाँ पर प्रचलित बिन्दी के विभिन्न रूप चित्र नं० -27

मनोविनोदार्थ :- मेंहदी रचाना, महावर, कढ़ाई, मोती सितारों आदि का कपड़ों पर लगाना तथा कुछ त्योहारों जैसे सांझी - देवी प्रतिमा आदि की मूर्ति को खोल खोल में सजाना आदि ।

स्थूलतः संस्कृति का बाह्य रूप सभ्यता होती है । अतः संस्कृति और सभ्यता को एक ही व्यापक अर्थ में ग्रहण करके हरियाणवी कला का

सांस्कृतिक आधार पर निम्न रूप में वर्गीकरण किया जा सकता है ।

1- अन्ध विश्वास 2 - वेश भूषा 3- तीज - त्योहार

1- अन्ध विश्वास :-

धर्म का विकास श्रद्धा से होता है और प्रगाढ़ श्रद्धा अन्ध-विश्वास को भी जन्म दे सकती है अथवा धर्म की आधार शिला भी बन जाती है।[1] इसी आधार पर यहाँ के लोग श्रद्धालु तथा परोपकारी हैं व मानव धर्म की ओर अग्रसर हैं । श्रद्धा और विश्वास दोनों ही हरियाणवी संस्कृति के धार्मिक आधार हैं । धार्मिक कहे जाने वाले विश्वास कभी कभी अन्ध विश्वास भी बन जाते हैं । अर्थात श्रद्धा से किसी दीवार के भित्ति चित्र को देवता मान लिया जाय तो वह मानने वाले के लिये देवता है । इसके अतिरिक्त यदि किसी व्यक्ति में दीवार पर अंकित चित्र में आस्था नहीं है तो उसके लिये वही चित्र जो देवता रूप में मान्य है, केवल दीवार का विलेपन मात्र रह जाता है[2]। यहाँ के लोगों में भगवान के प्रति आस्था इस लोकोक्ति से प्रगट होती है ।

राम बणावे काम किसे के मांह के[3] किसी के माध्यम से राम काम बनाता है । अर्थात भगवान जब किसी कार्य को पूरा कराना चाहते हैं तो वे किसी न किसी माध्यम से अवश्य ही कार्य को पूरा कराते हैं । अतः राम का नाम अन्ध विश्वास के रूप में रूढ़ हो गया है ।

1- जयनारायण वर्मा- हरियाणवी लोकोक्तियाँ शा विश्लेषण- पृ0- 22

2- - वही -

3- जयनारायण वर्मा- हरि लोकोक्तियाँ शास्त्रीय विश्लेषण, पृ0- 23

अन्ध विश्वासों में जन्त्र तन्त्र तथा जादू टोने और टोटकों का भी विशिष्ट योगदान है। हरियाणा में टोने टोटके पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। कुछ लोग इन्हें असभ्यता तथा बर्बरता का प्रतीक मानकर इन्हें उपेक्षित भाव से सुनते हैं पर हरियाणा के लोक जीवन में इनको मान्यता में श्रद्धा और अन्ध विश्वास ही कार्य करते हैं। ये तन्त्र मन्त्र, टोने टोटके संस्कृति की कसौटी पर परखे जा सकते हैं। सभ्यता के अनुसार इन्हें चाहे बुरे अर्थों में माना जाय पर इनके मूल में अनन्य श्रद्धा का तत्व ही कार्य करता है। जो कालक्रमानुसार अन्ध विश्वास का रूप धारण कर लेता है। संस्कृति में ये अन्ध विश्वास एक ऐसे घटक के समान हैं जिसमें श्रद्धा, आस्था, विश्वास तथा आस्तिकता का प्रतिबिम्ब झलकता है। हरियाणा में प्रचलित कुछ अन्ध विश्वास यह है :-

1- यहाँ देवी की मान्यता अष्टमी के खीर पका कर की जाती है। देवी के श्रद्धालु इस दिन दही खाना या जमाना बुरा मानते हैं। लोक विश्वास है कि यदि अष्टमी के दूध बिलोने के लिए जमा दिया जाय तो उनकी भैंस या गऊ का दूध सूख जाएगा।

2- बरगद या पीपल के पुराने पेड़ों के भी प्रायः भूतों का निवास माना जाता है।

3- कई प्रकार के टोने टोटके भी यहाँ पर माने जाते हैं। चौराहे पर कुल्हिया में शरबत, गुड़िया और कोयले फूल रखकर 'सदनक' दी जाती है। छोटे बच्चे व जच्चा के पास लोहे की वस्तु रखते हैं (भूत प्रेतों से बचने के लिए) विवाह में वर कन्या के हाथ में कंगन में लोहे का छल्ला बाँधा जाता है।[1]

1- देवी शंकर प्रभाकर - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० 118

दाह - संस्कार करने वाले व्यक्ति के पास क्रिया कर्म के दिन तक चाकू व लोहे की चीज रखनी जाती है क्योंकि लोहे की चीज पर किसी का असर नहीं होता । किसी को दौरा पड़ने पर भूत प्रेत का असर मान कर झाड़ा - फूंका दिया जाता है ।

छोटे बच्चे की तबियत ठीक न होने पर नजर का असर मानकर भिन्न प्रकार से नजर उतारने की प्रथायें भी यहाँ पर प्रचलित हैं । नमक मिर्च वारना, घी के डोरे दीवार पर चिपका कर जलाना आदि । गोबर - धन के गोबर से थपेड़ी बनाकर रखनी जाती है । बिटोड़े तथा कुठले में यही थपेड़ी पहले रखनी जाती है जिससे बरकत हुई मानी जाती है ।

यहाँ शकुन अशकुन भी माने जाते हैं । जैसे पानी भरा घड़ा, जमादार झाडू लिये, गौ दर्शन, भिस्ती जल लिये मिलना शुभ माना जाता है । अशकुन में खाली घड़ा, इंधन का टोकरा, छींकना, बिल्ली का रास्ता काटना, आँख फड़कना, बिल्ली या कुत्ता रोना, काने के दर्शन आदि अशुभ माने जाते हैं ।

जादू या भभूति से बीमारियाँ ठीक हो जाने पर लोगों का विश्वास आज भी बना है । चित्र में जादू - टोने से पोलियो की बीमारी ठीक की जा रही है । ज्योतिसर में सैकड़ों लोग अपने बीमार बच्चों को लेकर साधू बाबा के पास पहुँचते हैं ।[1] चित्र एवं फलक नं० - 114/126

हरियाणा में जो लोग सिद्ध व तान्त्रिक क्रियाओं में लिप्त बताये

1- स्वयम सर्वेक्षण के मध्य - तिथि 28,3-84

'अंध विश्वास'
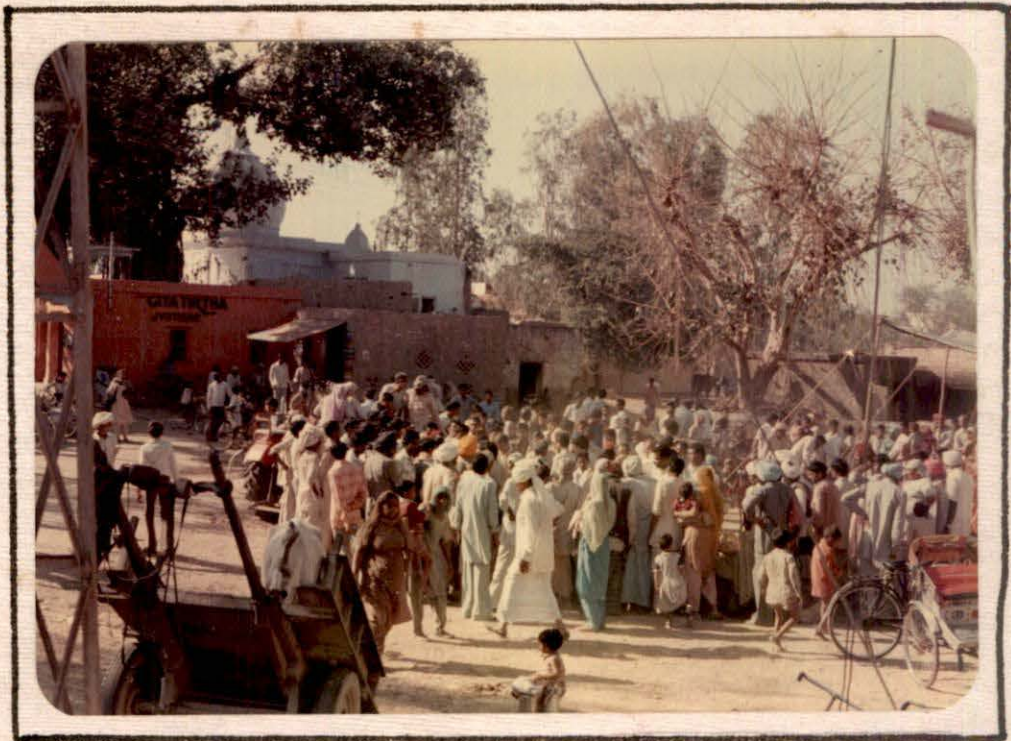
जादू टोने से पोलियों का उपचार (ज्योतिसर)
चित्र संख्या 115
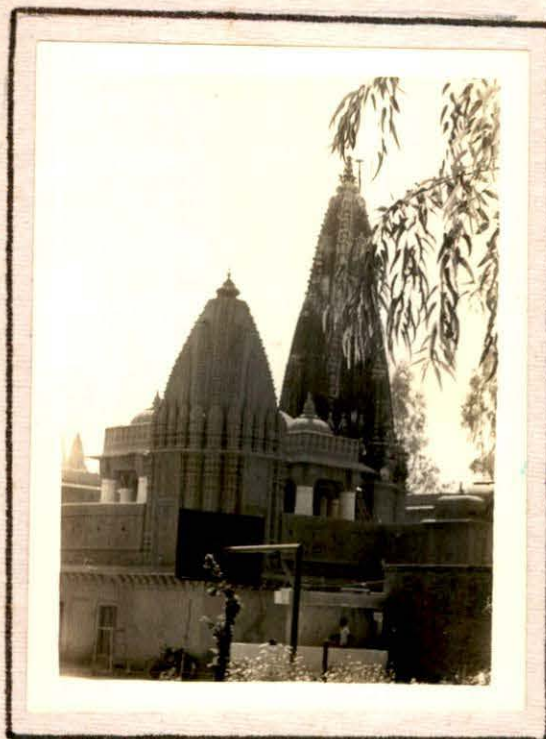
सरस्वती तट पर ब्रह्मयोनि व
प्राणेश्वर महाराज मन्दिर
चित्र संख्या 115, 116
119

जाते हैं , उन्हें सेवड़े कहते हैं । यद्यपि प्रेत सिद्धि की क्रियाओं में लिप्त व्यक्ति कभी किसी पर अपना रहस्य नहीं खोलता फिर भी उसका रूप, उसका चेहरा सिद्ध कर देता है कि वह कोई मन्त्र तन्त्र जानने वाला सिद्ध सेवड़ा है । यह विश्वास किया जाता है कि सेवड़ा वश में की हुई प्रेतात्मा को किसी के भी शरीर में प्रविष्ट करवा सकता है । इसे यहाँ के लोग " घाल घालना " कहते हैं ।[1] यदि प्रेत सिद्धी की इस परम्परा को हम इस प्रदेश के अतीत में खोजें तो सेवड़े का ठीक यही रूप हमें वाणभट्ट द्वारा वर्णित ' भैरवाचार्य ' में मिलता है जिसमें वर्धनों के पूर्वज 'पुष्य भूति (को श्मशान में बुलाकर सिद्धि के बल पर राजसत्ता दिलवाई थी ।) बाणभट्ट ने अपने हर्ष चरित में भैरवाचार्य की अनुष्ठान सिद्धि का बड़ा सजीव चित्रण किया है । श्मशान भूमि में भीमकाय काली देह वाला भैरवाचार्य काला अंगरखा पहने, काले तिलों की आहुति मुर्दे के मुँह में डालकर तान्त्रिक यज्ञ कर रहा है और इस प्रकार श्री कण्ठ नाग को वश में करता है ।[2]

वाण भट्ट का यह वर्णन पढ़कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन काल में भी इस प्रदेश में सिद्ध और तांत्रिकों का काफी प्रभाव रहा है और इसी परम्परा का प्रतीक है । आज का सेवड़ा इसी प्रकार हिन्दी साहित्य में भी अनेक रचनाओं में इन मान्यताओं का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष उल्लेख में मिलता है ।

हरियाणा के लोग बड़े सरल, सीधे और निश्छल स्वभाव के लोग

1- देवीशंकर प्रभाकर-हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० 119
2- " " "

होते हैं । वे धार्मिक आडम्बर, अत्याधिक कट्टरता और संकीर्णता से मुक्त हैं । इसकी झलक यहाँ के लोक विश्वास में मिलती है । यहाँ के सबसे प्रिय व उपास्य देव भोलेनाथ हैं । संत कवियों की भक्ति धारा का यहाँ के जन मानस पर गहरा प्रभाव है । यहां की सन्त परम्परा ' राम ' को ही मानती आई है ।

मूर्ति पूजा को इस प्रदेश में अपेक्षाकृत कम मान्यता मिली है । फिर भी भारत की प्राचीन परम्परा के अनुसार यहाँ पर प्रतीक पूजा के अनेक रूप प्रचलित हैं । कुछ निम्न देवी देवताओं के प्रति यहाँ सहज आस्था है :-

1- भूमियाँ :- यह हर गाँव का एक देवता होता है । जिसे भूमियाँ या भैयाँ कहा जाता है ।[1] प्रत्येक गांव का भूमियाँ अवश्य होता है । कहते हैं सर्व प्रथम जब गांव बसता है तो पहले भूमियाँ की मढ़ी ही बनती है । इस सम्बन्ध में लोक विश्वास है कि गांव बसने के बाद जिस पहले पुरखे का देहावसान होता था उसी के स्मारक के रूप में भूमियाँ की मढ़ी बनाई जाती थी । आम तौर पर भूमियाँ की स्थापना गाँव के बाहर की जाती है पर गाँव बढ़ते बढ़ते मढ़िया बीच में भी आ जाती है ।[2]

प्रत्येक तीज - त्योहार पर भूमियाँ पर सांझ के समय दीपक जलाये जाते हैं । ब्याह शादी पर स्त्रियाँ भूमियाँ पर दीपक जला कर और सीरनी बाट कर उसकी पूजा करती हैं । कुआमढ़ी पर ग्राम की परिक्रमा के बाद दूल्हा

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर

2- देवी शंकर उपाध्याय-हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 109

भूमियाँ पर धोक मारने अवश्य जाता है तथा दुल्हन लाने पर भी भैयां को मढी के प्रणाम अवश्य करने जाता है । महिलायें गीत गाती जाती हैं । जिसे - ' देई धाम पुजना ' कहा जाता है । अतः ' देई - धाम ' का अर्थ हुआ ' ग्राम देवता ' । इस पूजा के बाद ही विवाह की और रस्में शुरु होती हैं तथा विवाह के बाद देई धाम की पूजा के बाद ही गठबन्धन खोला जाता है ।

वास्तव में भूमियाँ या भैयां ही हरियाणवी गाँव के देवताओं में सबसे महत्वपूर्ण देवता होता है । कोई भी कार्य इसकी पूजा के बिना पूरा नहीं माना जाता । पुत्र जन्म पर भी स्त्रियाँ शाम के समय गीत गाती - '' भैयां ' पर पहुँचती हैं और मढी पर गोबर से स्थया (स्वास्तिक) करके घी के दीपक जलाती हैं । ऐसे अवसर पर गाती हैं -

पांच पतासे पा नाह का बिठ्ठा,
ले भैयां पै जाइयो जी ।
जिस डाली म्हारा भैयां बैठ्या
वाह डाली झुक जाइयो जी ।

विवाह पर गांव के भैयां का नाम लेकर उसकी स्तुति गाई जाती है -

सिर तेरै चोरा मैंसरू के भैयां,
कोई जोड़ी रही झड लाग ।

1- - वही - पृ० - 110

गल तेरे कण्ठी मेसरु के मैयां
कोई जोड़ी रहो इड लाग ।।[1]

इस प्रकार भूमियाँ हरियाणवी ग्राम संस्कृति का सुन्दर प्रतीक है । हरियाणा प्रान्त को यदि हम भारतीय संस्कृति एवम सभ्यता का जनक, एवम रक्षक कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी ।[2]

सूर्य और चन्द्र :- हरियाणवी लोग सूर्य व चन्द्रमा की पूजा में विश्वास रखते हैं । सूर्य को जीवन का तथा चन्द्रमा को अमृत का प्रतीक मानकर पूजा करते हैं । सूर्य को प्रातः काल जल व अर्घ्य अर्पित किया जाता है । इसके पीछे नेत्रों के सब रोग दूर होने की भावना निहित होती है । सूर्य को जल चढ़ाते समय स्त्रियाँ गुनगुनाती हैं :-

सूरज देवता
जगमग जगा
लीलो के असवार
जल हमारे हाथ में
धर्म पुण्य तेरे पास ।[3]

तर्पण[4] की क्रिया भी सूर्योदय के समय की जाती है । इसके पीछे

1- देवीशंकर प्रभाकर-हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० 110
2- जयनारायन वर्मा - हरियाणवी लोकोक्तियाँ- शास्त्रीय विश्लेषण, पृ17
3- देवीशंकर प्रभाकर - हरियाणा - एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० 111
4- दोनों हाथों की उँगली में कुशा लपेटकर तिल व जौ हाथ में लेकर जल चढ़ाने को तर्पण कहते हैं ।

भावना है कि यह पानी परिवार के दिवंगत पूर्वजों को जहाँ भी वे दुबारा जन्मे हैं, पहुँच जायेगा ।

यहाँ पर सूर्य की सौगन्ध खाने की भी प्रथा है । सौगन्ध खाते समय कहा जाता है " सूरज की सौंह "

सौर देवताओं में सूर्य प्रधान है । ग्रीक भाषा में सूर्य को ' हेलियस ' कहा गया है । इस शब्द का अर्थ है ' तेजोमय ' सूर्य का यही अर्थ वेदों में प्रमाणित है । वेदों में कई जगह मिलता है कि सूर्य देवता के चक्षु हैं, उषा उन्हें ले जाती है । भू - मण्डल पर सर्वत्र विचरण कर जीवों तथा मनुष्यों की गतिविधियों को सूर्य देवता देखते हैं । पुण्य पाप को भी देखते हैं । वेदों के अनुसार सूर्य ही मनुष्यों को अभीष्ट कार्य करने में प्रवृत्त करते हैं । सात घोड़ों वाले एक पहिये के रथ पर चढ़कर चलते हैं । यह चराचर सभी की आत्मा है " सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च "[1] सूर्य नक्षत्रों में सर्व प्रमुख ग्रह है ।

सूर्य को आरोग्य का देवता, शत्रुओं का नाशक तथा मास, ऋतु आदि का विभाजक भी माना जाता है ।[2]

जहाँ चन्द्रमा मन का वहाँ सूर्य प्रकाश का देवता है ।[3] शास्त्रों में मन तथा बुद्धि का चन्द्रमा से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है । चाँदनी रात

1- परिपूर्णानन्द - प्रतीक शास्त्र पृ 199

2- वही पृष्ठ 199

3- एस0पी0 आनन्द - अवध की लोक चित्रकला (अप्रकाशित शोध प्र)पृ307

में चन्द्रमा को ओर देर तक आँखें गड़ा कर देखने से बुद्धि खराब हो जाती है।[1] पागलपन के लिये ल्यूनेसी शब्द चन्द्रमा से ही बना है। पुरानी बिमारियाँ पूर्णिमा तथा अमावस्या के दिन जोर पकड़ती हैं। अधिकांश आत्महत्याएँ पूर्णिमा के दिन या एक दो दिन आगे पीछे होती हैं। अर्ध-चन्द्र आशा का प्रतीक है।[2] चन्द्रमा को सृष्टि का प्रतीक माना है और ये सब परमेश्वर के विविध रूप हैं।

चन्द्रमा चूँकि अमृत वर्षा करता है और भ्रू-मध्य में स्थित अर्ध-चन्द्र यौगिक क्रिया द्वारा समूचे शरीर को अमृत प्रदान करता है इसीलिए अमृत का उद्गम 'माता' होने के कारण पुरुष होते हुये भी उसे परा शक्ति का प्रतीक माना गया है।[3]

चन्द्रमा को सृष्टि का प्रतीक, अग्नि को संहार का प्रतीक तथा सूर्य को परम शिव का प्रतीक माना है। शिव के बिना शक्ति नहीं, शक्ति के बिना शिव नहीं इसी प्रकार सूर्य तथा चन्द्रमा का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।[4]

अधिकतर त्योहारों पर बनाये जाने वाले चित्रों में सूर्य व चन्द्रमा की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। तथा उनको देवता मानकर पूजा जाता है।

चन्द्रमा की मान्यता प्रत्येक व्रत में जल चढ़ाने से होती है। व्रत

1- वही पृ० 308

2- परिपूर्णानन्द वर्मा - प्रतीक शास्त्र पृ 206

3- तन्त्र लोक भाग-2 तृतीय आह्निक श्लोक 67 की टीका पृ० 77

4- वही पृ० 79-80

खोलने पर चन्द्रमा को जल चढाते समय जल में तिल व चावल डाले जाते हैं । चन्द्रमा को जल चढाते समय स्त्रियां गाती हैं :-

मैं मन केरी राणी
ते चन्द्रमा पाणी ।[1]

सोवंती पे सोवन्दीयाँ पर वार
बाला चन्दा अंक दे - जे नाडा दरबार
हाथ मेंहदी बाँहें चूडा, खाडी सुहागन अंक दे ''[2]

धरती माता - धरती को माता मानकर पूजने की परम्परा यहाँ पर अब भी है । प्रातः काल चारपाई से उठते समय पाँव नीचे रखने से पहले धरती को यहाँ के लोग तीन बार चमकारते हैं । लोक गायक भी यहाँ पर पहले धरती की स्तुति करते हैं -

धरती माता तूँ बडी
तेरे तै बडे भागवान ।[3]

जब गाँव से बाहर जाना होता है तो गांव की सीमा की मिट्टी को सिर पर से फेंकने का भी रिवाज है । बच्चे की नजर उतारने में भी घर के दरवाजे की मिट्टी को उठाकर बच्चे के ऊपर से वार कर हवा में उडा

1- देवीशंकर प्रभाकर - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन - पृ ।।[illegible]

2- स्वयं सर्वेक्षण के आधार पर - रतगल गाँव में स्त्रियों से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त - दि० 4-3-84

3- देवीशंकर प्रभाकर - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ।।।

दिया जाता है । कहते हैं आते जाते जिसको नजर लगी हो, उड़ जा ' ।

कार्तिक कृष्णा सप्तमी को ' होई ' का त्योहार मनाया जाता है । होई या ' स्याऊ माता ' एक तरह से धरती माता का ही प्रतीक है ।[1]

पीपल :- हिन्दू शास्त्रों में पीपल के पेड़ की महिमा बहुत है । पुरानी मुद्राओं में जो मोहन जोदाड़ो हड़प्पा से मिली हैं, पीपल के पेड़ का चित्र अंकित है । जो पीपल की प्राचीन महिमा का साक्षी है । हरियाणा में भी पीपल के पेड़ की पूजा का महात्तम माना जाता है । इसके पीछे पति की दीर्घायु की मान्यता है । यहाँ पर इसकी पूजा सोमवार को की जाती है तथा पूजा में चावल, गुड़, रोली आदि प्रयोग की जाती है । कुछ हाथ से काता गया सूत जनेऊ तथा कच्चा दूध या लस्सी भी चढ़ाते हैं । इसकी पूजा के पीछे स्त्रियों का विश्वास है कि परिवार की सुख समृद्धि, तथा दूध पूत व अटल सौभाग्य भी प्राप्त होता है ।

रविवार के दिन पीपल को जल चढ़ाना तथा इसके पत्ते तोड़ने वर्जित हैं । कुछ विशेष अवसरों पर पेड़ के नीचे जोत भी जलाने का विधान है ।[2]

तुलसी :- तुलसी की पूजा का भी हरियाणा क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । कार्तिक मास में इसकी विशेष पूजा होती है । इसे हरियाणा में तुलसी माता के नाम से पुकारा जाता है । श्रद्धालु स्त्रियां जल चढ़ा कर

1- वही

2- देवी शंकर प्रभाकर-हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ 115

रोली छिड़कती हैं और जोत जलाती हैं । इसको भगवान विष्णु की पट रानी मानते हैं । ग्यारस तथा कार्तिक पूर्णिमा के दिन तुलसी का विवाह शालिग्राम के साथ करने की प्रथा है । औषधियों में इसका प्रयोग किया जाता है ।[1] तुलसी का पूजन हर हिन्दू घर में होता है । तुलसी के पौधे का स्वास्थ्य तथा मन पर कितना प्रभाव पड़ता है - इस सम्बन्ध में नयी नयी खोजें हो रही हैं । इससे घर की गन्दी हवा भी दूर होती है । क्षय रोग का रोगी तुलसी के पौधे के पास बैठने से स्वास्थ्य लाभ करता है । इसको अत्यन्त पवित्र माना जाता है । प्रसाद में इसके कुछ पत्ते डालने से प्रसाद को पवित्र माना जाता है मृत्यु समय पर भी तुलसी के कुछ पत्ते तथा गंगा जल व्यक्ति के मुख में डालने की प्रथा है । रविवार को तुलसी के पौधे को जल चढ़ाना तथा पत्ते तोड़ने वर्जित हैं । क्योंकि धार्मिक विश्वास के अनुसार तुलसी में लक्ष्मी का वास सोमवार से शनिवार तक ही रहता है । तुलसी पर जल चढ़ाते समय कहती हैं -

तुलसा महाराणी नमो नमो :
हर की पटरानी नमो नमो : ।।[2]

कुआँ :- इस क्षेत्र में गाँव के देवताओं में कुएं का भी स्थान है । नया मकान बनवाया जाता है तो गृह प्रवेश से पूर्व गृह स्वामिनी कुये पर जाकर जोत जलाती है तथा कुयें को धोक मारती है । फिर कोरे मटके भर कर रखती हैं । जिसके ऊपरी सिरे पर मोली तथा मंगल सूत्र बंधे होते हैं।[3]

1- डा० सत्या गुप्ता - खड़ी बोली का साहित्य पृ 376-377

2- देवीशंकर प्रभाकर - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ 115

3- वही पृ० 115

पुत्र जन्म पर सवा महिने बाद जच्चा के सिर पर घड़ा रखकर स्त्रियाँ कच्चे सूत को आंटी सजाकर कुँयें पर जाती हैं। उसकी झोली में भीगा बाजरा और सिर पर पीला ओढ़ना होता है। कुँयें की सात परिक्रमा तथा कुँयें की धोक मारती हैं। इसको ' आखाद धोलणें' की रसम कहते हैं। शुभ अवसरों पर कुँयें की मुंडेरी पर दीपक जलाये जाते हैं - आम तौर पर गाँव के सबसे पुराने कुँयें की पूजा का ही विधान है। कुँयें की पूजा का आशय यही है कि ये पानी देकर सबको जीवन दान देता है। जोहड़ :- हरियाणा के प्रत्येक गाँव में एक जोहड़ अवश्य होता है। कार्तिक के पूरे माह सौभाग्यवती स्त्रियाँ और कन्यायें सुबह सुबह सरोवर पर स्नान करने जाती हैं। नहाने से पहले वे सरोवर से गारा या मिट्टी निकाल कर ढेर लगाती रहती हैं। उस ढेर को ' पथवारी ' कहा जाता है। सायंकाल को गीत गाती ' पथवारी ' की पूजा करने जाती हैं। दीपक जलाती तथा घी चढ़ाती हैं। पूर्णिमा तक यह क्रम चलता है। अन्तिम दिन स्नान करने पर जो सरोवर की भेंट कर दिये जाते हैं। ' पथवारी ' की स्थापना प्राय: ' जोहड़ की बहू ' के पास ही की जाती है। ' जोहड़ की बहू ' के प्रतीक में एक बड़ा सा पत्थर किनारे पर रखा रहता है। कई स्त्रियाँ जोहड़ की बहू को भी मनाती मानती हैं तथा दीपक जला कर इसका पूजन करती हैं।

पथवारी पूजते समय गाना गाया जाता है :-

पथवारी खोल किवाड़ी
बाहर खड़ी तेरी सींचण आली

1- स्वयम सर्वेक्षण के आधार पर - 16-3-84 किशनपुर कुरुक्षेत्र से

के नेह री से सोचणा आलो
के मागै से सोचणा आलो
अन्न धान मागै सोचणा आलो
गोद भतोजा कन्हवां जेसा ।।[1]

चाक :- शादी विवाह के अवसरों पर चाक पूजन का प्रचलन भी यहाँ पर काफी है । विवाह के अवसर पर वर के घर में यह पूजन घुड़चढ़ी वाले दिन होता है तथा कन्या के घर फेरों वाले दिन होता है । शाम से पहले थाली में चावल दाल लेकर स्त्रियाँ कुम्हार के घर पर जाती हैं । चाक पर हल्दी से सथिया या स्वास्तिक बनाकर तेल चढ़ाती हैं । चाक पर मौली (कलावा) भी बांधा जाती है । तथा साथ लाई हुई चीजें व पैसे चाक पर चढ़ा दिये जाते हैं । कुम्हार चाक पूजने आई स्त्रियों को एक मटका और एक करवा मौली बाँध कर देता है जो गृह स्वामिनी मंढे के नीचे लाकर रखती हैं । कुछ घरों में पुत्र पैदा होने पर भी चाक पूजन किया जाता है ।

विचार करने पर लगता है कि चाक पूजा के पीछे एक दार्शनिक विचार धारा है । " कुम्हार के चक्र की तरह ही सृष्टि का चक्र भी चलता है - यह चक्र सदा मंगलमय रहे । चाक पूजन की पृष्ठभूमि में यही भावना निहित है । दूसरे शब्दों में धरती पूजन का ही यह दूसरा रूप है । पवित्र घट जो सुख समृद्धि का सूचक है । इस चाक पर ही पलता है और इसी माटी से मानव शरीर भी बना है ।[2]

1- भाषा विभाग हरियाणा - हरियाणा के लोक गीत पृ 27
2- देवी शंकर प्रभाकर - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ 117

ग्रहण :- भारत वर्ष में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में ही ग्रहण की मान्यता है। सूर्य व चन्द्र ग्रहण दोनों होते हैं। पौराणिक कथाओं के अनुसार राहु, सूर्य व चन्द्र देवता के पीछे उन्हें पकड़ने को दौड़ता है - कभी कभी पकड़ाई में आने पर उन्हें ग्रसने का प्रयत्न करता है। यह ग्रसा भाग ही सूर्य या चन्द्र ग्रहण होता है। ग्रसे जाने पर सूर्य या चन्द्र देवता को कष्ट होता है। अतः हरियाणा में ऐसा लोक विश्वास है कि इस समय सूर्य व चन्द्र की मुक्ति के लिये केवल भगवान का भजन करना चाहिए कोई भी काम करना वर्जित माना जाता है।

सूर्य ग्रहण के अवसर पर इस प्रदेश के कुरुक्षेत्र जिले में सन्निहित सरोवर के तीर्थ पर बड़ा भारी मेला लगता है। दूर - दूर से लोग आकर इस सरोवर के तीर्थ पर बड़ी भारी संख्या में स्नान करते हैं। पौराणिक कथा के अनुसार ग्रहण के अवसर पर बहुत से देवी देवता भी इसमें स्नान करने आते हैं। भीड़ इतनी अधिक होती है कि सरकार इसके लिये प्रबन्ध करती है। इसी प्रकार अन्य कई जगह सूर्य व चन्द्र ग्रहण पर मेले लगते हैं। सूर्य ग्रहण पर लोग तरह तरह के अनुष्ठान भी करते हैं। भजन कीर्तन करते हैं। इस समय अनाज कपड़ा आदि दान देने का भी महात्म्य कहा गया है। डकौतों को छायापात्र व ताँबे के पैसे दान में दिये जाते हैं।

वैज्ञानिक विचार धारा के अनुसार जब सूर्य - चन्द्रमा व पृथ्वी एक लाइन में आ जाते हैं तो पृथ्वी पर सूर्य की किरणें चन्द्रमा बीच में होने के कारण नहीं पहुँच पाती या पृथ्वी से पूरा सूर्य चन्द्रमा के आगे आने से दिखाई नहीं देता। अतः जो भाग दिखाई नहीं देता वह ग्रहण होता है। ग्रहण में सूर्य सदा गोलार्द्ध में ही कटता है। अतः स्पष्ट है कि सूर्य पर चन्द्रमा का पृथ्वी का ही प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। वैज्ञानिकों के विचार से ग्रहण को

सोधा आँखों से नहीं देखना चाहिये काले शोशे या पानी में उसका प्रतिबिम्ब देखना चाहिये । अन्यथा आँखों में विकार व नेत्रहानि की सम्भावना रहती है । गर्भवती महिलाओं को ग्रहण देखना या ग्रहण में बाहर निकलना भी वर्जित माना जाता है ।

हरियाणा में ग्रहण में रखी वस्तु भी खाना मना होता है । क्योंकि खाने की चीजों में जीवाणु पैदा हो जाते हैं । परन्तु ऐसी भावना है कि यदि रखी वस्तु में तुलसी के पत्ते डाल दिये जायें तो वह ठीक रहती है । लोग ग्रहण समाप्त होने पर स्नान भी करते हैं ।

देवी पूजन :- हरियाणा में शिव पूजन के साथ साथ शक्ति की उपासना भी काफी प्रचलित है । यहाँ पर देवी की पूजा नौ माताओं के रूप में की जाती है । प्रत्येक गाँव में देवी का मन्दिर होता है । यदि मन्दिर न हो तो देवी की मढ़िया तो सब जगह जरूर होती है । मढ़िया में मूर्ति नहीं होती केवल ' दिया ' जो देवी का प्रतीक माना जाता है । रखने का स्थान होता है । वहीं पर जोत जला कर स्त्रियाँ पूजा कर लेती हैं । देवी माता स्त्रियों को सुख सौभाग्य प्रदान करने वाली मानी जाती हैं । कुमारी व सुहागिन स्त्रियों के कई त्योहार व पूजा पाठ इनसे सम्बन्धित होते हैं । जैसे - साँझी, नौरात्रे, बसोड़ा, गुनगौर इत्यादि । चैत मास में देवी का बसोड़ा रखा जाता है । अरोज शाम को मीठे चावल पकाकर अगले दिन खाये जाते हैं । पूड़े गुलगुले बनाये जाते हैं । सारे पकवान को छोटे छोटे ढेरों में माता के आंगन में पूरा जाता है । जिसे माता की बाड़ी बोना या बाग लगाना कहते हैं । इस अवसर पर स्त्रियाँ गाती हैं -

मैया किन्हे तेरे बाग लगाईयां
किन्हे तेरे कुंये चिणाईया ।।"

देवी की पूजा के सातवें दिन को सीली सातें कहते हैं। इस दिन जेठे बच्चे के बाल भी उतरवाये जाते हैं। कुछ जगह जोड़े को ' जात ' दी जाया करती है।

चेचक को भी माता का प्रकोप माना जाता है। गनगौर की पूजा के समय मिट्टी की गौर प्रतीक रूप में रक्खी जाती है। कोई राज्य के लिए कोई स्वर्ग के लिए, कोई जय तथा कोई अच्छे वर के लिये देवी की पूजा व उपासना करते हैं।

यहाँ पर स्थान स्थान पर ' सत्तियों ' की मढ़ी भी है। स्त्रियाँ जो सती हो जाती हैं, उनको पूज्य मान कर पूजा जाता है।

गंगा यमुना :- गंगा - यमुना दोनों नदियों के प्रति हरियाणा के लोगों में गहरी धार्मिक आस्था है। इसमें स्नान करने का अपना अलग ही महत्व है इसमें स्नान से सब पाप दूर हो कर पवित्र हुआ मानते हैं। गंगा यमुना के लोगों पर इतने उपकार है। अतः यहां का जन मानस इन्हें देवी के रूप में मानता है। अतः गंगा, यमुना मैया की सौंह भी खाई जाती है। यहाँ के त्योहारों पर बनने वाले चित्रों में गंगा यमुना को देवी रूप में चित्रित करके इनकी पूजा का विधान है।

हरियाणवी क्षेत्र का सबसे बड़ा स्नान पर्व कार्तिक पूर्णिमा पर गंगा के किनारे गढ़मुक्तेश्वर में होता है।

सरस्वती :- यह ब्रह्मा की पुत्री सरस्वती नदी शिवालक पर्वत श्रेणियों में सिरमौर की पहाड़ियों से निकलकर अम्बाला के पास से होती हुई कुरूक्षेत्र फिर पहेवा पहुँचती है। यह प्रयाग में तथा पहेवा में आठ कोस केवल प्रकट रूप में बहती है। आर्य मनीषियों ने सरस्वती के तट पर बैठ कर ही वैदिक वांग्मय

के रूप को निखारा । चित्र नं० - 115 पहेवा में सरस्वती के तट पर 8 कोस में 365 तीर्थ हैं तथा उसके अत्यन्त प्राचीन मन्दिर हैं । जैसे -ब्रह्म योनी स्थान - जहाँ ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना की । चित्र 116/128

1- सरस्वती मन्दिर500 वर्ष पुराना है तथा मूर्तियाँ 5000 वर्ष पुरानी मानी गई हैं । चित्र नं० फलक नं० - 117/129

2- श्रीकृष्ण युधिष्ठिर मन्दिर :- इसमें युधिष्ठिर अपने कौरव भाइयों का पिण्डदान तथा क्रिया धर्म करते दिखाये गये हैं । (मन्दिर की 5 पाण्डवों की मूर्तियाँ चित्र नं० एवं फलक नं० 118) 130

3- अष्ट भुजी दुर्गा मन्दिर

4- हनुमान मन्दिर -

5- कार्तिकेय स्वामि मन्दिर :- यहाँ यात्री तेल, सिन्दूर चढ़ाते हैं, यहाँ पर दो ज्योत 500 वर्ष से लगातार जल रही है ।[1]

6- पृथ्वेस्वर महाराज मन्दिर :- 200 वर्ष पुराना शिव मन्दिर है । चित्र नं० - फलक नं० - 119 (2)/131

7- डेरा नाथों वाला :-

8- मन्दिर बाबा श्रवण नाथ :- 2000 वर्ष पुराना मन्दिर है जिसमें असली कसौटी पत्थर की महादेव की पाँच मुखी मूर्ति है । जो उस समय सवा लाख रुपये की थी । चित्र नं० -120 फलक नं० - 132

9- मन्दिर बुलेदर गार्ड शाह - इनकी सवारी घोड़ा थी । यहाँ पर

1- स्वयम् सर्वेक्षण में वहाँ के प्रधान श्री वेद प्रकाश जी से साक्षात्कार से प्राप्त सूचना के आधार पर ।

(पेहवा)
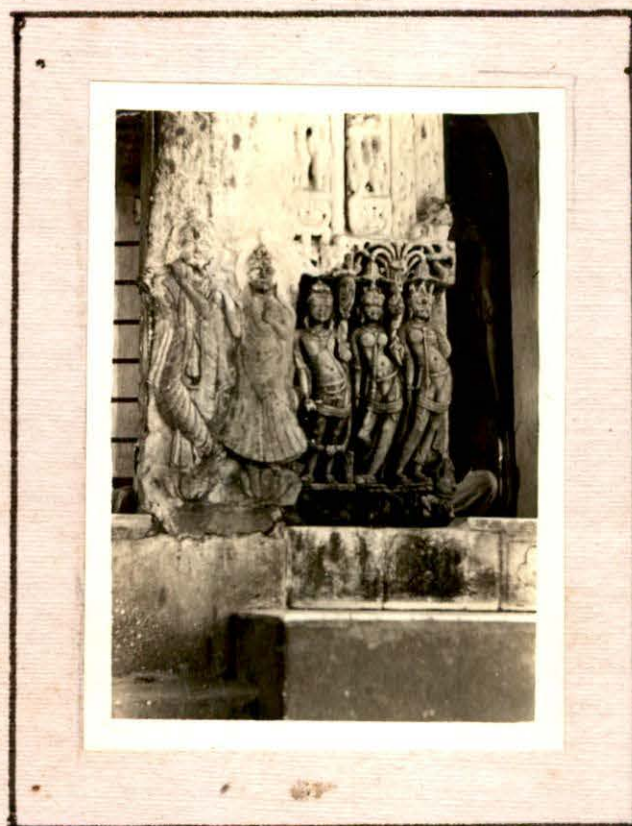
सरस्वती मन्दिर की चौखट पर पाँच हज़ार वर्ष पुरानी सुन्दर मूर्तियाँ

चित्र संख्या 117

हरियाणा में भगवान कृष्ण का बाल्यकाल रहा। पहले यमुना के तीर पर वंशी के धुन सुनी और फिर कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में युग-पुरुष बने। यहाँ के लोगों में उनके प्रति श्रद्धा वैसी है जैसे निकट के किसी श्रद्धेय के लिये होती है। यहाँ के लोक साहित्य में भी कृष्ण लोक प्रिय नायक है। जो अब भी गोपियों के साथ रास रचाते लगते हैं। इस देवता की सुखद अनुभूति जन्माष्टमी पर होती है जो यहाँ बड़े धूम धाम से मनाई जाती है। घर घर में कृष्ण की सुन्दर झांकियाँ सजाई जाती हैं। जो अवर्णनीय हैं।

इस दिन सोलह कलाओं से युक्त भगवान श्री कृष्ण का अवतार हुआ था। भगवान ने स्वयम् कहा है कि जब जब पृथ्वी पर पाप अनाचार और असुरत्व का प्रभाव बढ़ता है, तब तब मैं अवतार लेकर पृथ्वी का संताप हरता हूँ। श्री कृष्ण ने कंस, पूतना, नरकासुर आदि असंख्य पापियों का नाश किया।

कृष्ण को यहाँ पर एक बड़े तान्त्रिक के रूप में भी माना जाता है जिन्होंने सर्प रूपी इगला - पिंगला, सुषुम्ना आदि कुण्डलियों को वश में कर लिया था तथा परम योगी की सिद्धि प्राप्ति की थी।

भैरव :- यहाँ हरियाणा में कहीं कहीं भैरव पूजा भी प्रचलित है। किसी पेड़ या पत्थर पर सिन्दूर या तेल चढ़ा देखो तो भैरव का स्थान समझना चाहिए। स्वामि कार्तिकेय पर भी तेल, सिन्दूर चढ़ाया जाता है। कार्तिकेय का मन्दिर केवल पेहवा में ही है। सम्भव है भैरव पूजा इन्हीं स्वामि-कार्तिकेय की पूजा का रूप हो। भैरव शिव के गण माने जाते हैं तथा कार्तिकेय उनके पुत्र। पूजा की यह एक रूपता एक ही परम्परा का देवता होने के कारण भी आ सकती है।

गूगा पोर :-

गूंगा की पूजा तथा मान्यता यहाँ खूब प्रचलित है । देवता होने के साथ गूँगा पोर यहाँ के लोक साहित्य का लोक प्रिय पात्र भी है ।

गूँगा पोर के साथ साथ सादिक और पंचपोरों की पूजा भी होती है । किसी भी सिद्ध फकीर की समाधि या दरगाह को पोर का स्थान समझकर उसकी पूजा की जाने लगी । पंखी, मोली, मोर पंखा, लाल चुनरी, नारियल, बतासे, फल, अन्न आदि सामग्री उन पर चढ़ाई जाती है ।

गूगा पोर सर्प दंश के उपचार के लिये विख्यात थे । अतः सर्वत्र इनका आदर मान होता था । आज भी सर्पों के देवता के रूप में लोक-भित्रों में इनका अंकन किया जाता है ।

हरियाणा में अब भी बहुत सी पुरानी रूढ़ियाँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं । भूत - प्रेत, ओपाड़ा आदि बातों पर अब भी विश्वास किया जाता है । क्योंकि ऐसी कोई बात होने पर मनौती मानी जाती है । अन्ध - विश्वास अब भी यहाँ पर काफी है । जिसका ज्ञान हमें यहाँ पर प्रचलित कहावतों से होता है । जैसे -

कहावतें

मोटा ब्याज साहुकार ने खोवे, औरत ने खोवे हांसी ।
आलस नींद किसान ने खोवे, चोर ने खोवे खांसी ।।

1- जर्नल आफ हरियाणा स्टडीज वाल 2 सं 1-2 जन दिसं 1970 पृ 75

खोतो तो थोडो करे मेहनत करे सवाई
राम चाहे उस मानस को टोटा कमो न आए ।।[1]

लोकोक्ति - : आप्पा मारेंह बिन सुरग कडे '[2]
(अपने मन को मारे बिना स्वर्ग कहाँ मिल सकता है)
तथा
घर्णों घरां का भाणजा भूक्खा ए सोवे '[3]
(बहुत घरों का भानजा प्रायः भूखा हो सोता है)

यहाँ अन्ध विश्वास असंख्य हैं । विषम अंक शुभ तथा तीन और तेरह अमंगलकारी होते हैं । बनिया या कोई भी दुकानदार पहला सौदा उधार नहीं देता । नकद पैसे बोहनी कहलाते हैं । सोम और शनिवार को पूर्व दिशा में यात्रा नहीं करते । भैंस सिर मार कर रस्सी ढीली करती हुई अशुभ तथा रस्सी कसती हुई शुभ होती है । नये मकान में काली हाँडी पर मुँह बना कर टांगा जाता है । गाडी पर फटा जूता लटकाया जाता है ताकि कुदृष्टि से बचे । ऐसा मकान जो आगे से चौडा पीछे से संकीर्ण हो अशुभ मानते हैं ।[4] इत्यादि । मोर को यहाँ बडा शुभ पक्षी माना जाता है । नई हवेली पर धातु का मोर स्थापित किया जाता है । बच्चों की टोपी पर मोर कढा जाता है तथा स्त्रियां देह पर मोर के चित्र

1- जर्नल आफ हरियाणा स्टडीज - वाल 2 सं 1-2 जन दिसं 1970 पृ 75
2-3 जयनारायण वर्मा - हरियाणवी लोकोक्तियाँ शास्त्रीय विश्लेषण पृ० 21

4- डी० सी० वर्मा - हरियाणा पृ० - 80

गुदवाती हैं ।[1]

बीमारियों से बचने को भी कई प्रकार के टोने टोटके किये जाते हैं । जैसे जच्चा को भूतों के प्रभाव से बचाने को चारपाई के पास लोहे की कील डाली जाती है । डरने वाले छोटे बच्चे के पास चाकू, कैंची रखनी जाती है । प्रेतात्मा से प्रभावित होने पर ओझे या सेवड़े को बुलाया जाता है । भूतों की सत्य कथायें भी यहाँ पर काफी प्रचलित हैं ।

पहले ऐसी बातें हरियाणा में काफी थीं परन्तु अब पिछले पचास वर्षों में यहाँ प्राचीन काल से चली आ रही रुढ़ियाँ काफी कम हो गई हैं । इसका मुख्य श्रेय आर्य समाज के प्रवर्तकों को है जिन्होंने यहाँ के अपढ़ व भोले भाले लोगों को वीर पुरुषों, पुण्यात्माओं, ऋषि - मुनियों की कथा सुनाकर उनके हृदय में वैदिक संस्कृति के प्रति अनुराग जगाया । साथ ही आडम्बर, पाखण्डों और अन्ध विश्वासों का खण्डन किया । लोगों को आत्म विश्वासी तथा प्रगति वादी बनाया । इसमें ईश्वर सिंह, न्यौणांद सिंह तथा भीष्म जी का नाम मुख्य है ।[2] आज भी आर्य समाज के प्रवर्तक इस दिशा में कार्यरत है । करनाल जिले में श्री मेला राम ' वर्क ' तथा ' डा० गणेस दास अरोड़ा ' का नाम स्त्री - शिक्षा के क्षेत्र में सदा अविस्मरणीय रहेगा । इन्होंने स्त्रियों की उच्च शिक्षा के लिये केवल स्त्रियों के लिये ही दो महाविद्यालयों की स्थापना करवाई तथा अनेकों स्कूल खुलवाये जिससे स्त्री शिक्षा को बहुत प्रोत्साहन मिला । सरकार की तरफ से भी पूरा सहयोग प्राप्त हुआ जिससे शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ा यह प्रदेश

1- देवी शंकर प्रभाकर - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन
2- " हरियाणा - लोक विश्वास - पृ ।17

महत्वपूर्ण प्रगति कर गया ।

अस्पृश्यता के खण्डन से दलित वर्ग भी आत्म विश्वास पैदा कर रहा है । लोक विश्वास तथा पुरानी परम्पराओं पर भी इसका प्रभाव पड़ा है । लोक कलायें - लोक नाट्यों पर भी इसका प्रभाव पड़ा है । जागरण आने से लोगों ने अब पुराने रीति - रिवाज छोड़ने शुरु कर दिये हैं । अब शिव मन्दिरों में लोगों की श्रद्धा कम हो गई है । अतः लोग अत्याचार, अनाचार, झूठ तथा पाप करने में कम डरने लगे हैं ।

अतः यह कहा जा सकता है कि इस सुधार वादी आन्दोलन ने इस प्रदेश को कुछ दिया है तो कुछ ले भी लिया । फिर भी नई जागृति ज्यादा महत्वपूर्ण है ।

परन्तु यदि हम पड़ोसी प्रदेशों जैसे राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश से यहाँ की लोक चित्रकला की तुलना करें तो हम पायेंगे कि इन दोनों प्रदेशों में ज्यादा त्योहार मानाये जाते हैं तथा त्योहारों पर बनाई जाने वाली लोक चित्रकला का रूप भी ज्यादा कलात्मक होता है । हरियाणा में त्योहारों पर चित्रकला का कम महत्व तथा लोक गीतों तथा मन्दिर मढी आदि पर जाकर पूजा कर लेने की प्रथा अधिक है । उत्तर प्रदेश में त्योहारों पर लगाई जाने वाली अल्पना, पर्वों पर बनाये जाने वाले चित्र, शादी - विवाह पर किये जाने वाले प्रत्येक कार्य में कलात्मकता झलकती है । इसका कारण यहाँ की पुरानी सभ्यता है । मिट्टी के बरतन, खिलौने, मूर्तियाँ आदि आज भी उसी प्रकार के हैं । जैसे प्राचीन समय में थी । लोक कला पर रीति - रिवाजों, रहन - सहन, पूजा, अर्चना और प्रतिदिन के जीवन की झलक होती है । यहाँ देवी - देवताओं की पूजा, चौक पूरना, अनुष्ठान यथावत ही चलते रहे । लोक कला जीवन का अनिवार्य अंग थी । अतः कला का उत्थान होता गया और आज हम देखते हैं कि और प्रदेशों की अपेक्षा उत्तर प्रदेश में लोक चित्रकारी तथा उसमें कलात्मकता अधिक है । इसका

कारण यहाँ मुस्लिम सभ्यता का प्रभाव भी होना है । मुसलमान लोग ज्यादा कला प्रिय व कलात्मक वस्तुयें बनाने में बहुत दक्ष होते हैं । अतः यहाँ कला का रूप ज्यादा विकसित होता गया । शिक्षा का प्रभाव भी कला पर पड़ता है । उत्तर - प्रदेश तो शिक्षा का बड़ा भारी केन्द्र रहा है । अतः यहाँ की कला भी उन्नत रही है । इसी प्रकार राजस्थान की मेंहदी प्रसिद्ध है । यहाँ की स्त्रियाँ मेंहदी लगाने में इतनी दक्ष हैं कि उनकी मेंहदी के रूप - आकार देखते ही बनते हैं । राजस्थान में भी तीज - त्योहारों पर बनाये जाने वाले चित्र यहाँ की पुरानी रीति-रिवाज, सभ्यता पर ही आधारित है ।

लोक कला , लोक मानस से प्रेरणा और पोषण पाती है तथा उसी को प्रतिबिम्बित करती है । हरियाणा एक खेती प्रधान व पशु - पालन वाला प्रदेश है । यहाँ की स्त्रियों का कार्य पुरुषों के साथ खेती व पशु - पालन में सहायता करना है । फिर भी बचे समय में, त्योहारों पर्वों पर वो अपने देवी - देवता नहीं भूलतीं । परिवार के व अपने कल्याण के लिये देवी - देवताओं के प्रकोपों से बचे रहने को तथा जीवन में खुशहाली के लिये अपने इष्ट देवताओं की पूजा पूर्ण निष्ठा पूर्वक नियमित रूप से करती चली आ रही हैं । एक भय से तथा प्राचीन रूढि व अन्ध - विश्वास के रूप में । अतः उसमें कलात्मकता व सौंदर्य तत्व कम है । क्योंकि ये मनो - विनोदार्थ कम, आवश्यक ज्यादा है । परन्तु अब नव - जागरण के साथ - साथ या यों कहें कि व्यक्तिगत और सामूहिक लाभ के कारण ही जन समाज की आस्था है ।

लोगों के विचार, रहन - सहन व शिक्षा का स्तर ऊँचा हुआ है ।

इसका प्रभाव कला पर भी अवश्य पड़ेगा । सर्वेक्षण के अन्तरगत पाया गया कि बड़ी - बूढ़ी स्त्रियों से उनकी लड़कियाँ, बहुयें व उनकी लड़कियाँ लोक चित्रण कला में ज्यादा दक्ष हैं । घर की सजावट, खोल, खिलौने, हस्तकला का सामान, त्योहारों पर बनाये जाने वाले चित्र मेंहदी - अल्पना सब में धीरे - धीरे नया रूप बनाने में अधिक सुघड़ता आती जा रही है । यहाँ के लोक गीत, लोक नृत्य विश्व - ख्याति प्राप्त कर रहे हैं । सरकार भी इस प्रदेश की ओर उन्नत तथा हरियाणवी लोक - साहित्य व कला के कोष को समृद्ध बनाने का भरपूर प्रयत्न कर रही है जिससे भारत की प्राचीन संस्कृति व सभ्यता विकसित व पोषित होती रहे ।
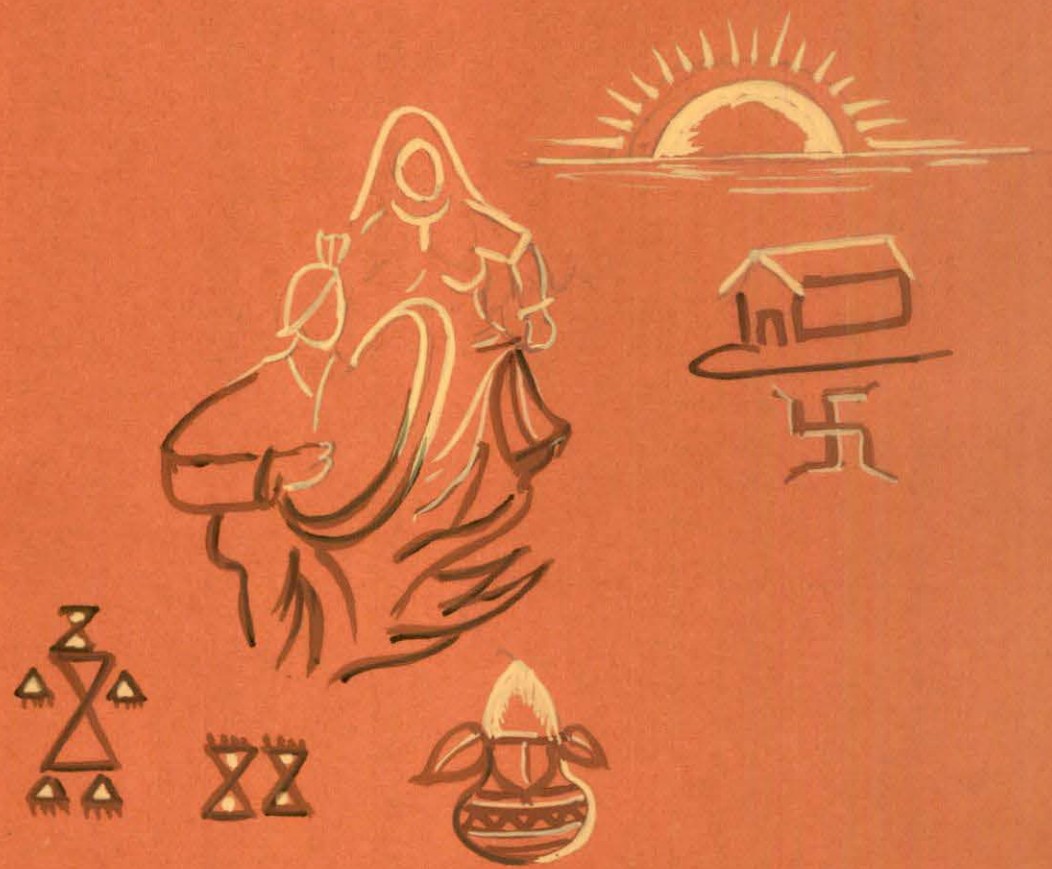
अध्याय नवम

उपसंहार - हरियाणा लोक चित्रकला का निष्कर्ष एवं उसका भविष्य

अध्याय - नवम्

उपसंहार- हरियाणा लोक चित्रकला का निष्कर्ष एवं उसका भविष्य :

हरियाणा की लोक चित्रकला के सम्पूर्ण अध्ययन के बाद निष्कर्ष निकालने के लिये पहले यह आवश्यक है कि हम देखें कि यहाँ की कला, कला तत्वों के अनुसार पूर्ण है कि नहीं । क्योंकि किसी भी वस्तु को कसौटी पर कस कर ही हम उसके लिये कोई निष्कर्ष निर्धारित कर सकते हैं ।

1- आकार तथा उसमें निहित भाव :-

हरियाणा की लोक चित्रकला को देखने से यह

पता लगता है कि यहाँ कला में निहित भावों को आकार की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है। यहाँ पर प्रयोग किये जाने वाले लोक चित्र आकार में ज्यादातर प्रतीकात्मक हैं जो साधारण रेखाओं द्वारा ही व्यक्त किये जाते हैं। जिसमें केवल भाव की पुष्टि और अनुष्ठान को पूर्ण करने का भाव रहता है। इन आकारों में दैनिक उपयोग की वस्तुयें ही ज्यादा बनाई जाती हैं या ये चित्र प्रकृति से प्रभावित होते हैं। जैसे करवा - चौथ व अहोई के चित्रों में दैनिक उपयोग की चीजें जैसे दीपक, चलनी, करवा, घड़ा, सुहाग की चीजें जैसे कंघा, शीशा आदि। प्रकृति की चीजें जैसे - सूर्य - चन्द्रमा, पेड़ - पौधे, फूल - पत्ते, पशु - पक्षी आदि का अंकन होता है। इसमें चित्रित आकारों से भाव का स्पष्टीकरण सरलता से हो जाता है। केवल रेखाओं द्वारा ही आकारों को उभारने का प्रयत्न किया जाता है। कहीं कहीं रंग आदि भर कर परम्परागत रूप में आकृतियों की रचना की गई है। चित्रकार चित्रों के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति करता है।

यहाँ के चित्रों में श्रद्धा व शुद्धता की भावना भरपूर रहती है। शत्रुओं को भी चित्र मान कर पूजा जाता है। जैसे मनुष्य का दुश्मन - नाग, नाग पंचमी पर चित्र बनाकर या रस्सी में गाठें लगाकर नाग के प्रतीक रूप में पूजा जाता है। इसी प्रकार गाय - बछड़ा भी पूज्य है। अतः चित्रण की पवित्रता और लोक चित्र की साधना अद्वितीय है। यहाँ के चित्रों में भावों के साथ सार्व भौमिकता की भावना भी है। प्रत्येक आकृति का अर्थ साधारण रूप से स्पष्ट होता है।

2- आकार में पूर्णता :-

यहाँ की चित्रकला में चित्रित चित्र अपने में पूर्ण होते हैं। साधारण -

तथा आकृतियाँ सीधी, वक्र, तिरछी रेखाओं द्वारा अंकित की जाती हैं। इन्हीं रेखाओं से मानव आकृतियाँ, पशु - पक्षी आदि बना दिये जाते हैं। दो एक दूसरे को काटती हुई रेखाओं से मानव - आकृति बन जाती है जिनका गूढ़ मतलब होता है। देवी - देवताओं की आकृतियों को भी निपुणता से बनाया जाता है। जिससे लोक चित्र कलाकारों की दक्षता का ज्ञान होता है। बनावट से देवी देवता पहचान लिये जाते हैं। आकृतियों में प्रतीकात्मकता के साथ साथ भावों को भी पूर्ण रूपेण स्पष्ट किया जाता है।

3- स्वतन्त्र भाव :- लोक कला के रूप दैनिक जीवन से पूर्णतः संबंधित होते हैं।[1] लोक कला किसी माध्यम विशेष से नहीं बँधी रहती है। कलाकार माध्यम, टेकनीक की दृष्टि से पूर्ण स्वतन्त्र होता है। वह एक माध्यम की अनुकृति दूसरे माध्यम में भी कर सकता है। लोक चित्रकला की आकृतियों में रेखा, रंग तथा प्रकाश छाया का सरलीकरण होता है।[2] अतः बिना किसी यन्त्र की सहायता से मुक्त हस्त से चित्र बनाये जाते हैं। चित्र बनाने में कोई बन्धन नहीं। कोई शिक्षा दीक्षा की आवश्यकता नहीं। यह परम्परागत रूप में होती है। प्रत्येक त्योहार पर बनाये जाने वाले चित्र स्त्रियों को याद रहते हैं कि किस पर्व पर कौन सा चित्र बनेगा। इसके लिए कुछ सोचना नहीं पड़ता। साधारण रूप से जब भी कोई शुभ कार्य होता है। इनकी उँगलियाँ दक्षता के साथ पूरना पूरने में तथा चित्र बनाने में चलने लगती हैं। प्रत्येक त्योहार और उत्सव के लोक चित्र की पूर्व दीक्षा किसी भी कलाकार को नहीं होती परन्तु जब भी वह चित्रण करता है तो प्रत्येक आकृति पूर्ण होती है। भावों की भी स्वतः ही अभि -

---

1- डा० गिरीज किशोर अग्रवाल - कला निबन्ध पृ 125

2- वही पृ० - 127

व्यक्ति होती है । और लोक चित्र की लोक प्रियता की तो सीमा ही नहीं होती । लोक कला कृतियाँ लोक सापेक्ष होती हैं । उसमें निहित भावनाएँ किसी एक व्यक्ति से सम्बन्धित न होकर समस्त समाज से ही सम्बन्धित होती हैं । लोक कलाकार पूर्ण स्वतन्त्र होकर कार्य करता है । उसको कोई प्रतिद्वन्दी नहीं होता ।

दैनिक जीवन की आवश्यकतानुसार परिवर्तन आते रहते हैं और उसी के अनुसार कलाकृतियों में भी थोड़ा बहुत सुधार कर दिया जाता है । अतः लोक चित्र कला में कलाकार पूर्ण रूप से भाव प्रकाशन में स्वतन्त्र होता है । इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोई बन्धन न होने के कारण यह भय नहीं है कि तंग आकर लोक चित्रकार अपनी कला को छोड़ देंगे । अतः इसका भविष्य उज्जवल है ।

कार्य कुशलता :- कलाकृति का ' कुशलता ' से विशेष सम्बन्ध है जो कृति जितना कुशल कलाकार बनायेगा वह उतनी ही पूर्ण होगी, यह धारणा गलत है । लड़कियाँ नौरात्रों में साँझी देवी के चित्र की रचना करती हैं । भाँति भाँति से उसे सजाती हैं । घर में ही सरलता से उपलब्ध साधनों का प्रयोग करती हैं । इसका वह कभी पूर्वाभ्यास नहीं करतीं । बड़ी कुशलता के साथ चित्र का निर्माण करती जाती हैं तथा उनकी रचना बड़ी मनोहारिणी भी होती है । किसी भी पर्व पर उन्हें देखने व किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं होती । स्वतः ही सुबह स्नान करके तथा स्थान को लीप - पोत कर निःसंकोच होकर अत्यन्त भाव पूर्ण चित्रों की रचना करती हैं । लोक कला की यह विशेषता है कि जब भी कलाकार चित्र बनाता है, उस चित्र का घर में महत्वपूर्ण स्थान होता है । उसका प्रभाव भी व्यापक होता है । उसकी कृति बिना किसी स्वार्थ के,

व्यक्तिगत और मूल्यवान होती है । लोक कलाकार कभी अपने यश की चिन्ता नहीं करता । अतः अपना नाम नहीं लिखता । बल्कि उसका यह प्रयत्न रहता है कि वह अपनी कृति में अपने व्यक्तित्व की छाप ऐसी छोड़े कि प्रत्येक देखने वाला उसे पहचान जाये । प्रत्येक पर्व पर वह पहले से अच्छा चित्रांकन करने का प्रयत्न करता है । यही प्रयत्न उसको उत्साहित करता रहता है । अतः हम इसके उन्नत भविष्य का अनुमान सहजता से लगा सकते हैं ।

आकृति का दोष रहित होना :-

लोक चित्र कला में किसी विशेष शिक्षा - दीक्षा की आवश्यकता नहीं बल्कि लोक कलाकार परम्परागत रूप से आ रही मान्यताओं एवं अलंकारों को स्वतः ही सीख लेता है । इसमें बनने वाली आकृतियाँ इतनी सरल व साधारण होती हैं कि कुछ ही लाइनें लगाने पर वही रूप ले लेती हैं जो इच्छित होता है । उसमें कोई त्रुटि रहने का अवसर ही नहीं होता । थोड़ा बहुत अन्तर हो भी तो लोगों का उस ओर ध्यान ही नहीं जाता । उन्हें कोई ज्यामितीय यन्त्रों की सहायता की आवश्यकता नहीं होती । स्वाभाविक व सरल रूप से आकृतियों की रचना हो जाती है । साधारण जनता धार्मिकता तथा चित्र निहित भावों से इतनी ज्यादा ओत - प्रोत होती है कि उसे चित्र की विवेचना का समय ही नहीं मिलता । और न ही उनका ध्यान इस ओर आकर्षित ही होता है । लोक चित्र कला की उपादेयता प्रभावशाली और अत्यन्त व्यापक होती है ।

विशेषकर गोल आकृति बनाने के लिये भी स्त्रियाँ किसी वस्तु का प्रयोग नहीं करतीं । कभी कभी कटोरी, गिलास की सहायता से गोल आकृतियाँ बना भी ली जाती हैं परन्तु उसको ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता । उनका उद्देश्य केवल भावों की पूर्ति में ही रहता है । आकारों का

ज्यादा महत्व नहीं होता । फिर भी इन चित्रों में लय का महत्वपूर्ण स्थान रहता है । एक ही आकृति को दो - दो बार दुहराया जाता है पर बिना किसी यन्त्र की सहायता के । चित्र के चारों ओर बनने वाली बेल में भी लय रहती है । विभिन्न अवसरों पर चित्रित की जाने वाली आकृतियाँ लयपूर्ण होती हैं, वह आकृतियाँ जीवन में भी लय प्रदान करती हैं । लोक चित्रकला में होने वाली कोई भी पुनरावृत्ति लोक चित्रकार की भावना को अभिव्यक्त करती है ।

अलंकारिकता :- चित्रांकन में अलंकारिकता चित्र के रूप को बढ़ाती है तथा कला इससे ज्यादा लोक प्रिय बनती है । कन्यायें ' साँझी ' के रूप को इतना सजाती - संवारती हैं कि उस मोहिनी मूरत को देखकर प्रत्येक व्यक्ति उस आकृति की ओर आकर्षित हुये बिना नहीं रहता । और श्रद्धा से उसका मस्तक स्वतः ही झुक जाता है । वैसे भी ये आकृतियाँ धार्मिक भावनाओं से अविभूत होने के कारण अपने में पूर्ण होती हैं । उन्हें अधिक अलंकरण की आवश्यकता नहीं होती । वे तो स्वतः ही सुन्दर होने या न होने पर भी सुन्दर दिखाई देती है । क्योंकि उनका प्रभाव ही सबको प्रभावित किये रखता है ।

आलेखनों का कार्य आकृति को सौन्दर्यता प्रदान करना ही होता है । उनका कोई अर्थ नहीं होता और न ही उनका आकृति से कोई सम्बन्ध ही होता है । अपनी आत्म सन्तुष्टि के लिये चित्रकार अलंकरण चित्रित करता है जिसका रूप प्रायः प्रकृति से सम्बन्धित होता है ।

आकार व विषय की एकता :-

आकार व विषय की एकता के कारण भी लोक चित्रकला ज्यादा

प्रिय है । विषय प्रायः रीति रिवाज और लोक व्यवहारों से सम्बन्धित होते हैं । इन चित्रों में प्रकृति से सम्बन्धित आकृतियाँ भी बनाई जाती हैं । तथा लोक चित्रकार अपनी प्रतिभा से दैनिक उपयोग की वस्तुओं को भी सुन्दर रूप देने का प्रयत्न करता है । कला कृतियों में धार्मिक भावना का पुट महत्वपूर्ण रहता है । अतः सौन्दर्य तत्व में शिव - तत्व भी प्राप्त होता है । देवी - देवता को न मानने का साहस किसी में नहीं होता । देवी - देवता उदार भावना के प्रतीक माने जाते हैं । हरियाणा वासियों का देवी - देवताओं में पूर्ण विश्वास रहता है । कभी अनिष्ट भी हो तो अपने को ही दोषी मानते हैं । उनका दृढ विश्वास होता है कि भगवान भला ही करेंगे - काम बिगड़ने पर यही सोचते हैं कि शायद इसी में ही भलाई है । इस प्रकार आकारों में समानता है । कभी - कभी चित्रों में आकृतियाँ भद्दी होने पर भी कल्याणकारी भावना होने के कारण जन-मानस में लोक प्रिय है ।

यह कला सरल, साधारण होने के कारण भी अधिक लोक प्रिय है । इसे गम्भीर चिन्तन का विषय नहीं माना जाता । और न ही इसको शास्त्रीय बन्धनों में बाँधने का कोई प्रयत्न करता है । इसीलिये बिना हिचके के मानव - समाज आज तक इसे परम्परागत रूप से मानता चला आ रहा है ।

लोक कला विचार व्यक्त करने का साधन :-

लोक कला मौलिक कृति होती है । उसमें चित्रकार की आत्मा विद्यमान रहती है । तथा सत्यं - शिवं और सुन्दरता का पूरा योग रहता है । जिसमें यह भाव होंगे, वह कृति अवश्य ही सुन्दर होनी चाहिए । इसको सुन्दर बनाने में कलाकार को कोई साधन नहीं जुटाने पड़ते । जैसा भी

पर्व होर , सरल उपलब्ध साधनों से दोवार या भूमि पर भक्ति तथा श्रद्धा से कलाकार चित्र आंकना आरम्भ कर देता है । परम्परा के अनुकूल व भाव पूर्ण चित्र को रचना करता है । डा० अवनोन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार '' कला का परम्परा रहित होना असम्भव है ।''[1]

यदि हम यह कहें तो अतिशयोक्ति न होगो कि लोक कला ने शास्त्रोय कला को भो प्रभावित किया है । अलंकरण करने में कितने हो लोक कला में प्रयुक्त होने वाले प्रतोक प्रयोग में लाये जाते हैं । लोक कला में स्थानोय वातावरण का प्रभाव अवश्य रहता है क्योंकि चित्रकार जिस वातावरण में रहता है, वहो व्यक्त करता है । लोक कला परम्परागत होने पर भो नित नवोन है ।

प्रतोकों द्वारा भाव प्रकाशन :-

लोक कला कार का प्रयत्न रहता है कि अपने ज्यादा से ज्यादा भावों को चित्र में प्रगट कर सके । इसके लिये वह प्रतोकों को सहायता लेता है । जैसे किसो देवो या देवता को अधिक बलशालो व देवत्व प्रदान करने के लिये वह आकृति के चार या आठ हाथ बना देता है । देवता रूप दिखाने के लिए सिर के पोछे वृत्त बना दिया जाता है या सूर्य के तेज को दिखाने के लिये चारो ओर छोटो - लम्बो लाइनें लगा दो जातो हैं । लोक कला में धार्मिकता को प्रधानता रहतो है । अतः देवो - देवताओं का चित्रण अधिक होता है । महाबोर को पूंछ लगाकर, गणेश को सूँड लगाकर, तोर

1- डा० ए० एन० टैगोर - आर्ट विद आउट ट्रेडोशन इज एन इम्पोसोबिलिटो ।

कमान को राम के रूप में, मोर पंख व बांसुरी को कृष्ण का प्रतीक बनाया जाता है जो जीवन में गहन स्थान प्राप्त किये हुए हैं । ऋतु - परिवर्तन के प्रतीक त्योहारों पर जो चित्र बनाये जाते हैं, उसमें प्रकृति का रूप, राष्ट्र की सुख समृद्धि के लिये मंगल कामना का भाव होता है । दैनिक व्यवहार की तथा प्रकृति का चित्रण उनके अनुकूल रहने के भाव से किया जाता है । तथा सुख समृद्धि व मंगल कामना का भाव रहता है । जैसे साँप, बिच्छू, सूर्य - चन्द्रमा, सीढ़ी, पेड़ आदि । ये प्रतीकात्मक होते हुए भी उक्त भावों को दर्शाते हैं ।

चित्रों को भाव पूर्ण व अधिक प्रभावशाली बनाने में कल्पना शक्ति की भी आवश्यकता पड़ती है । देवी के चित्रों को अधिक सुन्दर व प्रभावपूर्ण बनाने के लिये वह देवी को काल्पनिक आभूषण पहना कर सुन्दर बनाने का प्रयत्न करता है । आभूषणों के चित्रों में तत्कालीन प्रभाव अवश्य रहता है । अतः कला अति प्राचीन रूप में न रह कर नवीन रूप लेती जाती है ।

लोक कलाकृतियां द्वारा संदेश :-

हरियाणा की लोक चित्रकला कलात्मक होने की अपेक्षा भावपूर्ण अधिक है । व्रत - उपवास, उत्सव धार्मिक अनुष्ठानों में सुख समृद्धि की भावना निहित रहती है । जिसके लिये अनेक मांगलिक कार्य किये जाते हैं । रक्षा बन्धन पर श्रवण कुमार की कथा व चित्र से मातृ व पितृ भक्ति की भावना तथा भाई बहिन का प्यार, करवा चौथ पर पति के प्रति श्रद्धा व उसके दीर्घायु की कामना, होई पर सन्तान के प्रति प्रेम, शीतला - अष्टमी पर रोग मुक्ति की कामना विभिन्न उत्सवों पर सार्वभौमिक मंगल कामना की जाती है । अतः यह चित्र सुखद संदेश भी देते हैं ।

लोक कला में ज्यामितीय आकारों का प्रयोग :-

आकृतियों को सरल व अधिक प्रतीकात्मक बनाने के लिये कलाकार ज्यामितीय आकारों का अधिक प्रयोग करता है। दो त्रिभुज कोनों से मिलाकर बनाने से ( ) आकृति का निर्माण किया जाता है। कहीं कहीं सीधी रेखा खींचने को डोरी का प्रयोग में लाया जाता है। गोलाकार, कटोरी या ढक्कन से बनाया जाता है। जो धार्मिक व भावुक रूप के प्रतीक हैं। तरह तरह की रेखाओं से अलंकरण किये जाते हैं। जिसमें सरलता, सुलभता, अनुभूति तथा मनोवृत्ति आदि सहज मानवीय गुण होते हैं। कई बार एक ही आकार को भिन्न भिन्न रूप में प्रयोग किया जाता है। मनुष्य व देवी - देवताओं की आकृति में अन्तर नहीं होता चिड़िया, मोर आदि को केवल उनके पंखों से जाना जाता है।

हरियाणा की लोक आकृतियाँ रेखा प्रधान होती हैं। कहीं - कहीं स्त्री - पुरुष की आकृति में अन्तर भी दिखाया जाता है। आकृति स्पष्ट रूप से बनाई जाती है। परम्परा से चली आ रही मान्यताओं के आधार पर ही कलाकार आकृतियों का चित्रण करता है जो सभी चित्रों में पाये जाते हैं। जैसे - स्त्री - पुरुष, पेड़ - पौधे, साँप - बिच्छू, त्रिशूल, स्वास्तिक, ओउम्, सूर्य - चन्द्र इत्यादि। इनको रेखाओं से ही बनाया जाता है। शुद्ध प्रकृति का रूप इन आकृतियों से ही प्रदर्शित होता है जो परम्परागत है।

धार्मिक पर्व आदि मनाने का तथा उन पर चित्रों की रचना का उद्देश्य दैनिक भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छा को अनुष्ठानों द्वारा प्राप्त करना होता है। उद्देश्य की प्राप्ति में सौन्दर्य का कोई स्थान नहीं

होता फिर भी प्रत्येक स्त्री चाहती है कि उसके द्वारा किया गया हर काम सुन्दरता पूर्वक किया जाय । इसके लिये सुन्दर चित्र बनाकर उसमें रंग आदि भरे जाते हैं । यह भावना हरियाणा के जन मानस के अन्दर सौंदर्य बोध तथा कला पारखी होने को प्रकट करती है । परन्तु सौन्दर्यता के अतिरिक्त इसमें व्यक्तिगत व पारिवारिक लाभ तथा प्राकृतिक अनिष्टों के दमन की भावना भी रहती है ।

लोक कला चित्रों में रहस्य की भावना भी रहती है । लोग पर्व - त्योहारों पर कुछ ऐसे उपक्रम करते हैं जिनसे उनका कल्याण हो तथा बुराई का नाश हो । दशहरे के त्योहार पर रावण के पुतले को जलाना राक्षस जाति को नष्ट कर सुखी हो जाना है । होली पर, होली मंगलाना बुराई को नष्ट करने का प्रतीक है । वह बिना सोचे समझे कुछ सिद्धान्तों को यों ही स्वीकार करता चला जाता है । शंख, स्वास्तिक, ग्रह - कुण्डलियाँ, चक्र , कलश आदि मंगलमय तथा सुख - समृद्धि के प्रतीक हैं ।

हमारी लोक कला आज अल्पनां, चौक पूरना, थापे लगाना, सांझी आदि विभिन्न रूपों में समस्त लोक मानस में पूजित है ।

हरियाणा के नारी वर्ग को कोई प्रतिबन्ध नहीं है । वह धार्मिक सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक किसी भी अंश को लेकर लोक चित्र बना सकती है ।[1] ये कला वस्तुएं, जो लोक मानस में पनपती हुई हम तक पहुँची हैं, किसी विशेष उद्देश्य से बनती रही हैं । यद्यपि बहुत से प्रत्ययों - विधानों

1- वाचस्पति गैरोला - भारतीय चित्रकला - पृ० - 248

को जो लोककला के साथ जुड़े हैं । उनको समझ पाना कठिन है । फिर भी इतना कहा जा सकता है कि उनके मूल में धार्मिक तत्व ही हैं तथा कुछ मनोरंजन भी । यही कारण है कि लोक कला की यह धाती विभिन्न जनपदीय जातियों में प्राचीन समय से सम्मानित होकर आज भी यहाँ के लोक जीवन का एक अभिन्न अंग बन गई है ।

लोक कला, लोक मानस से प्रेरणा और पोषण पाती है एवम उसी को प्रतिबिम्बित करती है । तथा जन साधारण का जीवन अति दुष्कर होते हुये भी सहज व सुखमय बनाती है । रोज के जीवन की जटिल गुत्थियों में फँसा जन - मानस पर्व, त्योहार पर राहत पाता है तथा जीवन को खुशियों से भरपूर करता हुआ उस महान दैविक शक्ति के आगे नत मस्तक हो जाता है जिसका कोई पार नहीं पा सकता जो अनन्त, अजर तथा अमर है । अर्थात इसी बहाने मनुष्य थोड़ी सी राहत की सांस लेता है तो फिर ये तीज - त्योहार, पर्व, मेले - ठेले, अनुष्ठान आदि कैसे भुलाये जा सकते हैं ? शायद इनका भविष्य और अधिक उज्जवल, आशा पूर्ण व उत्साह - जनक ही होगा । परन्तु यह अत्यन्त दुख का विषय है कि नगरों में जैसे जैसे शिक्षा का प्रभाव बढ़ रहा है - लोक गीत, लोक चित्रकला, लोक कथाओं का भी लोप होता जा रहा है । प्राचीन मान्यताओं को भूल कर आज का शिक्षित वर्ग अपनी मान - प्रतिष्ठा के लिये धीरे धीरे अपनी प्राचीन सभ्यता, रीति - रिवाजों को अनदेखा करता जा रहा है । आज की शिक्षित नारी तीज, त्योहार, मेंहदी, महावर, अल्पना, बिन्दु, सिन्दूर लगाना ढकोसलेबाजी और अन्ध विश्वास मानती है । ~~xxxxx~~ तथा तीज - त्योहार मनाना समय व्यर्थ गँवाना मानती हैं । जिस श्रद्धा व विश्वास से गाँव की स्त्रियाँ लोक चित्रों का अंकन करती हैं, वो भावना शिक्षित स्त्रियों में लुप्त होती जा रही है । दीवारों पर चित्रांकन उनके लिये दीवारों

को गन्दा करना मात्र है। तस्वीर रखकर या बाजार में बनी बनाई (छपी) तस्वीर लाकर पूजा कर लेना फैशन हो गया है। सड़कों पर कुँआ पूजने जाते समय गीत गाते चलना अच्छा नहीं समझा जाता। पुराने श्रृंगार समाप्त होते जा रहे हैं। उनके स्थान पर 'ब्यूटी पारलर' खुल गये हैं। जहाँ रोज सौ पचास रुपये खर्च करना उनकी प्रतिष्ठा का सवाल बन गया है।

सारांश में कहा जा सकता है कि पाश्चात्य वेश भूषा, आचार विचार के प्रभाव से हरियाणा के नगर निवासी अपनी प्राचीन भारतीय सभ्यता से विमुख होते जा रहे हैं तथा धर्म में श्रद्धा व विश्वास दिन पर दिन कम होता जा रहा है। अब तो डर है कि नई पीढ़ी के आने तक यह बिल्कुल ही लोप न हो जाये। क्योंकि आज आदि काल से चले आ रहे भय, जादू-टोने-टोटके, अन्ध विश्वास, स्थानीय देवी-देवताओं की मान्यता पर्व मनाने के रिवाज निरन्तर लुप्त होते जा रहे हैं। केवल एक अपने तथा अपने परिवार को अनिष्ट होने से बचाने का भय थोड़ा सा विद्यमान है। अतः पहले की कुछ बातें, रीतियाँ को स्त्रियाँ छिपकर कर लेती हैं। ऐसा समय और स्थान की कमी के कारण भी हुआ है। जब से संयुक्त परिवार समाप्त हुये तथा छोटा परिवार हुआ, अकेली गृहिणी को सब काम करने कठिन हो गये। फिर भी विशेषकर लोक चित्रकारी आज जितनी भी शेष रह गई है, उसका श्रेय स्त्री वर्ग को ही है।

विषय के गूढ़ अध्ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि रोज नहीं तो कभी कभी आज का व्यस्त मानव अपनी प्राचीन संस्कृति व सभ्यता को देख मात्र ही सके। इसके लिये पुरानी लोक कृतियों चित्रों तथा साहित्य को एक स्थान पर संग्रहीत करने का प्रयत्न करना चाहिए। आगे आने वाली नई पीढ़ी उनको प्रदर्शनियों के रूप में ही देख सके। कुछ लोकचित्र

कला का रूप शास्त्रीय कला अध्ययन के साथ स्कूलों व विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम में रखा जा सकता है । सम्भव है - मानव उन्नति के शिखर पर पहुँच कर उस वातावरण से तंग आकर फिर वापस अपनी पुरानी सभ्यता संस्कृति की शरण में आ जाये । छोटे बच्चों को चित्रकला, लोककला पर आधारित आकृतियों पर देने से बच्चे ज्यादा जल्दी व आसानी से कला सीख सकेंगे तथा उन्हें रुचिकर भी होगी ।

लोक कलाकारों जैसे चितेरे, शिल्पकार, मूर्तिकार, लिलिहारी आदि जो कला का कार्य शुरू से अपने पूर्वजों से सीखते हुये करते चले आ रहे हैं, सरकार को चाहिए कि उन्हें इस प्रकार संरक्षण दे कि वे अपने कार्य से विमुख न हों तथा अपनी अगली पीढ़ी को भी काम सीखने को बढ़ावा दें । इसके लिये उन्हें आर्थिक सहायता की आवश्यकता होगी । उनका बनाया सामान विदेशों में भेजकर तथा बड़े बड़े एम्पोरियम्स जहाँ अच्छे व उच्च वर्ग के लोग आते जाते हैं, सामान बेच कर कलाकारों को प्रोत्साहन दिया जा सकता है । उनके बच्चों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान कर, बूढ़ी स्त्रियों को उनकी सुरक्षा के साधन जुटाकर लोक कला की ओर प्रोत्साहन दिया जा सकता है । हरियाणा में गुड़िया बनाने का उद्योग काफी उन्नति पर है । ऐसे सरकारी स्कूल ज्यादा से ज्यादा बनाये जाने चाहिए जहाँ इन कलाओं को सीखने के इच्छुक व्यक्तियों को मुफ्त शिक्षा देने तथा उनके द्वारा किये गये कार्य पर रुपये देने का प्रबन्ध हो तब ही हमारी पुरानी संस्कृति अपनी प्राचीन शान को स्थिर रख सकती है । इसके अतिरिक्त इनको अधिक से अधिक प्रचार में लाने के लिये जन समूह के समक्ष लाना होगा, जिसमें केवल सुन्दर भावों के स्थान पर उपयोगिता को भी साथ साथ दर्शाना होगा क्योंकि आज का शिक्षित वर्ग पैसे की तथा समय की कमी के कारण कला में उपयोगिता के तत्वों को ज्यादा चाहता है । तब ही यह व्यवसाय के रूप

में अधिक मान्य हो सकती है ।

छोटे बच्चों को घर के अतिरिक्त लोक कला में रुचि स्कूल में छोटी कक्षा से ही दी जा सकती है । मिट्टी का काम, चमड़े का काम, छोटे छोटे कागज, कपड़े, ऊन के खिलोने आदि बनाना सिखाने में बच्चों की रुचि कल्पना, सौन्दर्य प्रवृत्ति, बेकार समय का सदुपयोग, स्वच्छता के गुण तथा उनमें व्यक्तित्व के विकास आदि के गुण पैदा होते हैं । लोक कला चेतना तत्व से भरपूर होती है । अतः इसे केवल संग्रहालयों में कैद न करके सर्वेक्षण हेतु राज्य स्तरीय बोर्ड बनाना चाहिए जो एक समिति के अधीन कार्य करे । तथा इस समिति का कार्य हो कि वह सक्रिय होकर क्षेत्रीय लोक कलाकारों के हर सम्भव सहायता प्रदान करे । उनके उत्साह व प्रोत्साहन के लिए उन्हें इनाम दे तथा लोक कला पर किये गये शोध कार्य प्रकाशित करवाये ताकि अधिक से अधिक जनता उसे पढ़कर लाभान्वित हो सके । इसके लिए ग्रन्थों का सभी भाषाओं में अनुवाद होना चाहिए । यह कार्य ललित कला अकादमी अच्छा कर सकती है जिससे सभी का उपकार हो । यह ध्यान भी जरुर रखना होगा कि कहीं यह पुनर्जागरण केवल व्यवसाय ही बन कर न रह जाय या यह प्राचीन काल से चले आ रहे संस्कार, फैशन की गिनती में गिने जाने लगे । यह कला का पोषण नहीं बल्कि शोषण होगा । आवश्यकता है निष्ठा, समर्पण, ईमानदारी की जिससे कला कला के रुप में रहे लोक जीवन के उससे लाभ हो तथा पूजित बनी रहे । वस्तुतः जीवन की अनिवार्य आवश्यकतायें हमारी यह लोक कलायें हैं जिसमें लोक जीवन की सच्ची झाँकी प्रस्तुत होती है । प्रश्न केवल किसी एक स्थान के कला का न होकर समस्त राष्ट्र की कला का है ।

शायद वह समय दूर नहीं जब मानव फिर अपनी पुरानी जगह, गोल

घूमता हुआ आ पहुँच । देखने में आया है कि दिल्ली के कनाटप्लेस जैसे फैशन वाले बाजार में स्थित ' एम्पोरियम्ज ' में दीवारों पर लोक कला से सम्बन्धित आकृतियों से दीवारें बनाई गई हैं । लोक कला से सम्बन्धित बने चित्र लोग अपनी बैठकों में लगाना पसन्द करने लगे हैं । तथा लोला गोदना आज पाप आर्ट के रूप में ' जाज ' व ' बोटलस ' मानने लगे हैं ।

एक आशा की किरण जो जगमगाई है, उज्जवल रूप में चमके तो मैं इस शोध कार्य को वास्तव में पूर्ण हुआ समझूँगी ।

सहायक ग्रन्थ - अनुक्रमणिका

1- हंस, उदय भानु - हरियाणा गौरव गाथा

2- भाषा विभाग, हरियाणा चंडीगढ़ - हरियाणा के लोक गीत

3- शंकर देवी - हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन

4- लाल, मुनी - हरियाणा

5- वर्मा, डी० सी० - हरियाणा

6- धानी, योगराज - भारत दर्शन हरियाणा

7- डा० अग्रवाल - कला समीक्षा

8- डा० गिरजा किशोर - कला निबन्ध

9- सहाय, वासुदेव - प्राचीन भारतीय

10- शरण वासुदेव - कला और संस्कृति

11- ,, - पुराण एवं सांस्कृतिक अध्ययन

12- ,, - मार्कण्डेय पुराण एवं सांस्कृतिक अध्ययन

13- ,, - भारतीय कला

14- ,, - प्राचीन भारतीय लोक धर्म

15- उपाध्याय भगवतशरन - संस्कृति की भूमिका

16- उपाध्याय, कृष्ण देव - लोक साहित्य की भूमिका

17- गुप्त, जगदीश - प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला

18- गुप्ता, सत्या - खड़ी बोली का लोक साहित्य

19- वाचस्पति, गैरोला - भारतीय चित्रकला

20- चन्द, मोती - प्राचीन भारतीय वेशभूषा

21- लाल, चिरंजी - कला के मूल तत्व

22- त्रिपाठी, रामप्रताप - हिन्दुओं के व्रत और त्योहार

23- दास रायकृष्ण - भारत की चित्रकला

24- नन्द, परिपूर्णा - लोक शास्त्र

25- प्रकाश, बुद्ध - भारतीय धर्म एवं संस्कृति

26- मिश्रा, इन्दुमति - प्रतिमा विज्ञान

27 - मिश्रा, जनार्दन - भारतीय प्रतीक विद्या

28- राय, बाबू गुलाब - भारतीय संस्कृति की रूपरेखा

29- वर्मा, बिहारीलाल - भारत में प्रतीक पूजा का आरम्भ और विकास

30- शर्मा, सुखदेव सिंह - धर्म दर्शन्

31- शास्त्री, देवदत्त - तन्त्र सिद्धान्त और साधना

32- प्रकाश, बुध - भारतीय धर्म और संस्कृति

33- मुकर्जी राधाकुमुद - प्राचीन भारत

34- रायबाबू, गुलाब - भारतीय संस्कृति की रूपरेखा

35- शास्त्री, देवदत्त - तन्त्र सिद्धान्त और साधना

36- शुक्ल, रामचन्द्र - कला का दर्शन

37- सत्येन्द्र - लोक साहित्य विज्ञान

38- देवी सीता - भारत की लोक कथायें

39- [illegible], असित कुमार - भारतीय चित्रकला का इतिहास

40- उपाध्याय, भगवतशरण - भारतीय कला और संस्कृति की भूमिक

41- वर्मा, जयनरायन - हरियानवी लोकों-शा० विश्लेषण

42- जोशी, महादेव शास्त्री - हमारी संस्कृति के प्रतीक

43- शुक्ल, आशुतोष - बारह महीनों के व्रत और त्योहार

44- मलिक, भीम सिंह - हरियाणा लोक साहित्य सांस्कृतिक संद

सहायक पत्र पत्रिकाओं का विवरण :-

1- कला अंक सम्मेलन पत्रिका - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
2- कादम्बनी मासिक - दिल्ली
3- कला त्रैमासिक - राज्य ललित कला एकादमी उ०प्र०
4- दैनिक जागरण - कानपुर, लखनऊ, गोरखपुर
5- नवनीत मासिक - दिल्ली
6- धर्म युग - टाइम्स आफ इण्डिया
7- साप्ताहिक हिन्दुस्तान - हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली
8- ब्रज भारती -
9- भारतीय साहित्य - अक्टूबर, 1960
10- मनोरमा - माया प्रेस, इलाहाबाद
11- त्रिपथगा - चित्रकला अंक - लखनऊ।
12- हरियाणा संवाद - लोक सम्पर्क विभाग, चण्डीगढ़

BOOKS IN ENGLISH

1. Kang, Kanwarjit Singh — Wall paintings of Punjab and Haryana.
2. Aggarwal, Vasudeva S — Studies in Indian Art.
3. Benecorft Edward — Philosophy of Permanent colours.
4. Blacker, J.C. — ABC of Indian Art.
5. Dhamija Jasleen — Indian Folk Art & Crafts.
6. Dutta, Bhupendra Nath — Indian Artin Relation to Culture.
7. Elwin, V. — Folk Painting of India.
8. Gardner, H. — Art Through the Ages.
9. Gupta, S.N. Dass — Fundamentals of Indian Art.
10. Haldar, A.K. — Our Heritage of Art.
11. Hausâr, A. — The Philosophy of Art History.
12. Mukherji, A. — Yoga Art.
13. Read, Herbert — The Meaning of Art.
14. Reigl, Alvis — The Philosophy of Art History.
15. Rawson, Philip — Tantra-The Indian Cult of Ecstacy.
16. Saurek, K. — Folk Art in Pictures.
17. Sirkar, B.K. — Folk Element in Hindu Culture.

18.	Stella	The Art of India.
19.	Thomas and Hudson	Encyclopeadia of Art.
20.	Woodruf, Sir John	Shakti and Shaktas.
21.	Zimmer, Henrich	The Art of India Asia.
22.	The American Women's-Club	Festivals and Religious Celebration.
23.	Phogat, Silak Ram	History and Culture of Haryana.
24.	Dahiya, B.S.	Jats of Ancient Rullers.
25.	Mazumdar, R.C.	History and Culture of Indian People : Vol.VIII
26.	Kaul, H.K. (Editor)	Traveller's India.
27.	Prakash, Buddha	Glimpses of Haryana.
28.	Basham, A.L.	Aspects of Ancient Indian Culture.
29.	Gundi, Fadwa El	Religion in Culture.
30.	Bhavnani, Enakshi	Folk and Tribal Designs of India.

MAGAZINES AND JOURNALS

1.	Hindustan Times	Delhi.
2.	Illustrated Weekly	Delhi.
3.	Indian Express	Delhi.
4.	Marg	Bombay.
5.	Solids	Art Bulletin from Chandigarh.